॥ अथ श्रीविचाररत्नावलिः

॥ अथ विचाररत्नावलिः ॥

॥ समाप्तिकामोमंगलमाचरेतइत्यादिश्रुतिप्रमाणतेमंगलकरतेहैं ॥

१ ओं सत्य गुरुप्रसाद ॥ श्रीगणेशायनमः ॥ अथ श्रीविचाररत्नावलिप्रारम्भः ॥ घनाक्षरी छन्द ॥ ब्रह्म निजानन्द गुरुनानक अफुरबोध, माया वशीकर ईश संज्ञया लखायो है ॥ उत्तपत्ति पालना संहार पुन सोई करे, जीव नाम आपणो सु वाहींनें रखायो है ॥ कर्तृत्व भोक्तृत्त्व धर्म आपमें आरोपकर; जनम मरणवत ताहींनें सदायो है ॥ कहित कुशाल यांकी महिमा अपार जग, विविध स्वरूप वहु आपही बनायोहै ॥ १ ॥ दोहा ॥ असगुरु नानक देवजू, चिद्घन रहित प्रछेद ॥ गिरातीत अज नाश विन, यांहि वखानत वेद ॥ २ ॥ दोहा ॥ ओम्सोऽहं मंत्रवर, प्रैष्य सुविधि अनुसार ॥ जिह उपदेश्यो तासके, पद-

पाथोज जुहार ॥ ३ ॥ ब्रह्म कृष्ण संज्ञिक गुरू, प्रणवौं वारम्वार ॥ चरण शरण जांकी लिये, लख्यो ब्रह्म सुख सार ॥ ४ ॥ दोहा ॥ विद्याऽपर सुर निम्नगा, मोमें प्राप्त जास ॥ श्रीगिरिज्वालादास गुरु, प्रणवौं चरण सुवास ॥ ५ ॥ चौपाई ॥ अहं पद वाच्य लक्ष्य है जोई ॥ प्रथम निरूपण इसका होई ॥ 'ब्रह्म' पद वाच्य लक्ष्य है जेतो ॥ तदनन्तर भाषों सब तेतो ॥ ६ ॥ 'अस्मि' पदको अर्थ सु जोई ॥ कहों 'लक्षणा' करके सोई ॥ षट् 'प्रमाण' को कछुक सरूप ॥ भाषों भाषा मति अनुरूप ॥ ७ ॥ श्लोक ॥ अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपञ्चं प्रपञ्च्यते ॥ शिष्याणां बोधसिद्ध्यर्थं तत्त्वज्ञैः कल्पितः क्रमः ॥ ८ ॥

॥ वस्तुन्य वस्त्वारोपः अध्यारोपः ॥

❋ अर्थयिह ॥ अधिष्ठान वस्तुविषे अवस्तुका जो आरोप है सो अध्यारोप कहिये है ॥ जैसे

रज्जुरूप अधिष्ठान वस्तुविषे अवस्तुरूप सर्पका जो आरोप है सो अध्यारोप कहिये है ॥ तैसे ब्रह्मरूप अधिष्ठान वस्तुविषे अवस्तुरूप जगत्का जो आरोप है सो अध्यारोप कहिये है ॥ ❋ अधिष्ठाने भ्रांत्या प्रतीतस्य तद्व्यतिरेकेण तदभाव निश्चयोऽपवादः ❋ अर्थयिह ॥ अधिष्ठानविषे भ्रांतिसें जो वस्तु प्रतीत होवै, पुना ता अधिष्ठान तें भ्रांति सिद्ध वस्तुका भिन्नरूपेण जो अभाव निश्चय होवै सो अपवाद कहिये है ❋ तात्पर्ययिह ॥ अधिष्ठानविषे भ्रांतिसें प्रतीतहुई वस्तुकी सत्ताका लेशभी अधिष्ठानकी सत्तासें अतिरिक्त नहीं है ॥ ऐसै दृढनिश्चय-कों अपवादकहे हैं ॥ जैसे रज्जुरूप अधिष्ठान तें भिन्नभ्रांति सिद्ध सर्परूप वस्तुका जो अभाव निश्चय सो अपवाद कहिये है ॥ तैसे ब्रह्मरूप अधिष्ठानविषे जगत्रूप वस्तु भ्रांति करके प्रतीत होवेहै ॥ ता ब्रह्मरूप अधिष्ठान तें भिन्न भ्रांति सिद्ध जगत् रूप वस्तुका जो अभाव

निश्चय सो अपवाद कहिये है इस प्रकार के 'अध्यारोप' अपवाद, करके ॥ विस्तृत रहित ब्रह्म विस्तृत सहित तत्त्ववेत्योंनें प्रतिपादनद्वारा करा है (ननु) प्रतिपादनद्वारा विस्तृत करनेका कौन प्रयोजन है (उत्तरः) शिष्योंके बोधवास्ते करा है (ननु) एककालमेंहि विस्तृत करा है वा क्रमतें करा है (उत्तरः) क्रमतें करा है सोभी मन्दबुद्धिवाले शिष्यों कों विपरीत चिन्तनद्वारा बोधवास्ते करा है (ननु) विपरीत चिन्तनसें कैसे बोध होवे है (उत्तरः) विपरीत चिन्तनसें सर्व कार्यका कारणरूप ब्रह्ममें अभेद होवे है सो ब्रह्म मेरा आत्मारूप है ॥ ऐसे मन्दबुद्धिवाले शिष्योंकों बोध होवे है ॥ तां बोधसें प्रपंचका त्रैकालमें अभाव निश्चय होवे है (ननु) कैसे त्रैकालमें अभाव निश्चय होवे है (उत्तरः) ॥ श्लोक ॥ ❋ तत्त्वमस्यादि वाक्योत्थ सम्यग्धीजन्म मात्रतः ॥ अविद्या सह कार्येण नासीदस्ति भविष्यति ॥ ९ ॥ यिह

॥२॥

सुरेश्वराचार्यका वार्तिक है ❋ अर्थयिह ॥ ❋ तत्त्वमसि ❋ यिह सामबेदके ब्राह्मण च्छान्दोग्य-का बचन है ॥ ❋ अयमात्मा ब्रह्म ❋ यिह अथर्बणबेदके ब्राह्मणका बचन है ॥ ❋ प्रज्ञान मानन्दं ब्रह्म ❋ यिह ऋग्वेदके ऐतरेयारण्यक ब्राह्मणका बचन है ॥ ❋ अहंब्रह्मास्मि ❋ यिह यजुर्वेदके ब्राह्मण बृहदारण्यक गत बचन है ॥ इन वाक्योंसें संशय विपर्य्यय तें रहित उत्पन्न भई या बुद्धि ताके जन्ममात्रतः अर्थात् जैसे सूर्य्यभगवान्के उदयमात्रतेंहि अन्धकारका नाश होवे है ॥ तैसे पूर्वोक्त महावाक्योंतें उत्पन्न भई या ब्रह्मज्ञानरूपा 'बुद्धि' ॥ ताके जन्ममात्रतेंहि सदसद्विलक्षणरूपाअविद्या सहितकार्यरूपप्रपञ्चके न पूर्व होती भई, ॥ न अब है न भविष्यत् कों होवेगी ॥ इस प्रकार सें कारण कार्य का त्रयकाल में अभाव निश्चयरूप फल अध्यारोप अपवादका होवे है ॥ यांते स्थूलबुद्धिवाले शिष्योंकों शि-

क्षाकेवास्ते 'अध्यारोप' अपवाद कों भाषारूप करके निरूपण करेंहैं ❀ तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय ❀ अर्थयिह ॥ सो परमात्मदेव इच्छा करता भया जो मैं प्रजारूपेण बहुत रूप होवों ॥ ऐसी इच्छातें शब्दगुणसहित 'आकाश' रूपता करके उत्पन्न होता भया ॥ 'आकाश'तें शब्द स्पर्श सहित 'वायु' होता भया ॥ 'वायु' तें शब्द स्पर्शरूप सहित 'तेज' होता भया ॥ 'तेज तें' शब्द स्पर्श रूप रस सहित 'जल' होता भया ॥ 'जल' तें शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध सहित 'पृथिवी' होती भई ॥ इन पञ्चभूतोंमें ❀ अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंश पञ्चकम् ॥ आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम् ॥ १० ॥ ❀ इत्यादि प्रमाण तें ॥ अस्ति, भाति, प्रिय, ब्रह्मरूपता है ॥ औ नाम, रूप, जगद्रूपता है ॥ ऐसेहि इन पञ्चभूतोंके कार्योंमेंभी ब्रह्मरूपता औ जगद्रूपता है (ननु) इन

का कार्य कौन है (उत्तरः) इन पञ्च भूतनके सत्वांशतें अन्तःकरण उत्पन्न होवे है तहां शरीरके भीतर होने तें तथा ज्ञान का साधन होने तें अन्तःकरण कहिये है औ पांच भूतोंके गुणोंका ग्राहकहोंणेते पांचभूतोंका कार्यहै परन्तु सो अंतःकरण चार प्रकारका है ॥ जैसे एकहि ब्राह्मण क्रियाभेदतें पाचक, पाठक, याजक, कृषिकार, कह्या जावे है ॥ तैसे एकहि अन्तःकरण क्रियाभेदतें मन १ बुद्धि २ चित्त ३ अहंकार ४ कह्या जावे है ॥ तहां सङ्कल्पादि करणेतें 'मन' निश्चय करणे तें 'बुद्धि' चिन्तन करणें तें 'चित्त' गर्व करणें तें 'अहंकार' कह्या जावे है और प्रत्येक भूतके सत्त्व गुणतें 'ज्ञानेन्द्रिय' उत्पन्न होवे हैं ॥ ज्ञानका साधन होनेतें 'ज्ञानेन्द्रिय' कहिये है ॥ परन्तु जिसजिस भूतके गुणकों जोजो इन्द्रिय गृहण करे है ॥ तिसतिस भूतका सोसो इन्द्रिय कार्य है ॥

तहां आकाशके सत्त्वगुणतें 'श्रोत्र' की ॥ वायुके सत्त्वगुण तें 'त्वक्' की ॥ तेज के सत्त्वगुण तें 'नेत्रों' की ॥ जलके सत्त्वगुण तें 'रसना' की ॥ पृथिवीके सत्त्वगुणतें 'घ्राण' की उत्पत्ति है और प्रत्येक भूतके रजोगुणतें 'कर्मेन्द्रिय' उत्पन्न होवे हैं ॥ क्रियाका साधन होने तें 'कर्मेन्द्रिय' कहिये हैं ॥ तहां आकाशके रजोगुणतें 'वाक्' की ॥ वायुके रजोगुणतें 'पाणी' की ॥ तेजके रजोगुणतें 'चरणों' की ॥ जल के रजोगुणतें 'लिङ्ग' की ॥ पृथिवीके रजोगुण तें 'गुदा' की उत्पत्ति है और पञ्चभूतनके मिलेहुये रजोगुण तें 'प्राण' उत्पन्न होवे हैं ॥ सो प्राणस्थान क्रियाभेदतें पञ्च प्रकारके हैं ॥ जांका हृदयस्थान क्षुधा पिपाशा क्रिया सो'प्राण' कहिये है ॥ जांका गुदास्थान मल मूत्र अधोनयन क्रिया सो 'अपान' कहिये है ॥ जांका नाभिस्थान भुक्त पीत अन्नजलकों पाचन योग्य सम करे सो 'समान' कहिये है ॥ जांका

कण्ठस्थान श्वासक्रिया सो 'उदान' कहिये है ॥ जाका सारे शरीरमें स्थान रसमेलनक्रि-
या सो ' व्यान ' कहिये है ॥ परन्तु मनादिक स्वस्वदेवतोंकी सताकों पाइकर स्वस्वकार्य
करे हैं ॥ मनादिकोंके देवतें कौनहैं॥ऐसी जिज्ञासाके भया मन आदिकोंके देवते कहे हैं॥ कवित्व ॥
मन बुद्धि चित्त अहंकार देव यथाक्रम, चन्द्र विधि वासुदेव महादेव जानिये॥श्रोत्राऽक्षि रसना
घ्राण त्वक्ज्ञानकरण एते, दिक् रविवरुणाऽश्विनी वायु पहिचानिये ॥ वाक् पाणि पादुपस्थ
पायू कर्मकरण यांके ज्वलनेन्द्रोपेन्द्र प्रजापति मृत्यु मानिये ॥ सद्योयात, घोर, तत्पुरुष,
वामदेव, ईशान, पञ्चएते प्राण आदि पञ्चनके ठानिये ॥ ११ ॥ अर्थस्पष्ट ॥ इसप्रकारसें पञ्च-
अपञ्चीकृत भूतनमें जो सत्त्व रज गुण है तिनतें सूक्ष्मसृष्टि उत्पन्न होती भई और जैसे पञ्च
मित्र पांच फलोंकों लेकर दो दो भाग बनायके ॥ प्रत्येक भाग आप राखकर द्वितीय द्वितीय

वि० भागके ॥ चार चार भाग बनायकर ॥ आपते भिन्न चार मित्रोंकों प्रत्येक भाग देवे हैं ॥ २०
यांते पांच फलों कियां पञ्ची प्रकृतां होइके मिलौनी होवेहै ॥ तैसे पञ्चभूतोंकी तमों अंश
॥ ५ ॥ कियां ॥ शोक, प्रसारण, निद्रा, लाल रोम, आकाश इति ॥ धावन, काम, तृषा, स्वेद, त्वचा,
वायु इति ॥ क्षुधा, क्रोध, वलन, मूत्र, नाडी, तेज इति ॥ शुक्र, मोह, चलन, कान्ति, मांस, जल
इति ॥ अस्थि, भय, आकुञ्चन, आलस्य, शोणित, पृथिवी इति ॥ इसप्रकारसें पञ्चीप्रकृ-
तां होइकर ॥ परस्पर मिलके पञ्चीकृत स्थूल भूत होवे हैं ॥ ता भूतोंके कार्यरूप प्रत्येक
स्थूल शरीर होनेतें प्रत्येक स्थूल शरीरमेंभी पञ्चीप्रकृतांकी मिलौनी है ॥ तहां शरीरमें (शोक)
आकाशका मुख्य भाग है ॥ काहेते शोक होवै तब शरीर शून्य जैसा होवे है ॥ औ आ- ॥ ५ ॥
काश भी शून्यरूप है ॥ यांते यिह शोकशरीरमें आकाश का मुख्य भाग है ॥ वा (लोभ)

आकाश का मुख्य भाग है काहेते जैसे आकाश किसी वस्तुसें पूरण होवे नहीं॥ तैसे लोभ-भी किसी वस्तुसें पूरण होवे नहीं ॥ यांते यिह लोभ शरीरमें आकाशका मुख्य भाग है (काम) आकाशविषे वायुका भाग मिल्या है ॥ काहे ते कामनारूप वृत्ति चञ्चल है औ वायु-भी चञ्चल है ॥ यांते यिह काम वायुका भाग है (क्रोध) आकाशविषे तेजका भाग मिल्या है ॥ काहेते क्रोध आवता है तब शरीर तपायमान होता है औ तेजभी तपायमान है॥ यांते यिह क्रोध तेजका भाग है (मोह) आकाशविषे जलका भाग मिल्या है॥ काहेते मोह पुत्रादिकों-विषे पसरता है औ जलका बिन्दुभी पसरता है॥ यांते यिह मोह जलका भाग है (भय) आकाशविषे पृथिवीका भाग मिल्या है॥ काहेते भय होवे तब शरीर जड हो वे है औ पृथिवीभी जडता स्वभाववाली है॥ यांते यिह भय पृथिवीका भाग है॥

इति ॥ (धावन) वायुविषे अपना मुख्य भाग है ॥ काहेते धावन नाम दौडनेका है ॥ औ वायुभी दौडता है ॥ यांते यिह धावन शरीरमें वायुका मुख्य भाग है (पसरण) वायुविषे आकाशका भाग मिल्या है ॥ काहेते पसरण नाम पसरणेका है औ आ-काशभी पसऱ्या हुया है ॥ यांतें यिह पसरण आकाशका भाग है (वलन) वायुविषे तेजकाभाग मिल्या है ॥ काहेते वलन नाम प्रकाशका है औ तेजभी प्रकाशरूप है ॥ यांते यिह वलन तेज का भाग है (चलन) वायुविषे जलका भाग मिल्या है ॥ काहे-ते चलन नाम चलनेका हैं औ जलभी चलता है ॥ यांते यिह चलन जलका भाग है (आकुञ्चन) वायुविषे पृथिवीका भाग मिल्या है ॥ काहेते आकुञ्चन नाम सङ्को च होनेका है औ पृथिवीभी सङ्कोचकों पावती है ॥ यांते यिह आकुञ्चनपृथिवीका

भाग है इति ॥ (क्षुधा) तेजका मुख्यभाग है॥ काहेते क्षुधा होवे तब जो खावे सो भस्म होवे है औ तेजविषेभी जो पावे सो भस्म होवे है॥ यांते यिह क्षुधा शरीरमें तेजका मुख्यभाग है (निद्रा) तेजविषे आकाशका भाग मिल्या है॥ काहेते निद्रा आवे तब शरीर जड होवे है औ आकाशभी जडरूप है॥ यांते यिह निद्रा आकाशका भाग है (तृषा) तेजविषे वायुका भाग मिल्या है॥ काहेते तृषा कण्ठकों शोषण करे हैं औ वायुभी गीलेवस्त्रादिककों सुकावे है यांते यिह तृषा वायुका भाग है (कान्ति) तेजविषे जलका भाग मिल्या है॥ काहेते कान्ति धूपसे घटे है औ जलभी धूपसे घटे है॥ यांते यिह कान्ति जलका भाग है (आलस्य) तेज-विषे पृथ्वीका भाग मिल्या है ॥ काहेते आलस्य आवे तब शरीर जड होइ जावे है औ पृ-थ्वीभी जडस्वभाववाली है॥ यांते यिह आलस्य पृथ्वीका भाग है इति॥ (शुक्र) जलका मुख्य

भाग है ॥ काहेते शुक्र श्वेतवर्ण है तथा गर्भका हेतु है औ जलभी श्वेतवर्ण तथा वृक्षका हेतु है ॥ यांते यिह शुक्र शरीरमें जलका मुख्य भाग है (लाल) जलविषे आकाशका भाग मिल्या है ॥ काहेते लाल ऊंचानीचा होवे है औ आकाशभी ऊंचानीचा है ॥ यांते यिह लाल आकाशका भाग है (स्वेद) जलविषे वायुका भाग मिल्या है ॥ काहेते पसीना श्रमकरनेसें होवे है औ वायुभी पंखा आदिक श्रमकरनेसें होवे है ॥ यांते यिह स्वेद वायुका भाग है (मूत्र) जलविषे तेजका भाग मिल्या है ॥ काहेते मूत्र घर्म है ॥ औ तेजभी घर्म है ॥ यांते यिह मूत्र तेजका भाग है (शोणित) जलविषे पृथ्वीका भाग मिल्या है ॥ काहेते शोणित रक्तवर्ण है औ पृथ्वीभी कहिंक रक्त है ॥ यांते यिह शोणित पृथ्वीका भाग है इति ॥ (अस्थि) पृथ्वीका मुख्यभाग है ॥ काहेते

अस्थि कठिन औ पीतवर्ण है ॥ औ पृथ्वीभी कठिन तथा कहिंक पीतवर्ण है ॥ यांते यिह अस्थि शरीरमें पृथ्वीका मुख्यभाग है (रोम) पृथ्वीविषे आकाशका भाग मिल्या है ॥ काहेते रोम जड है औ आकाशभी जड है ॥ यांते यिह रोम आकाशका भाग है (त्वचा) पृथ्वीविषे वायुका भाग मिल्या है ॥ काहेते त्वचासे शीत, उष्ण, कठिन, कोमल, स्पर्शका ज्ञान होवे है औ वायुभी स्पर्शगुणवाला है ॥ यांते यिह त्वचा वायुका भाग है (नाडी) पृथ्वीविषे तेजका भाग मिल्या है ॥ काहेते नाडीसें तापकी परीक्षा होवे है औ तेजभी तापरूप है ॥ यांते यिह नाडी तेजका भाग है (मांस) पृथ्वीविषे जलका भाग मिल्या है ॥ काहेते मांस गीला है औ जलभी गीला है ॥ यांते यिह मांस जलका भाग है इति ॥ इस प्रकारसें पञ्चीप्रकृतांकी मिलौनी स्थूलत्त्व जातिविशिष्ट सर्व स्थूलशरीरोंमें है ॥ छप्पय ॥

*स्थूल काय समुदाय होत ब्रह्माण्ड महाबन॥ तामें खाणी चार अण्डजादि बहु अनगन॥
चौराशी लक्ष योनि जीव तरु तरुण बगीचे॥ त्रिविधि कर्म नवनीर ईश मालीनें सींचे॥
विविध कर्म अनुसारते भोग सुनाना रङ्कको॥ ईशगति बलवान है नाहीं सकै उल्लङ्घको॥ १२॥

* अर्थ यिह तिन्हों स्थूल शरीरोंका समुदाय ब्रह्माण्डरूप बडा बगीचा होता भया॥ ता बगीचामें अण्डज, जरायुज, स्वेदज, उद्भिज, यिह चार खाणीरूप चौरासीलक्ष योनिरूप वृक्ष होते भये॥ सञ्चित क्रियमाण प्रारब्ध कर्मरूपजलसें जीवोरूपवृक्षोका ईश्वररूप माली सिञ्चन करता भया॥ जैसे एक अन्न गृहमें सम्पादित है औ द्वितीय सम्पादनीय है औ तृतीय भोग्य है॥ तैसे सम्पादित जो कर्म हैं सो साञ्चित कहिये हैं॥ औ वर्तमानकालमें जो करते हैं सो क्रियमाण कहिये हैं औ जिन्होंनें शरीर दिया है तथा सुखदुःखके हेतु हैं सो

प्रारब्ध कहिये हैं ॥ सो प्रारब्ध सर्व जीवोंका विचित्ररूप होनेते सर्व जीवोंकों विचित्ररूपहि सुखदुःखका अनुभवरूप भोग होवे है औ विचारसें देखिये तौ प्रत्येक जीवकाभी विचित्ररूप प्रारब्धकर्म होनेते प्रत्येक जीवकूभी विचित्ररूपहि सुखदुःखका अनुभवरूप भोग होवे है ॥ १२ ॥ जैसे 'कालिदास' का विचित्ररूप प्रारब्धकर्म होनेते विचित्ररूपहि सुखदुःखका अनुभवरूप भोग हुया है ॥ तथाच ॥ सोरठा ॥ ❀ विप्र 'देवद्विज' नाम, 'विद्या' सुता सु तासकी ॥ विद्या पढी प्रकाम, ताने ऐसो प्रण कियो ॥१३॥ चौपाई ॥ मोते विद्यावान् जो होई ॥ पती मोर जग भीतर सोई ॥ सुता नियम अस विप्र सुनयो जब ॥ विप्र स्वयम्बर वेग कियो तब ॥१४॥ देश देश द्विज बालक आये ॥ तौ विद्या निज प्रश्न सुनाये ॥ उत्तर दाता भयो न कोई ॥ निज निज धाम गये पत खोई ॥ १५ ॥ विप्र शोक होयो मन भारी ॥ के अब कन्या रहे

वि० कुमारी ॥ चिन्तायुत गृह बाहर आयो॥ कालिदास मूढ मग पायो ॥ १६ ॥ विप्रवंश जान्यो गृह राख्यो ॥ विप्रकर्म कछु ताको भाख्यो ॥ वर्ण श्वेत माटीके साथ ॥ पटिया लिखके दीनी हाथ ॥१७॥ पढो पुत्र तुम देर न लावो ॥ जगमें विद्या कंत कहावो ॥ मैं विद्या दुहिता सुत तोहि ॥ देवों सुनो वचन तुम मोहि ॥ १८ ॥ तव पूछे कछु मोर सुता जब ॥ तथा भवतु ताकों भाषो तब ॥ १९ ॥ दोहा ॥ यिउं कह कालिसुता गृह, विप्र पठयो मतिधीर ॥ विद्या भई प्रसन्न मन, पिख सु कुमार शरीर ॥ २० ॥चौपाई॥ पेशल पेख प्रश्न कछु कीनो ॥ तथास्तु काली उत्तर दीनो ॥ यथा रूप पुन तैसो विद्वान ॥ विद्या जान्यो गुणी महान ॥ २१ ॥ यिह मम कांत पितासों कहयो ॥ द्विजवर तब विवाह कर दयो ॥ कछुक काल वीतेके वाद ॥ विद्या कालीको सम्बाद ॥ २२ ॥ भयो तु विद्या निगम निकाऱ्यो ॥ कालिदासके अग्र पसाऱ्यो ॥ काली पिख

हस्यो अरु रोयो ॥ विद्या ताको कारण जोयो ॥ २३ ॥ काली जान्यो सम्पत भूर ॥ मिली सु मोर हास्यको मूर ॥ पुस्तक पेख रुदन मुहि आवै ॥ श्यामवर्णयुत नाह सुहावै ॥ २४ ॥ गुरुसमीप मैं पढचो सु जोई ॥ सो सभ श्वेतवर्ण मय होई ॥ विद्या कांत मूढकी वानी ॥ सुनकर मनमें भूर दुखानी ॥ २५ ॥ क्रोध कियो मन्दरसें गेरियो ॥ हा विद्या काली मुख टेरियो ॥ २६ ॥ दोहा ॥ पूर्व कर्म प्रभाव तें, काली परम सुजान ॥ दुर्गा मन्दरमें गिरयो, प्रगट भई जन जान ॥ २७ ॥ चौपाई ॥ कालीको तब काली भाष्यो ॥ मांगपूत जो तव अभि-लाष्यो ॥ भ्रमयुत काली विद्या बोला ॥ ततक्षण विद्या भई अमोला ॥ २८ ॥ विद्या विद्या कर वस कीनी ॥ लोक कीर्ति पुन भई नवीनी ॥ भोजभूप ताको सुन पायो ॥ मानसहित निज गृह बुलवायो ॥ २९ ॥ काव्य कुशल लख भई सुप्रीती ॥ नू-

तन रचना सुनत सुचीती ॥ एक दिवस काली संगराजा ॥ मृगया हेतु गयो चढ वाजा ॥ ॥ ३० ॥ निशा भई बन तौ नृप सूरी ॥ बोल्यो धर्म होत मम दूरी ॥ पत्नीसाथ प्रतिज्ञा मोरी ॥ रातीं रहों सदा ढिग तोरी ॥ ३१ ॥ बोल्यो काली करो न संक ॥ ताकी प्रतिमा राखो अंक ॥ वेग लिखी काली तसवीर ॥ पिख हर्षयो भूपति मन धीर ॥ ३२ ॥ गुह्य उरू तिल काली लेख ॥ राजा विसम भयो तिह पेख ॥ यिह काली निश्चित व्यभिचारी ॥ विनदेखे क्यो होत लिखारी ॥ ३३ ॥ दोहा ॥ सभा बेठ भूपति कह्यो, हिंसकको बुलवाय ॥ नेत्र वेग इसके हरो, करणीको फल पाय ॥ ३४ ॥ चौपाई ॥ हिंसक वेग तिसे ले गया ॥ देख स्वरूप भई मन दया ॥ छोरचो कह्यो विप्र तुम जावो ॥ वेष आन घर काल वितावो ॥ ३५ ॥ हरिण मार दो नयन निकाले भूपतिके प्रति बधक दिखाले ॥ कालीकन्या वेष बनाय ॥ रह्यो धाम रजकनके जाय ॥ ३६ ॥ ऐसे

कछुक काल जब भयो ॥ फिर राजा मृगयाको गयो ॥ सिंह निकस्यो भूपति घोरा ॥ यत्न साथ तिस पीछे छोरा ॥ ३७ ॥ गयो दूर एकाकी भूप ॥ निशा भई पिख तरू अनूप ॥ गयो समीप तरुके जबहीं ॥ बानर बोल्यो ऊपर तबहीं ॥ ३८ ॥ सिंह पडत नर ऐस ठौरमें ॥ जावो तुम अब जगह औरमें ॥ भूप कह्यो सुन बानर बीर ॥ हौं तव धामातिथी सुधीर ॥ ॥ ३९ ॥ तब बानर करुणा करि तांह ॥ ऊपर राख्यो निज गृह मांह ॥ रात गई कछु सिंह पुकारा ॥ कपि छोर नर भक्ष हमारा ॥ ४० ॥ बानर पुनः पुन यिह भाखी ॥ यिह मम भ्राता दिनकर साखी ॥ फिर कपि सोयो नरपति जागा ॥ सिंह तासकों कहिने लागा ॥ ४१ ॥ गेरो नर बानर मम खाज ॥ पशु संग नेह करत नहिं लाज ॥ राजा बोल्यो यिह मम भाई ॥ सिंह कह्यो तव नाश कराई ॥ ४२ ॥ भोर भए सैना ले संग ॥ नाश करेगो तुहिकों अंग ॥

तांते तुम अब समो सम्भारो ॥ मो करसें इस प्राण निकारो ॥ ४३ ॥ दोहा ॥ सत्य मान वंचक वचन, भूप गिरायो कीस ॥ गिरयो न जाति सुभाव तें, राख लीन जगदीस ॥ ४४ ॥ ॥ चौपाई ॥ कीस 'विसमरा' कह्यो पुकार ॥ 'सूत्र' रूप यिह वर्ण सुचार ॥ राजे कण्ठ करे तत्काल ॥ भोर होत आयो भूपाल ॥ ४५ ॥ बैठ सभामें कविगण टेरा ॥ सूत्र अर्थ भाषो विन देरा ॥ लागे करण विवाद परस्पर ॥ को इक पावै मरम नाहपर ॥ ४६ ॥ एक द्वितीयको दूषण देहीं ॥ विन विचार सभ जल्प करेहीं ॥ धिक् धिक् भूपति सबहि वखानो ॥ नूतन चार वर्ण नहिं जानो ॥ ४७ ॥ कालीदास कन्यका रूप ॥ सुन्यो निरादर पण्डित भूप ॥ रजकतातकों भाषण लागी ॥ राजधाम जावो बडभागी ॥४८॥ कहो मोर कन्या इक नीका ॥ करे अर्थ सो भूपतिजीका ॥ पट परदेमें रहे सुशीला ॥ देख परत दुर्गासी लीला ॥ ४९ ॥

रजकराज गृह जाय अलाई ॥ भूपति कन्या वेग बुलाई ॥ कतिपय कन्या साथ सुकाली ॥ पट परदे बैठी सभ आली ॥ ९० ॥ भोज भूपती सूत्र सुनायो ॥ काली काली चीत्तम-नायो ॥ ९१ ॥ दोहा ॥ सुन राजन् दे कानको, मोर गिरा गम्भीर ॥ सूत्र अर्थ तव कहित हौं, कन्या कह्यो सुधीर ॥९२॥ ❀ हे राजन्, सूत्रका आद्याक्षर 'वि' यिह कहिताहै, ❀ वि-श्वास प्रतिपन्नानां येवै विश्वास घातकाः ॥ ते नरा नरकं यान्ति यावदिन्द्रा श्चतुर्दश' ॥९३॥ ❀ अर्थ यिह ॥ हे राजन् अपनेपर विश्वास करनेवाले जीवोंका जो विश्वासघात करते हैं ॥ ते पुरुष यावत्काल चतुर्दश इन्द्रराज्यकों देवलोकमें भोगे हैं ॥ तावत्काल नरकमें दुःख भोगते हैं ॥ अर्थात् तिन पुरुषोंकों ब्रह्माके एक दिवसपर्यन्त नरक होवे है ॥९३॥ ❀ हे राजन् सू-त्रका द्वितीय अक्षर 'स' यिह कहिता है ❀ सेतुंगत्वा समुद्रस्य गंगा सागर संगमम् ॥ मु-

च्यते सर्व पापेभ्यो मित्रद्रोही नमुच्यते' ॥ ५४ ॥ ❋ अर्थयिह ॥ हे राजन् विधिपूर्वक सेतुकी यात्रा करनेसें तथा गंगा औ सागरके मिलाप स्थलमें स्नान करनेसें सर्व पाप दूर होते हैं ॥ परन्तु मित्रद्रोहसें जो पाप उत्पन्न होवे है सो पाप मित्रद्रोहीकों ऐसे स्थानोंपर जानेसेंभी नहीं दूर होवे है ॥ महाराज श्रीरामचन्द्रने जो लंकागमनवास्ते समुद्र बान्धा है उसका नाम सेतु है ॥ ५४ ॥ हे राजन् सूत्रका तृतीय अक्षर 'म' यिह कहिता है ❋ मेरू तुलासमं दान मेक चित्तेन दीयते ॥ मुच्यते सर्व पापेभ्यो मित्रद्रोही नमुच्यते ॥ ५५ ॥ ❋ अर्थयिह ॥ हे राजन् मेरुसमान तोलमें अनेकपदार्थोंके पतितपुरुष दान करे तौ सर्वपाप दूर होवे हैं परन्तु मित्रद्रोहसें जो पाप उत्पन्न होवे है सो ऐसे दान करनेसेंभी दूर होवे नहीं ॥५५॥ हे राजन् सूत्रका चातुर्थ अक्षर 'रा' यिह कहिता है ❋ रामनाम परं मंत्र

मेक चित्तेन भाषितम् ॥ मुच्यते सर्व पापेभ्यो मित्रदोही न मुच्यते ॥ ५६ ॥ ❋ अर्थयिह ॥ हे राजन् परमपावन जो रामनाम मंत्र है ॥ तिसका जप करणेसें सर्व पाप दूर होते हैं परन्तु मित्रद्रोहजन्य पाप दूर होवे नहीं ॥ तात्पर्ययिह ॥ हे राजन् तैनें वनमें बानरकों मित्र बनाइकर उसकेसाथ द्रोह करा है तांते तूं महापतित हैं ॥ यिह पाप तेरेकों ब्रह्माके दिन- पर्य्यन्त नरककों भुगावेगा और गंगा सागरसंगमसें । वा । सेतुकी यात्रा करणेसें । वा । मेरु- तुल्य दान करणेसें । वा । रामनाम मंत्र जपणेसें तेरा पाप नहीं उतरेगा औ उद्धार नहीं होवेगा ॥ ५६ ॥ राजा भोज उवाच ❋ ग्रामे वससि भो देवि वने त्वं नैव गच्छसि ॥ कपि सिंह मनुष्याणां कथं जानासि सुन्दरि ॥ ५७ ॥ ❋ अर्थयिह ॥ हे देवि तुमारा निवास तो ग्रामविषे है॥वनविषे कदाचित् गमन करें नहीं॥यांते वनमें होनेवाला कपि सिंह मनुष्योंका

जो सम्वाद है ताकों हे सुन्दरि तूं कैसे जाने हैं ॥ ५७ ॥ कालिदासरूपा कन्या उवाच ॥
*देवद्विजप्रसादेन कण्ठे वसति सारदा ॥ सर्व मेव हि जानामि भानु मत्या स्तिलंयथा ॥५८॥
* अर्थयिह ॥ हे राजन् देवद्विज विप्रके प्रसादते मेरे कण्ठमें सारदा सर्वदा निवास करे है ॥
ता देवीकी अनुग्रहसें मैं अद्दष्टपदार्थोंकों जानती हूं ॥ जैसे पूर्व भानुमतिके गुह्यस्थानका तिल
जानती भई ॥ ५८ ॥ दोहा ॥ सूत्रार्थ सुइतरीतसें, जब भुज श्रवण कीन ॥ मनमें भयो प्रसन्न
अति, द्रव्यसु वहुविध दीन ॥ ५९ ॥ गीयाछन्द ॥ इह भांत कालीदासकी विख्यात भव ज-
नमें कथा ॥ कृतकर्म भोगाभोग देवत यत्न ता हितही वृथा ॥ सम्राट्को इक जगत्भीतर मां-
गतो सुविराटको ॥ विन कर्मकुशल न कुशल होवत लहे स्वर्गकपाटको ॥ ६० ॥ भुजंग प्रयात
छन्द ॥ किये कर्मको भोग होवे सदाही ॥ अहे लोक विख्यात गाथा कदाही ॥ भयो कर्मको

वेग श्रीरामजीके ॥ भ्रमे दावमें दुःख सीतासतीके ॥ ६१ ॥ हरिश्चन्द्र काशी विके लोक जाने ॥ अहो धर्म तातादि दावं पियाने ॥ नलादि प्रभुः दुःख पाये नवीने ॥ पिता मात कारागृहे कृष्ण दीने ॥ ६२ ॥ जगज्जानतो चन्द्र हासीय गाथा ॥ सुने भारतादि ध्वने लोक माथा ॥ कहां लौं-कहों हौं भये भूप जेते ॥ गये कर्मके वेगसें रोवतेते ॥ ६३ ॥ कहों आन जीवानकी का कहानी॥ मरे छत्रधारी मिलो नाह पानी ॥ कियो कर्म जैसो तथा भोग देगा ॥ विना भोग छोरे नहीं कर्म वेगा ॥ ६४ ॥ दोहा ॥ विविध कर्मके वेग ते, करे भ्रमण यिह जीव ॥ कहित कुशल नहिं सुख लहे, विना कर्मकी सीव ॥ ६५ ॥ अर्थस्पष्ट ॥ तात्पर्ययिह ॥ प्रत्येक ज्ञानी अज्ञानी पुरुषका विचित्ररूप प्रारब्धकर्म होनेतें प्रत्येक ज्ञानी अज्ञानी पुरुषकों विचित्ररूपहि सुखदुःखका अनुभवरूप भोग्य होवे है ॥ यिह वार्ता श्रीकृष्णदेव गीतामेंभी कही है ॥ तहां अर्जुननें ऐसी

(शंका) करी है ॥ हे भगवन् 'आपकी शिक्षाते सर्वजीवोंकी धर्मविषे प्रवृत्ति तथा अधर्मते निवृत्ति क्यूंनहिं होवे है ॥ इसका (उत्तर) भगवान् कहे है ॥ ६६ ॥ ❋ सदृशंचेष्टतेस्वस्याःप्रकृतेर्ज्ञानवानपि ॥ प्रकृतिंयांतिभूतानिनिग्रहःकिंकरिष्यति ❋ अर्थयिह ॥ 'श्रवण' 'मनन' 'निदिध्यासन सें आत्मसाक्षात्वालेकों ज्ञानी कहे हैं ॥ सो श्रवण दोप्रकारका है ॥ एकश्रोत्र संबन्धरूप है औ द्वितीय विचाररूप है ॥ तत्त्वमस्यादि महावाक्यका जो गुरुमुखसें प्रतिपादित शिष्यश्रोत्रके साथ संबन्ध है सो प्रथम श्रवण कहिये है ॥ ❋ युक्तिभिर्वेदान्तवाक्याना मद्वितीय ब्रह्मणि तात्पर्यनिश्चयो द्वितीय श्रवणम् ॥ ❋ अर्थयिह ॥ षट्विधयुक्तिसें वेदांतवाक्योंका अद्वितिब्रह्ममें तात्पर्य निश्चयकों श्रवण कहेहैं ॥ सो षट्युक्ति यिह है ॥ ❋ उपक्रमोपसंहारा वभ्यासोऽपूर्वता फलम् ॥ अर्थवादोपपत्ती च लिंगं ता

त्पर्य निर्णये ❋ अर्थयिह ॥ छान्दोग्य उपनिषद्के षष्ठेअध्यायके आरम्भमें ॥ उद्दालकऋषिनें अपनें पुत्र श्वेतकेतुकेप्रति ॥ ❋ सदेवसोम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयम् ❋ ऐसे अद्वितीयब्रह्मका उपदेश करा है ॥ श्रुति ❋ अर्थयिह ॥ हे प्रियदर्शन यिह जगत् अपनी उत्पत्तिसें पूर्वसद्रूप होता भया तथा प्रसंगसमाप्तिमें ❋ ऐतदात्म्य मिदं सर्वम् ❋ यिह संपूर्ण आत्मा स्वरूप है ऐसे कहा है॥ आद्यन्तमें एकार्थका बोधक होणेते उपक्रम उपसंहारकों एकहि लिंग कहे हैं ॥ १ ॥ तैसे षष्ठेहिमें ❋ तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो ❋ अर्थयिह ॥ सो सत्यस्वरूप आत्मा तेरेसें अभिन्न है अर्थात तूंहि हैं हे श्वेतकेतो ॥ ऐसे नवधाभ्यास करा है ॥ २ ॥ और श्रुतिप्रमाणसें विना प्रमाणान्तरकी अविषयताकों अपूर्वता कहे हैं ॥ जैसे षष्ठेहिमें अत्रवावकिल सत्सोम्य न निभालयसे ❋ अर्थयिह ॥

हे प्रियदर्शन इस कायमेंहि सद्रूपब्रह्म स्थित है ॥ ताकों तुम नहिं जानते ऐसे कहा है ॥ ३ ॥ और अद्वितीय ब्रह्मके ज्ञानसें ताकी प्राप्तिरूप फलकाभी षष्ठेमेंही ❋ तस्यतावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथसंपत्स्ये ❋ अर्थ यिह ॥ तिस ज्ञानीकों तावत्कालही विलम्ब है ॥ यावत्काल प्रारब्धसें निवृत्त नहिं होता ॥ तदनन्तर यिह वैदेह कैवल्यकों प्राप्त होवे है ऐसे प्रतिपादन करा है ॥ ४ ॥ और प्रशंसक वाक्योंकों अर्थवाद कहे हैं ॥ सो भीषष्ठेमेंही ❋ येनाश्रुतं श्रुतं भवत्य मतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति ❋ अर्थयिह ॥ जिस ब्रह्मके श्रवणसें अश्रुत पदार्थकाभी श्रवण हो जावे है औ नहिं मननकरेकाभी मनन होजावे है ॥ तथाऽनिश्चतकाभी निश्चय होजावे है ऐसें स्तुति करी है ॥ ५ ॥ और नानाविध दृष्टान्तसें प्रकृत वस्तुके चिन्तनकों उपपत्ति कहे हैं सोभी षष्ठेहिमें ❋ वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयं मृतिकेत्येव सत्यमिति ❋ अ-

र्थयिह ॥ घटादि पदार्थ वाणिके उच्चारणमात्रसें भिन्न हैं ॥ वास्तवसें मृत्तिकाहि सत्य है ॥ ऐसें कथन करा है ॥ ६ ॥ ऐसेहि छान्दोग्यमें उद्दालकनें मृत स्वर्ण लोहादिकोंके दृष्टांतोंसें कार्यकारणके अभेदसें बहुधा ब्रह्ममें अद्वितीयता प्रतिपादन करीहै ॥ इसप्रकारकी षट्‌विधयुक्तिसें वेदान्तवाक्योंका अद्वितीयब्रह्ममें निश्चयहि श्रवणहै ॥ वेदान्त वाक्यअद्वितीय ब्रह्महिके प्रतिपादक हैं।वा।अन्यके बोधक हैं ॥ ऐसी असंभावना श्रवणसें निवृत होवे है ॥ ॥ १ ॥ ❋श्रुतार्थस्योपपत्तिभिश्चिन्तनं मननम् ❋ अर्थयिह ॥ गुरु वेदांतसें श्रवण करे अद्वितीयब्रह्मकों युक्तियोंसें चिन्तनकों मनन कहे हैं तिस युक्तिसमुदायकों कहे हैं ॥ जीव ईश्वरका भेद निरुपाधिक है ।वा। सोपाधिक है ॥ आद्यपक्ष सम्भवै नहीं ॥ काहेते यस्याभावः स प्रतियोगी ॥ १ ॥ और यस्य सम्बन्धः स प्रतियोगी ॥ २ ॥ और यस्य सादृश्य स प्रतियोगी

॥ ३ ॥ इति ॥ यस्मिन्नऽभावः स अनुयोगी ॥ १ ॥ और यस्मिन् सम्वन्धः स अनुयोगी ॥ २ ॥ और यस्मिन् सादृश्यं स अनुयोगी ॥ ३ ॥ ऐसे प्रतियोगी अनुयोगी जिस अभाव।वा।संवन्ध ।वा।सादृश्यके प्रत्यक्ष होवें॥ सो अभाव तथा संबंध तथा सादृश्यहि प्रत्यक्ष होवे है ॥ प्रकरणमें भेदरूप अन्योऽन्याभावके निरुपाधिक जीव ईश्वररूप प्रतियोगि अनुयोगी प्रत्यक्ष होवे नहीं यांते तिन्होका भेदभी प्रत्यक्ष संभवे नहीं ॥ किंवा ॥ जीवसाक्षीते ईश्वरसाक्षीकों भिन्न मानता हैं । वा। ईश्वरसाक्षीतें जीव साक्षीकों भिन्न मानता हैं ॥ प्रथम पक्ष अंगीकार करें तौ ईश्वरमें जडत्वताकी प्राप्ति होवेगी ॥ काहेते जीवते भिन्न जो घटादिक हैं सो जडरूप हैं ॥ तैसे जीवते भिन्न ईश्वर होणेते ईश्वरभी जडरूपही होवेगा ॥ ईश्वरकों ❀ विज्ञान मानन्दं ब्रह्म ❀ यिह श्रुति चेतनरूप कहे है ॥ किंवा ॥ ब्रह्मरूप ईश्वरसाक्षीकों जड होणेते ईश्वरसाक्षीमें अज्ञानकी वि-

षयतारूप अज्ञातता नहीं होवेगी औ अज्ञातताके अभाव होणेते ब्रह्म बोधक वेद वाक्य सकल अप्रमाण होवेंगे ॥ काहेते अज्ञातपदार्थका जो ज्ञापक होवे अर्थात् प्रकाशक होवे सो प्रमाण कहिये है ॥ यिह प्रमाणका लक्षण वेदवाक्यनमें समन्वय होवे नहीं ॥ यांते जीवते भिन्न ब्रह्म है यिह पक्ष असंगत है ॥ तैसे ब्रह्मरूप ईश्वर साक्षीते जीव भिन्न है यिह पक्षभी बने नहीं ॥ काहेते ब्रह्मरूप ईश्वर साक्षिते जीव साक्षी भिन्न होवे तौ जैसे ब्यापक ब्रह्मरूप ईश्वर साक्षीते भिन्न घटादिक परिच्छिन्न होणेते कल्पित है ॥ तैसे ब्रह्मरूप ईश्वर साक्षीते भिन्न परिच्छिन्न जीव साक्षीभी कल्पित होवेगा ॥ यांते ब्रह्मरूप ईश्वर साक्षी ते जीव साक्षी भिन्न नहीं किंतु ब्रह्मरूप है ॥ किंवा ॥ तर्कसेंभी यिह पक्ष संभवे नहीं ॥ काहेते अ-निष्टका आपादन तर्क कहिये है ॥ तथाच ॥ यदि ब्रह्मरूप ईश्वर साक्षीते जीवसाक्षी भिन्न

स्यात तर्हिं अद्वैत श्रुति विरोधः स्यात् इत्यादि दोष आने ते निरुपादिक भेद पक्ष असंगत है औ सोपाधिक भेदपक्षभी संभवे नहीं ॥ काहेते यामें यिह प्रष्टव्य है ॥ भेदका साधक उपाधि अज्ञान है । वा । अतःकरण है ॥ प्रथम पक्ष कहें तो अज्ञान अव्याकृत औ ब्रह्मके भेद का साधक है ॥ जीव औ ब्रह्मके भेदका साधक नहीं ॥ किंवा ॥ जीवकी अज्ञान उपाधि अंगिकार करें तौ ईश्वर औ जीव उभय सर्वज्ञ । वा । अल्पज्ञ हुये चाहिये ॥ काहेते सर्वज्ञता औ अल्पज्ञता उपाधिकृत है ॥ सो जीव ईश्वरकी उपाधि एक अज्ञान है यद्यपि शुद्ध सत्व प्रधान अज्ञान ईश्वरकी उपाधि होणेते ईश्वर सर्वज्ञ है औ मलिन सत्वप्रधान अज्ञान जीवकी उपाधि होणेते जीव अल्पज्ञ है तथापि जीव औ ब्रह्मके भेदमें औपाधिकता अज्ञानजन्यतारूपहै । वा । अज्ञान भास्यतारूप है । वा । अज्ञानाऽधीनतारूपहै यिह प्रष्टव्यहै॥ जन्यतारूप प्रथम पक्ष तो

जीवब्रह्मके अभेदकों अनादि होणेते असंगत हैं औ जीवब्रह्मके भेदकों सादि मानकर जन्यता मानेतौ इस मेंभी यिह प्रष्टव्य है॥अज्ञान भेदकों प्रयोजन विना रचे है।वा।प्रयोजन अर्थ रचे है॥प्रथम पक्ष कहें तौ विनाप्रयोन कार्य उत्पत्तिमें कारणकी प्रवृत्तिका अभाव होणेते संभवे नहीं औ द्वितीय पक्ष कहे तौ जीवके प्रयोजन अर्थ रचे है। वा। अपणे प्रयोजन अर्थ रचे है यिह प्रष्टव्य है॥ प्रथम पक्ष कहें तौ जीव ईश्वरके भेदकी उत्पत्तिते पूर्व जीवके स्वरूपका अभाव होणेते जीवके प्रयोजन अर्थ अज्ञाननें भेदकों रचा है यिह पक्ष असंगत है यद्यपि जीवके स्वरूपकों अनादि अनंत होणेते ताका अभाव कहना संभवे नहीं तथापि अनादि अनंत कूटस्थरूप जीवके वास्तव स्वरूपका अभाव हम नहीं माने हैं किंतु साभास अंतःकरणरूप जो जीवका स्वरूप है॥ताका जीव ईश्वरके भेदकी उत्पत्तिते पूर्व अभाव होणेते॥ ताके प्रयोजन अर्थ अज्ञानकृत भेदका अं-

गकार करना अयुक्त है औ अपने प्रयोजन अर्थ अज्ञाननें भेदकों करा है यिह द्वितीय पक्ष क
हेतौ यामेंभी यिह प्रष्टव्य है॥ अज्ञान प्रयोजन आश्रय औ विषयका लाभ है।वा। कोई और
प्रयोजन है॥ प्रथम पक्ष कहें सोभी संभवे नहीं काहेते जैसे भेदकी सिद्धिते पूर्व ईशजीवादि
कल्पनाते रहित चिन्मात्र अज्ञानका आश्रय औ विषय है॥तैसे भेदकी सिद्धिते अनंतरभी निर्वि
भाग चिन्मात्रहि आश्रय औ विषय संभवे है॥अज्ञानसें अनंतर भावी जीव। वा। ईश्वरअज्ञा-
नका आश्रय औ विषय संभवे नहीं औ आश्रय विषयके लाभते विना और अज्ञानका प्र-
योजन है यिह द्वितीय पक्ष कहें सोभी संभवे नहीं॥ काहेते आश्रय औ विषयके लाभते
विना अज्ञानकों कौन प्रयोजन होवे है किंतु कोई होवे नहीं॥सो अज्ञानका आश्रय औ विष-
य चिन्मात्र है॥ इस रीतिसें जीव ब्रह्मका भेद अज्ञानजन्य नहीं होणंते सोपाधिक नहीं

और जीवब्रह्मका भेद अज्ञान भास्य है ॥ यिह द्वितीय पक्षभी संभवे नहीं ॥ काहेते जैसे जडस्वभाव घटते पटका प्रकाश होवे नहीं ॥ तैसे जडस्वभाव अज्ञानते जीवब्रह्मके भेदका प्रकाशरूपभास्य संभवे नहीं और जीवब्रह्मका भेद अज्ञानाऽधीन है यिह तृतीय पक्ष कहें सोभी संभवे नहीं ॥ काहेते जीवके भेदका अनुयोगिरूप आश्रयब्रह्म है औ ब्रह्मके भेदका अनुयोगिरूपआश्रयजीव है ॥ यांते अज्ञानाऽधीनतारूपआश्रय भेदका संभवे नहीं ॥ इसरीतिसें अज्ञान उपाधिक भेद असंगत है और अंतःकरण उपाधिक भेद है यिह द्वितीय पक्ष कहें सोभी संभवे नहीं ॥ काहेते यामेंभी यिह प्रष्टव्य है ॥ अंतःकरण वास्तव है ।वा। कल्पित है ॥ प्रथमपक्ष कहें सो संभवे नहीं काहेते ❀ एक मेवा द्वितीयं ❀ इत्यादि अद्वितीय प्रतिपादक श्रुतिसाथ विरोध होवेगा तथा सुषुप्तिमें अंतःकरणकी लयता प्रतिपा-

वि० दक ❀ मनः सर्वैर्ध्यानैःसहाप्येति ❀ इत्यादि श्रुतिसाथ विरोध होवेगा ❀ अर्थयिह ॥ २०
मन यावत् वृत्तियोंसहित सुषुप्तिअवस्थामें 'अप्येति' कहिये लयकों प्राप्त होवे है ॥ किंवा ॥
॥ १९ ॥ जैसे जाग्रत् स्वप्नमें स्थूल कामादिक वृत्तियोंकी प्रतीति होवे है ॥ तैसे सुषुप्तिमेंभी स्थूल
कामादिक वृतियोंकी प्रतीति होनी चाहिये सो होवे नहीं ॥ यांते अंतःकरण वास्तव है यिह
पक्ष असंगत है औ अंतःकरण कल्पित है यिह द्वितीयपक्ष कहें सोभी संभवे नहीं ॥ का-
हेते कल्पित अंतःकरण अनादि है । वा । सादि है यिह प्रष्टव्य है ॥ प्रथम पक्ष कहेंतो संभवे
नहीं ॥ काहेते पंचभूतोंकी सत्त्वांशते अंतःकरणकी उत्पत्ति सर्व शास्त्रमें प्रतिपादन करी है
इत्यादि दोष आनेते अंतःकरण अनादि पक्ष संभवे नहीं औ अन्तःकरण सादि है यिह ॥ १९ ॥
द्वितीयपक्षभी संभवे नहीं ॥ काहेते ❀ जीवेशौचविशुद्धाचित्तस्यभेदस्तयोर्द्वयोः ॥ अ-

विद्यातच्चितोर्योगःषडस्माकमनादय ❁ इस आचार्यके वचनसें जीव । १ । ईश । २ । शुद्ध चेतन । ३ । तिसका तिन दोनोंते भेद । ४ । माया । ५ । मायाका चेतनसें सम्बन्ध । ६ । यिह षट् हमारे मतमें अनादि हैं औ इन षट्मेंहि जीवब्रह्मके भेदकीभी गनना है ॥ ता अनादि भेदकी औपाधिकता सादि अन्तःकरणमें सम्भवे नहीं ॥ इत्यादि युक्ति चिन्तनरूप मननसें जीवब्रह्मका भेद है । वा । अभेद है ऐसी प्रमेयगत असम्भावना दूर होवे है ❁ अनात्माकारवृत्तितिरस्कारेणआत्माकारमनसःप्रवाहोनिदिध्यासनम् ❁ । अर्थयिह ॥ अनात्मारूप जगतके आकार वृत्तितेविना आत्माकार मनका जो प्रवाहहै सो निदिध्यासन कहियेहै ॥ ऐसे निदिध्यासनसें जीवब्रह्मका भेद सत्य है तथा देहादिक सत्य हैं ऐसा विपर्यय निवृत्त होवे है ॥ इसप्रकारके श्रवण मनन निदिध्यासनसें उत्पन्न भया जो आ-

त्मनिश्चय अर्थात् जैसे अज्ञानी पुरुषका देहमें आत्मनिश्चय होवे है ॥ तैसे सत्य अद्वितीयमें जो आत्मनिश्चय सो ज्ञान कहिये है ॥ ऐसे आत्मनिश्चयरूप ज्ञानवाला जो पुरुष. सो ज्ञानी कहिये है ॥ हे अर्जुन ऐसा ज्ञानवान्‌भी कर्मोंके उदभुत संस्काररूप प्रकृतिके अनुसार चेष्टा करे है॥ तात्पर्य यिह ॥ ज्ञानवानके पुण्यपापरूप जो सञ्चित कर्म हैं सो तो ज्ञानरूप अग्निकरके दग्ध होवे हैं औ क्रियमाण शुभकर्मोंका फल सेवादि करणेवालेकों प्राप्त होवे है और दैवनेतसें हुए निषिद्धकर्मका फल निन्दादि करणेवालेकों प्राप्त होवे है और शेष प्रारब्धकर्मसें ज्ञानीकी खानपानादिकोंमें प्रवृत्ति होवे है ॥ इसप्रकारसें ज्ञानीभी यदि कर्मोंके अनुसारहि चेष्टा करे है तौ इतर जीवोंकी कौन कथा अर्थात् यिह निश्चितहीं है ॥ यांते निखिल जीव कर्मोंके वेगसें भ्रमण करे हैं ॥ ज्ञानी औ अज्ञानीका इतनाहि भोगमें अन्तराय है ॥ ज्ञानी सञ्चित-

क्रियमाणकर्म नहीं भोगे है औ अज्ञानीकों भोग होवे है ॥ हे अर्जुन इसमें तुझका औ मेरा निग्रह क्या कर सकता है ॥ अर्थात् तुझ राजासें और मुझ ईश्वरसेंभी इन जीवोंकी धर्मविषे प्रवृत्ति तथा अधर्मविषे निवृत्ति होवे नहीं (ननु) आपसेंभी प्रवृत्ति निवृत्ति नहीं होती तौ आपमें ईश्वरताका अभाव होवेगा (उत्तरः) हे अर्जुन जैसे राजा अपने राज्यमें करणे औ न करणे तथा अन्यथा करणेकों समर्थ हुयाभी परन्तु जैसा कोई कर्म करे है ॥ उसका वैसाहि फल देवे है तथा मैंभी अपनी सृष्टिमें करणे न करणे तथा अन्यथा करणेकों समर्थ हुयाभी प-रन्तु कर्मानुसार फलकों देता हूं ॥ यांते ईश्वरतामें क्षति नहीं (ननु) हे भगवन् आपके क-थनका वशिष्ट वचनसें विरोध है ॥ काहेते वहु पुरुषार्थाधीन जीवकी प्रवृत्ति मानता है औ आप कर्माधीन मानते हों 'तथाच' ❀ सर्वमेवहि सर्वदा संसारे रघुनन्दन ॥ सम्यक् प्रयु-

क्तात्सर्वेण पौरुषात्समवाप्यते ॥ १ ॥ उच्छास्त्रंशास्त्रितञ्चेति पौरुषं द्विविधं स्मृतम् ॥ तत्रोच्छा-स्त्रमनर्थाय परमार्थाय शास्त्रितम् ॥ २ ॥ ❋ अर्थ यिह ॥ हे रामचन्द्र इस संसारमें सम्यक् पुरु-षार्थसें पुरुष यावत् पदार्थोंकों सर्वदा लाभ करे है ॥ १ ॥ ईप्सितकार्यकी सिद्धि करणे योग्य पुरुषार्थकों सम्यक् पुरुषार्थ कहे हैं ॥ सो निषिद्ध औ विहित भेदते पुरुषार्थ दो प्रकारका है ॥ आद्यका यथा चोरी आदिकोमें प्रयत्न सो अनर्थका हेतु है औ द्वितीय जैसे सत्सङ्गति करणी सो परमार्थकेवास्ते है अर्थात् सो मोक्षका हेतु है॥ २ ॥ इसरीतिसें वसिष्ठके मतमें पुरुषार्थहि मुख्य होणे ते आपके वचनसें विरोध है ॥ इसका (उत्तर) श्री कृष्णदेव तृतीयाध्यायके चौतीसवें श्लोकसें कहे है ❋ इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ॥ तयोर्नवशमागच्छेत्तौह्यस्यपरि पन्थिनौ॥१॥❋अर्थ यिह ॥ प्रत्येक इन्द्रियके शब्दस्पर्शादि अर्थमें रागद्वेष स्थित है ॥ अर्थात् शा-

स्त्राऽविहितभी अनुकूल शब्दादिकोंमें राग होवे है औ शास्त्रविहितभी प्रतिकूलमें द्वेष होवे है॥ तांते मुमुक्षु विषयसम्बन्धि रागद्वेषके वशकों न प्राप्त होवे ॥ रागादि इसके परमविरोधी नरककों लेजानेवाले हैं ॥ १ ॥ इसरीतिसें पुरुष प्रयत्नभी सफल है और कृतकर्मका फल सुखदुःख होणा यिह कर्मकी सफलता है॥ यांतें परस्पर वाक्योंका विरोध नहीं ❀तात्पर्ययिह॥ कर्मरूप बीजसें दोअंकुर उत्पन्न होवे हैं ॥ एक अदृष्ट दूसरा वासना ॥ अदृष्टरूप अंकुरका सुखदुःखरूप फल होवे है ॥ सो इस जीवकों अवश्य भोक्तव्य है ॥ शुभाऽशुभ वासनारूप द्वितीय अंकुरका शुभाऽशुभ प्रवृत्तिरूप फल होवे है ॥ कुसङ्गरूप पुरुषार्थ करणे ते शुभ वासनाका फल शुभ प्रवृत्ति होवे नहीं ॥ यांते कुसंगरूप पुरुषार्थं सफल है ॥ सत्सङ्गविषे पुरुषार्थ करणे ते अशुभ वासनाका फल अशुभ प्रवृत्ति होवे नहीं ॥ यांते सत्सङ्गविषे पुरुषार्थ सफल

है ॥ इसप्रकारसें कर्म तथा पुरुषार्थके कहिनेवाले वचनोंका विरोध नहीं ॥ यांते प्रवाहरूपते अनादि प्रारब्धकर्म भोगका कारण है और पुरुषार्थ अदृष्ट औ वाशनारूप उभै अंकुरका हेतु है परन्तु जहां कर्मरूप बीजका वाशनारूप अंकुर दुर्बल होवै औ अदृष्टरूप अंकुर प्रबल होवै॥तहां तो अदृष्टरूप प्रारब्धकर्महीं अनुकूल प्रतिकूल पदार्थके सम्बन्धद्वारा भोगका हेतु है औ जहां अदृष्टरूप प्रारब्धकर्म दुर्बल होवै औ वाशनारूप अंकुर प्रबल होवै ॥ तहां उत्साहरूप । वा । क्रियारूप पुरुषार्थभी भोगका हेतु है (ननु) कर्म विशेषकाही फल विशेष पुरुषार्थ होवे है ॥ काहेते जेती सामग्रीविना प्रारब्धकर्मका भोग होवे नहीं ॥ तेतीहि सामग्रीकों प्रारब्धकर्म रचे है ॥ सो पुरुषार्थ विना प्रारब्धकर्मका फल होवे नहीं ॥ यांते प्रारब्धकर्म पुरुषार्थकों रच-कर अपणा फल देवे है ॥ इसरीतिसें कर्मकाहि अवान्तर फल पुरुषार्थ है अतिरिक्त नहीं-

(उत्तरः) हे शिष्य भोगदेणेकों अभिमुख भये जो कर्म तिनका नाम प्रारब्धकर्म है ॥ तिनमें विचार यिह है ॥ पूर्व जन्मजन्मान्तरमें जब वहु कर्म करे रहे ॥ तिसकालमें पुरुषार्थसें करे रहे । वा । किंसी प्रारब्धान्तरसें ॥ यदि पुरुषार्थसें कहों तो प्रारब्धकाही फल विशेष पुरुषार्थ है यिह कहिना सम्भवे नहीं ॥ काहेते जिससें जिस वस्तुकी उत्पत्ति होवे है ॥ तिसमें तिसका फलरूप व्यवहार कदापि होवे नहीं ॥ जैसे दण्ड चक्र चीबरादिकोंते घटकी उत्पत्ति होवे है औ घटका फलरूप दण्ड चक्रादि ऐसा व्यवहार होवे नहीं ॥ यांते जन्म जन्मान्तरके पुरुषार्थंते उत्पन्न होनेवाले प्रारब्धकर्मकी पुरुषार्थमें फलरूपता सम्पादन करसके नहीं ॥ यदि कहों पूर्वजन्म जन्मान्तरमें होनेवाले कर्म प्रारब्धान्तरसें करे रहे तो वहुभी पुरुषार्थसें करे रहे । वा । प्रारब्धान्तरसें ऐसी शंकाका तहांभी सम्भव है ॥ ऐसी पुनः पुनः शं-

का करणे ते उभय पक्षमेंहि अनवस्थादि दोषोंका सम्भव होनेते एकत्र पक्षपातिनी युक्तिका उभयत्रहि संभव नहीं ॥ यांते पूर्वोक्त जो कर्म प्रतिपादक तथा पुरुषार्थ प्रतिपादक शास्त्रकी व्यवस्था वुहि साध्वी है ॥ ॥ किञ्च ॥ यदि प्रारब्धकर्महि जीवके भोगार्थ नाना विध सामग्रीकों रचकर तदुपयोगी पुरुषार्थकोंभी रचिते होवें तौ आगे क्रियमाण कर्मोंकी उत्प-त्ति नहिं होवेगी ॥ काहेते पुरुषार्थ तो केवल प्रारब्धकर्मके भोगके वास्ते सामग्रीभूतयत्किञ्चि-त है औ क्रियमाणकर्म शुभ तथा अशुभ महान् पुरुषार्थसें विना होवे नहीं॥यांते भोग सामग्रीरू-पाहि पुरुषार्थ माने तौ यज्ञदानहवनादि कर्म करणेमें जो जीवका पुरुषार्थ है ॥सो केवल यज्ञदान करणेसें जो उत्पन्न भया आनन्द तथा श्रम तिनकाहि सामग्रीरूप है ॥ ऐसा मानना होवेगा ॥ तांते यज्ञदानादि क्रियमाणकर्म विधायिक शास्त्रकों निष्फलत्त्वापत्ति होवेगी और विना ज्ञानते

॥ २३ ॥

॥ २३ ॥

मोक्षप्रसंग होवेगा ॥ काहेते ज्ञानते मोक्ष होवे है औ ज्ञानहीसें सञ्चित तथा क्रियमाण कर्मोंका नाश होवे है औ प्रारब्धकर्मका भोगसें नाश होवे है ॥ यिह वेदान्तका सिद्धान्त है सो अब अपेक्षत नहीं ॥ काहेते प्रारब्धकर्मकी विश्रान्ति भोगसें अनन्तर आपही होवेगी औ सञ्चितकर्म दो चारजन्ममें और भोगदेकर आपही विश्रान्त हो जावेंगे औ शेष रहे क्रियमाणकर्म यज्ञदानादि सोतो केवल प्रारब्धका फलरूप हैं औ फलसें फलान्तरकी उत्पत्ति होवे नहीं ॥ यांते वहु क्रियमाणकर्म प्रारब्धरूप होइकर जन्मजन्मान्तरके हेतु कदापि होसकेनहीं ॥ इस रीतिसें ज्ञानते मोक्षप्रतिपादक शास्त्रकीभी निष्फलता होवेगी ॥ किञ्च ॥ यदि ऐसा मानो जो प्रारब्धकर्मही भोग देता हुया यत्किञ्चित् क्रियमाणकर्मकोंभी उत्पन्न करे है ॥ यांते क्रियमाण कर्मका अभाव सम्भवे नहीं ॥ इसरीतिसें पूर्वोक्त दोषभी कोई नहीं तथापि पुण्यात्मा सदा

पुण्यात्माही रहेंगे और पापात्मा सदा पापात्माही रहेंगे यिह दोष बज्रलेप है ॥ काहेते पुण्या-त्माका प्रारब्धकर्म पुण्यरूपही यत्किञ्चित् क्रियमाणकर्मकों उत्पन्न करेगा औ पापात्माका प्रार-रब्धकर्म पापरूपही क्रियमाणकर्मकों उत्पन्न करेगा ॥ यांते पुण्यात्मा अधिक पुण्य सञ्चयके लिये यत्न करे और पापिष्ट पतितकर्मोंकों त्यागकर पावनकर्ममें प्रवृत्ति करे ॥ ऐसे पुरुषार्थका वि-धायक शास्त्र निष्फलही हो जावेगा ॥ इत्यादि अनेक दोष कर्मोंते भिन्न पुरुषार्थ नमानणेते आवे हैं परन्तु पाठ वृद्धिते सङ्कोच करा है और वेदान्तसिद्धान्त तो यिह है ॥ जीव कर्म करणेंमें स्वतंत्र है ॥ अपणें पुरुषार्थसें चाहो शुभकर्म करलेवे चाहो अशुभकर्म करलेवे और कर्मों-का फल भोगणेमें परतन्त्र है ॥ जैसा जीव कर्म करे है वैसाही उसका फल जगदीश्वर पक्षपा-तसेंरहित नियमसें देवे है ॥ ऐसेही जीवके स्वतंत्र कर्म करणेका तथा परमात्माका जीवोंकों

कर्मानुसार फल देणेका प्रवाह अनादिहै ॥ अमुक कालमें हुया और ऐसे हुया ऐसा कोईभी क-
हिणेकों समर्थ नहीं ॥ इसरीतिसें कर्मप्रतिपादक शास्त्रकी तथा पुरुषार्थविधायक शास्त्रकी निष्फ-
लताभी नहीं (ननु) श्री गुरु अर्जुनदेव गौडीरागविषे ❋ करे करावे आपे आप ॥ मानुषके
कछु नाहिं हाथ ❋ इस प्रकारसें कर्मोंका करणा औ करावणा सर्व केवल ईश्वराधीन कहितेहै ॥
औ आप कहितेहो जो यिह जीव करणेमें स्वतंत्रहै तथा फल भोगणेमें परतंत्रहै ॥ यांते प-
रस्पर विरोध होणेते मेरा सन्देह दूर होवे नहीं (उत्तरः) हे शिष्य जैसे जीवोंके रात्रीकृत
शुभाशुभकार्योंमें वास्तवसें प्रदीप चन्द्रादिकृत विषयता बाधतहुएभी परन्तु अमुक मदीयकार्य
प्रदीपनेकिया । वा । चन्द्रने किया ऐसा व्यवहार लोकमें होवे है ॥ तथा अन्तर्यामी परमा-
त्माकी कार्यमात्रमें वास्तबसें विषयता बाधत हुयेभी परन्तु सत्ता स्फुरणद्वारा चिदाभाससंज्ञिक

जीवोंके कर्मोंकों करता है औ करावता है ॥ याते वास्तबसें स्वइच्छाके अनसार सकलजीव कर्म करेहैं औ फल पतंत्र होइके भोगेहैं ॥ अन्यथा ऐसी व्यवस्थासें अर्थ न करेंगे तौ श्रीगुरुजीके पूर्वोक्त वाक्योंका विरोध होवेगा ॥ काहेंते यिह जीव स्वतंत्र कर्मोंकों करता है औ कृतकर्मका फल पराधीन होइकर भोगे है ॥ यिह वार्ता श्रीगुरु अर्जुन देवजीही 'माझराग' विषे प्रतिपादन करे है ॥ तथाच ❀ जेहाबीजे सो लुणे कर्मा संदड़ा क्षेत ❀ अर्थयिह ॥ जीव कर्म क्षेत्रको स्वकीय इच्छाके अनुसार जैसा बोवे है ॥ वैसाही तिसका फल परमात्मासें लाभ करे है ॥ यांते इसरीतिसें परस्पर श्रीगुरुवाक्योंका तथा अन्य वेदान्तवाक्योंकेसाथ श्रीगुरुवाक्योंका विरोध नहीं ॥ ६४ ॥ पूर्वप्रसङ्ग यिहहै ॥ प्रत्येक जीवका विचित्ररूप प्रारब्धकर्म होणेते प्रत्येक जीवकों विचित्ररूपही सुखदुःखका अनुभवरूप

भोग होवे है ॥ इसप्रकारसें सञ्चित क्रियमाण प्रारब्धभेदसें कर्म त्रयप्रकारकेहैं ॥ सो जीवके विशेषण भागमें रहेहैं विशेष्यमें नहीं (ननु) विशेषण विशेष्य किसकों कहेहैं ॥ (उत्तरः) एक उपलक्षण होवेहै औ द्वितीय उपाधि होवेहै औ तृतीय विशेषण होवेहै ॥ कदाचित् एकदेशमें वर्त्ताहुया जो व्यावर्त्तकहोवे सो उपलक्षण कहियेहै औ जो व्यावर्त्त होणेवालाहोवे सो उपलक्षित कहियेहै ॥ जैसे कदाचित् देवदत्त गृहके एकदेशमें काक वर्त्तता हुया देवदत्त गृहका व्यावर्त्तकहै ॥ यांते काक उपलक्षण कहियेहै ॥ व्यावर्त्त-होणेवाला देवदत्त गृह सो उपलक्षित कहिये है ॥ तैसे कदाचित् अन्तर्यामी ईश्वरके एकदेशमें अन्तःकरण वर्त्तताहुया अन्तर्यामी ईश्वरका व्यावर्त्तकहै ॥ यांते अन्तःकरण उपलक्षण कहियेहै औ व्यावर्त्त होणेवाला अन्तर्यामी ईश्वर उपलक्षित कहियेहै और

जो वर्त्तमानकालविषे वर्त्ताहुया जा देशविषे आप होवे ॥ ता देशमें रहिणेवाली वस्तुका कनारे स्थित होइकर व्यावर्त्तक होवे सो उपाधि कहियेहै औ व्यावर्त्त होणेवाला जो होवे सो उपहित कहियेहै ॥ जैसे घट वर्त्तमानकालविषे वर्त्तता हुया जा देशमें आप होवे ता देशमें रहिणेवाले आकाशका कनारे स्थित होइकर व्यावर्त्तक है ॥ यांते घट उपाधि कहिये है औ व्यावर्त्त होणेवाला घटाकाश उपहित कहिये है ॥ तैसे वर्त्तमानकालविषे वर्त्ताहुया जीव साक्षीके कनारे स्थित होइकर अन्तःकरण जीव साक्षीका व्यावर्त्तकहै ॥ यांते अन्तःकरण उपाधि कहिये है औ व्यावर्त्त होणेवाला जीव साक्षी उपहित कहिये है और वर्त्तमानकालविषे जो वर्त्तता हुया अपणें सहितही व्यावर्त्त होवे सो विशेषण कहियेहै ॥जैसे वर्त्तमानकालविषे कुण्डल वर्त्तते हुये अपणें सहितही पुरुषका व्यावर्त्तकहैं ॥ यांते कुण्डल विशेषण कहियेहैं औ व्यावर्त्त होणेवाला

पुरुष विशेष्य कहियेहै ॥ तैसे अन्तःकरण वर्त्तमानकालविषे वर्ततहुया अपणें सहितही जा देशविषे आप होवे ता देशविषे रहिणेवाले चेतनका व्यावर्त्तकहै ॥ यांते अन्तःकरण विशेषण कहियेहै औ व्यावर्त्त होणेवाला चेतन विशेष्य कहियेहै (ननु) जीवका अन्तःकरण विशेषण अङ्गीकार करणेसें प्राज्ञनामा जीवका लोप होवे है ॥ काहते सुषुप्तिके अभिमानी जीवका नाम प्राज्ञ कहियेहै॥सो सुषुप्तिमें अन्तःकरणरूप विशेषणके अभाव होणेते तद्विशिष्ट प्राज्ञकाभी अभाव होवे है ॥ द्वितीय शंका यिह है॥सुषुप्तिमें प्राज्ञनामा जीवने जो सुखका अनुभव करा है॥ ता सुखकी जाग्रत्में विश्वनामा जीवकों स्मृति संभवे नहीं ॥ काहेते जा पदार्थके अनुभव कर-नेवाला जो होवेहै ता पदार्थकी ताकोंही स्मृति होवे है ॥सुषुप्तिमें सुख पदार्थका अनुभव तो प्राज्ञनामा जीवने कराहै ॥ यांते सुख पदार्थकी स्मृतिभी प्राज्ञकोंही होवेगी ॥ जाग्रत्के अभि-

मानी विश्वनामा जीवने सुषुप्तिके सुखका अनुभव कीआ नहीं ॥ यांते ताकों सुषुप्तिके सुखकी स्मृतिभी नहीं होणी चाहिये॥ जो हठाग्रहते सुषुप्तिमें प्राज्ञके अनुभूत सुखकी जाग्रत्‌में विश्वनामा जीवकों स्मृति अंगीकार करें तौ देवदत्तके अनुभूत पदार्थकी यज्ञदत्तकोंभी स्मृति होणी चाहिये औ स्मृति होवे नहीं ॥ तैसे प्राज्ञके अनुभूतकीभी विश्वनामा जीवकों स्मृति संभवे नहीं ॥ प्रथम शंकाका यिह समाधान है ॥ सुषुप्तिमें जा अविद्यांशमें अंतःकरण लयभावकों प्राप्ति होवे है ॥ सा अविद्यांशभी विशेषण कहिये है ॥ यांते प्राज्ञनामा जीवकी हानी नहीं ॥ द्वितिय शंकाका यिह समाधान है ॥ स्वअनुभूतकी स्वकों स्मृति होवे है तथा स्वतादात्म्यवालेके अनुभूतकीभी स्वकों स्मृति होवे है ॥ 'स्वअनुभूतकी' कहिये विश्वके अनुभव करे हुए पदार्थकी 'स्वकों' कहिये विश्वकों स्मृति होवे है 'तथा

स्वतादात्म्यवालेके' कहिये विश्वके तादात्म्यवाले प्राज्ञके 'अनुभूतकीभी' कहिये अनुभव करे हुए पदार्थकीभी 'स्वकों' कहिये विश्वकों स्मृति होवेहै ॥ तात्पर्ययिह ॥ जैसे जितना महाकाश जलमें आया है॥ तितनाही महाकाश जलाकाश संज्ञाकों प्राप्त होवे है॥ जब शीतके प्रभावते जलाकाशकी उपाधिरूपजल बर्फरूपता करके घनीभाव होवे है॥ तब महाकाशही बर्फाकाश संज्ञाकों प्राप्त होवे है॥ तैसे जितना चैतन्य अविद्यामें आया है॥ तितनाहि चैतन्य सुषुप्तिमें प्राज्ञ संज्ञाकों प्राप्त होवे है॥ सो प्राज्ञरूपजीव अविद्या कर आच्छादित आनंदकों अनुभव करेहै ॥ ता अनुभवजन्यसंस्कार प्राज्ञकी उपाधिरूपअविद्यामें रहे हैं॥ सा प्राज्ञकी उपाधिरूपसंस्कारसहितअविद्या ॥ जब कर्माकी प्रेरीहुई स्वप्नजाग्रत्में अंतःकरणरूपता करके घनीभाव होवे है॥ तब अविद्या उपाधिक चैतन्यरूप प्राज्ञही तैजस

विश्व संज्ञाकों प्राप्त होवे है ॥ इस प्रकारसें प्राज्ञही तैजस विश्वरूप धारे है ॥ यांते विश्वके तादात्म्यवाला प्राज्ञ है ॥ इसीते प्राज्ञके अनुभूतकी विश्वकों स्मृति होवेहै ॥ यज्ञदत्तके तादात्म्यवाला देवदत्त ना होणेते ॥ देवदत्तके अनुभूतकी यज्ञदत्तकों स्मृति संभवे नहीं॥ (ननु) इस वृत्तिरहित पक्षमें स्मृति संभवे नहीं ॥ काहेते स्मृति संस्कारजन्य होवे है ॥ सो स्वरूपभूत सुखका अभव नाहोणेते तज्जन्य संस्कार संभवे नहीं॥ यांते इस वृत्तिरहित पक्षमें स्मृतिका असंभव है (समाधान) अभाव स्थलमें वस्तुका अभाव तीन तरहसें बोधन होवे है ॥ कहुं विशेषणाभाव प्रयुक्त विशिष्टाभावसें और कहुं विशेष्याभाव प्रयुक्त विशिष्टाभावसें और कहुं उभयाभाव प्रयुक्त विशिष्टाभावसें ॥ आद्यः जैसे दंडरूप विशेषणके अभावसें दण्डी पुरुषो नास्ति यिह व्यवहार होवे है औ द्वितीय जैसे दण्डरूप विशेषण सत्वेपि पुरुषरूप वि-

शेष्यके अभावसें दण्डी पुरुषो नास्ति यिह विशिष्टाभावकी प्रतीति होवे है औ तृतीय जैसे द-
ण्डरूप विशेषण तथा पुरुषरूप विशेष्य उभयके अभावसें दण्डी पुरुषो नास्ति यिह प्रतीति
होवे है॥ प्रकृतमें विशेषणाभाव प्रयुक्त विशिष्टाभाव सम्भवे है॥काहेते सुखरूप तथा सुषुप्ति अव-
स्थारूप विशेषणके अभावसें प्राज्ञरूप विशेष्यका अभाव प्रतीति होवे है॥ता अभावजन्य संस्कार
जीवके अंतःकरणमें रहे हैं॥ ता संस्कारोंते सुषुप्तिके स्वरूपभूत सुखादिकोंकी स्मृति होवे है
क्षति नहिं औ स्वप्न जाग्रतकेभी सुखदुःखकों वृत्ति विनाहि साक्षी प्रकाश करेहै ॥ काहेते सु-
खदुःख तथा साक्षी अंतःकरण देशमेंही होणेते संबन्धिहैं तथा ज्ञातही सुखदुःख होवेहैं ॥
यांते विषय साथ संबंधरूप तथा विषयका प्रकाशरूप उभय फल वृत्तिके संभवे नहीं ॥ जे कर
संबंधियोंके प्रकाशमेंभी वृत्तिकी अपेक्षा अंगीकारकरें तौ संबंधिरूप वृत्तिके प्रकाशमेंभी अ-

न्य वृत्तिकी अपेक्षा होणेते अनवस्था दोष प्राप्त होवेगा ॥ यांते यिह अर्थ सिद्ध भया ॥ जैसे संबंधिरूप वृत्तिके प्रकाशमें अन्य वृत्तिकी अपेक्षा साक्षी करे नहीं ॥ तैसे संबंधिरूप सुखदुः-खके प्रकाशमेंभी वृत्तिकी अपेक्षा साक्षी करे नहीं औ सुखदुःखरूप विशेषणके अभावते तद्वि-शिष्ट साक्षीका अभाव होनेते संस्कारद्वारा स्मृतिभी संभवे है (ननु) ज्ञान ध्वंसजन्य संस्कार होवे हैं ॥ विषयके ध्वंसजन्य संस्कार होवे नहीं ॥ यांते सुखदुःखादि विशेषणरूप विषयके ध्वंसजन्य संस्कार संभवे नहीं (सिधांती) तीनो अवस्थामेंही सुखदुःखकों वृत्तिद्वाराही साक्षी प्रकाश करे है परंतु जाग्रतमें तो अंतःकरणकी वृत्तिद्वारा सुखदुःखकों साक्षी प्रकाश करेहै ॥तहां अंतःकरणके सत्वगुणका परिणाम सुख है औ रजगुणका परिणाम दुःखहै तथा व्यावहारिक हैं और स्वप्नमें अविद्याके सत्वगुणका परिणाम सुख औ रजगुणका परिणाम दुःख है ॥ तथा

प्रातिभासिक सुखदुःखहैं (ननु) आकाशादिक तथा स्वप्नके सुखादिक उभय अविद्याके कार्य होणेते उभय व्यावहारिक । वा । प्रातिभासिक हुए चाहिये (समाधान) ❋ केवल अविद्याजन्यत्वं व्यावहारिकत्वं 'सदोषअविद्याजन्यत्वंप्रातिभासिकत्वं ❋ ऐसा व्यावहारिक-का तथा प्रातिभासिकका लक्षण करणेसें इस तेरी शंकाकी आपत्ति नहीं ॥ काहेते आकाशा-दिक केवल अविद्याके कार्य होणेते व्यावहारिक हैं औ स्वप्नके सुखादिक सदोष अविद्या-के कार्य होणेते प्रातिभासिक हैं ॥ पूर्व प्रसंग यिह है ॥ जीवके विशेषण भागमें कर्म हैं विशेष्य-में नहीं (ननु) जीव किसकों कहे हैं (उत्तरः) जैसे घटमें आया जो आकाश सो घटा-काश कहिये है ॥ ता घटाकाश सहित घटमें जो जल है तथा जलमें जो आकाशका प्रतिबिंब है ॥ सो जलाकाश कहिये है ॥ तैसे साभास अंतःकरणमें । वा । साभास अविद्यामें आया

जो चेतन सो कूटस्थरूप विशेष्य चेतन कहियेहै ॥ ता कूटस्थरूप विशेष्य चेतन सहित साभास अंतःकरण । वा । साभास अविद्या सो जीव कहियेहै ॥ सो जीव कैसाहै कर्म करेहै तथा कर्मोका फल भोगेहै तथा अविद्यारूप उपाधिवाला होणेते अल्पज्ञतादि धर्मावालाहै ॥ इसीते ईश्वरते विलक्षणहै काहेते ईश्वर मायारूप उपाधिवाला होणेते सर्वज्ञत्वादि धर्मावालाहै ॥ ईश्वरका स्वरूप आगे निरूपण करेंगे (ननु) माया अविद्याका भेद संभवे नहीं काहेते ❀ अजामेकांलोहितशुक्लकृष्णांबह्वीःप्रजाःसृजमानांसरूपाः अजोह्येको जुषमाणेऽनुशेतेजहात्येनांभुक्तभोगामजोऽन्यः ❀ श्रुतिअर्थयिह ॥ अजो नाम उत्पत्तिरहित जीवात्मा निश्चय करके 'अनुशेते' नाम शयन करेहै ॥ किं कुर्वन्सन् अज तथा एक तथा रजो, सतो, तमोरूप तथा बहुत प्रकारकी प्रजाकों उत्पन्न करती हुई ऐसी मायाकों 'जुषमाणा'

नाम सेवन करता हुवा ॥ कथं भूताःप्रजाः मायाके समानरूपाः ऐसी मायाते 'अन्यः' नाम भिन्न जन्ममृत्युरहित एक जो जीवात्मा है ॥ सो जीवात्मा ' एनां भुक्त भोगां ' नाम भोगल्या है भोग जिस करके ऐसी मायाकों 'जहाति' नाम त्याग करे हैं ॥ इति ॥ इस श्रुति साथ विरोध आनेंते अविद्यारूप उपाधिवाला होणेते जीव अल्पज्ञत्वादि धर्मावाला है औ ईश्वर मायारूप उपाधिवाला होणेते अल्पज्ञत्वादि जीवके धर्मांते रहित है ॥ यिह कथन असंगत है॥ (समाधान) यद्यपि माया एकही है तथापि गुणाके भेदते भेदवाली है काहेते सत्वगुणकी प्रधानतासें माया कहिये है औ रजो तमो गुणकी प्रधानतासें अविद्या कहिये है❁मायाचाविद्या-चस्वमेवभवति ❁ यिह श्रुति मायाकों उभयरूप कहे है ❁ श्रुति अर्थ यिह ॥ आपही मूलभूतप्रकृति गुणाके भेदते माया अविद्यारूप होवे है (ननु) माया अविद्याका क्या अर्थ है

(उत्तरः) विद्यासें नाश होणेते अविद्या कहिये है ❀ अघटनघटनापटीयसी माया ❀ अर्थ यिह ॥ ना होणे हारी वस्तुके बणावणेकों जो चतुर होवै सा माया कहिये है ॥ जैसे अफुर स्वभाव ब्रह्ममें फुरना करणेकों चतुर है ॥ सा माया सत्रूप ब्रह्मते विलक्षण होणेते सत्ते विलक्षण है ॥ निःस्वरूप नर खर शृङ्गोंते विलक्षण होणेते असत्ते विलक्षण है॥ सत् असत्ते विलक्षणकोंही अनिर्वचनीय कहिये है ॥ अर्थात् नव युक्तियोंकों माया सहारे नहीं ॥ काहेते हम यिह पूछे है॥माया सत्स्वरूप है । वा । असत्स्वरूपहै । वा । सत् असत् उभयस्वरूप है तथा ब्रह्मते भिन्न है । वा ।अभिन्न है । वा। भिन्नाभिन्न उभयस्वरूप है ॥ तथा सावयव है । वा । निरवयव है । वा । सावयवनिरवयव उभयस्वरूप है ॥ सत्स्वरूप कहें तौ जैसे सत्स्वरूप ब्रह्मकी निवृत्ति होवे नहीं ॥ तैसे सत्स्वरूप मायाकीभी निवृत्ति नहीं होवेगी ॥ मा-

॥ ३१ ॥

याकों निवृत्त ना होणेते ज्ञान निष्फल होवैगा ॥ इत्यादि दोष आनेते माया सतूस्वरूप संभवै नहीं ॥ तैसे असतूस्वरूपभी माया नहीं ॥ काहेते असतूस्वरूप शशशृंगादिक किसीके कारण होवे नहीं ॥ तैसे मायाकों असतूस्वरूप होणेते मायाभी किसीका कारण नहीं होवेगी ॥ माया-कों जगत्की कारणता ❋ मायांतुप्रकृतिंविद्यान्मायिनंतुमहेश्वरं ❋ इस श्रुतिमें निरूपण करी है ॥ ❋ श्रुति अर्थ यिह ॥ मायाकों उपादान जाणो मायावाला महेश्वर है ॥ इति ॥ पूर्व उक्त उभयपक्षके दोष आनेते तथा सत्यत्व असत्यत्व विरोधि धर्मोके समावेशते उभयस्वरूपभी माया संभवे नहीं और❋नेहनानास्तिकिंचनः❋इत्यादि श्रुति साथ विरोध आनेंते माया ब्रह्मते भिन्नभी संभवे नहीं ❋ श्रुति अर्थ यिह ॥ इस अधिष्ठान ब्रह्मविषे नानत्व किंचन्भी नहीं है ॥ इति ॥ तैसे ब्रह्मते अभिन्नभी माया संभवै नहीं ॥ काहेते जैसे ब्रह्मकी निवृत्ति होवे नहीं॥ तैसे ब्रह्म

स्वरूप मायाकों होणेते मायाकीभी निवृत्ति नहीं होवैगी औ मायाकी निवृत्ति ना होणेते माया निवृत्तिरूप मोक्षभी नहीं होवैगी॥इत्यादि दोष आनेते ब्रह्मते अभिन्नभी माया संभवै नहीं॥उभय पक्षके दोष आनेते तथा भिन्नत्व अभिन्नत्वरूप विरोधि धर्मोंका एक वस्तुमें असम्भव होणेते उभयस्वरूपभी माया संभवै नहीं और तैसे सावयवभी माया संभवै नहीं॥ काहेते अवयवोंवाली वस्तुकों सावयव कहीये है॥ द्रव्यका आरंभकरूप समवायी कारण। वा। द्रव्यका परिणामिरूप उपादान कारणकों अवयव कहिये है॥ उपादानकारण मात्रकों ही अवयव कहिये तौ शब्दका उपादानकारणआकाशभी शब्दका अवयव होवेगा तथा रूपादि गुणोंके तथा क्रियाके उपादानकारण घटादिकभी रूपादिक गुणनके तथा चलनरूपक्रियाके अवयव होवेगे॥ यांते द्रव्यके आरम्भकरूप। वा। परिणामिरूप उपादानकारणकोंहि अवयव कहिये है॥ अन्यके उपादानकारणकों

अवयव कहे नहीं॥ ऐसे अवयवोंसहित द्रव्यकों सावयव कहिये है॥ सो ऐसे अवयवोंसहित अवयवोंका कार्यरूप द्रव्यही होवे है॥ यांते अज्ञानकों अवयवोंसहित कहणेते अवयवोंका कार्यरूप द्रव्यही अज्ञान सिद्ध होवे है॥ अवयवोंका कार्यरूप अज्ञान अङ्गीकार करें तौ अवयव अज्ञानसें अभिन्न हैं। वा। भिन्न हैं॥ अभेदपक्षमें आत्माश्रय दोषकी प्राप्ति होवेगी॥ काहेते जहां अपणी उत्पत्तिकी औ अपणे प्रकाशकी तथा अपणे आश्रय रहिणेकी आपकों अपेक्षा होवे॥तहां आत्माश्रय दोष कहिये है औ जहां दोनोंकों परस्पर अपेक्षा होवे॥तहां अन्योन्याश्रय दोष कहिये है औ जहां प्रथमकों दूसरेकी दूसरेकों तृतीयकी तृतीयकों पुनः प्रथमकी-अपेक्षा होवे॥ तहां चक्रका दोष कहिये है औ जहां तृतीयकों चतुर्थकी चतुर्थकों पंचमकी अपेक्षा होवे॥ तहां अनवस्था कहिये है॥ सा मायाकों अपणे कारणरूप अवयवोंसें अभि-

न्न होणेते ॥ अपणेसें आपकी उत्पत्तिकी अपेक्षा है ॥ यांते आत्माश्रय दोष आवे है और द्वितीय भेद पक्ष अङ्गीकार करें तौ अज्ञानते भिन्न जो अवयव सो सावयय है । वा । निं-रवयव है ॥ निरवयव अङ्गीकार करें तौ जो निरवयव होवे है ॥ सो किसीका कारण होवे नहीं ॥ यांते अज्ञानके कारण जो अवयव अङ्गीकार करें हैं ॥ सोभी निरवयव होणे ते अज्ञा-नके कारण नहीं होवेगे ॥ अज्ञानके कारण अवयवोंकों सावयव अङ्गीकार करें तौं जो सावयव होवे है सो अवयवोंकरके जन्य होवे है ॥ यांते अज्ञानके कारण अवयवभी अवयवांतरों करके जन्य होवेंगे ॥ जन्य अङ्गीकार करें तौं जनकरूप जो द्वितीय अवयव हैं॥ सो सावयव हैं । वा । निरवयव हैं ॥ निरवयव अंगीकार करें तौ पूर्वदोष आनेते संभवे नहीं ॥ सावयव अंगीकार करें तौं जो सावयव होवे है सो जन्य होवे है ॥ यांते प्रथम अवयवोंके जनकरूप द्वितीय अव-

यवभी जन्यही कहने होवेगे ॥ जन्य अङ्गीकार करें तौं आपसें जन्य प्रथम अवयवोंकरके जन्य हैं । वा । तिसके जनक तृतीय अवयव मानते हों ॥ अपने कार्यरूप प्रथम अवयवों-करके जन्य कहें तौ पहिले द्वितीय अवयवकी सिद्धि होवे तौ तिससें जन्य प्रथम अवयव-की सिद्धि होवे तथा पहिले प्रथम अवयवकी सिद्धि होवे तौ तिससें जन्य द्वितीय अवयवकी सिद्धि होवे ॥ इस प्रकार अन्योन्याश्रय दोषकी प्राप्ति होवे है ॥ द्वितीय अवयवका जनक तृतीय अवयव कहें तौ तृतीय अवयवकोंभी जन्य होणेते तिसका जनक अवयवांतर क-हना पडेगा ॥ अवयवांतर प्रथम अवयव कहें तौं चक्रका दोष आवेगा ॥ तृतीय अवयव-का जनक चातुर्थ अवयव कहें तौ चतुर्थ अवयवका जनक पंचम अवयव मानोगे ॥ इस प्रकार अवयव धारा कल्पना करनेसें अनवस्था दोष प्राप्त होवे है ॥ यांते अज्ञाननिष्ठ साव-

यवता सम्भवे नहीं ॥ किंवा ॥ जो द्रव्यका परिणामरूप उपादान कारण । वा । आरंभक-रूप उपादान कारण होवे सो अवयव कहिये है ॥ ऐसे अवयवोंसहित जो होवे सो साव-यव कहिये है ॥ ऐसे अवयवोंसहित आरंभरूप । वा । परिणामिरूप द्रव्यहि होवे है ॥ यांते अज्ञानकों द्रव्य अङ्गीकार करें तौ अज्ञान नित्यद्रव्य है । वा । अनित्यद्रव्य है । यिह प्रष्टव्य-है॥नित्य द्रव्य अङ्गीकार करें तौ अनिर्मोक्ष प्रसंगकी प्राप्ति होवेगी ॥ काहेते अज्ञानकी निवृत्तिरूप-हि मोक्ष होवे हैं॥ सो अज्ञानकों नित्य होणेते अज्ञानकी निवृत्ति संभवे नहीं औ अनित्यद्रव्य अङ्गीकार करें तौं जो अनित्य द्रव्य होवे है सो उत्पत्तिवाला होवे है ॥ यांते अज्ञानभी उत्पत्ति-वाला होवेगा । अज्ञानकों उत्पत्तिवाला अङ्गीकार करें तौं अज्ञानकी उत्पत्ति जीवसें । वा । ईश्वरसें । वा । शुद्ध चेतनसें होवेहै । वा । अपनेसें होवेहै ॥प्रथम पक्ष द्वयतो बने नहीं ॥ काहेते

प्रथम अज्ञान सिद्ध होवे तौ अज्ञानकर कल्पित जीव ईश्वरकी सिद्धि होवे औ जीव ईश्वरकी सिद्धि होवे तौ अज्ञानकी उत्पत्ति होवे ॥इस प्रकार अन्योन्याश्रय दोष आवे है औ शुद्ध चेतनसें अज्ञानकी उत्पत्ति मानो तौ शुद्ध विकारी होवेगा औ असङ्गता प्रतिपादक श्रुतिसाथ विरोधभी होवेगा। औ आत्माश्रय दोष आनेते अज्ञानसें अज्ञानकी उत्पत्तिभी संभवे नहीं तथा * अ-जामेकां* इत्यादि अज्ञानके अनादितका प्रतिपादक श्रुतिसाथभी विरोध होवेगा॥ इस प्रकार अज्ञानकी उत्पत्तिका असंभव होणेसेंभी अज्ञाननिष्ठ सावयवता बने नहीं और अज्ञानकों निरवयव अङ्गीकार करें तौं जो निरवयव होवे सो किसीका उपादान कारण होवे नहीं ॥ यांते अज्ञानभी निरवयव होणेते जगत्का उपादान कारण नहीं होवेगा ॥ कहें हमारेकों इष्ट है तौ * मायांतु प्रकृतिं विद्यान्न मायिनंतु महेश्वरं*इस श्रुतिसाथ विरोध होवेगा॥ यांते माया निरव-

यव संभवै नहीं तथा सावयवत्व निरवयवत्वरूप विरुद्ध धर्मोंका एक वस्तुमें असंभव होणेते सावयव निरवयव उभय रूपभी माया बने नहीं ॥ इस प्रकारसें अज्ञान नव युक्तिकों सहारे नहीं ॥ यांते अज्ञान अनिर्वचनीय है औ अनीर्वचनीयका कार्यभी अनिर्वचनीय होवे है ॥ यांते अनिर्वचनीय अज्ञानका कार्य प्रपंचभी अनिर्वचनीय है ॥ पूर्वप्रसङ्ग यिह है ॥ पुनः इह जीव कैसा है ॥ अविद्यारूप उपाधिवाला होणेते अल्पज्ञ है ॥ इसीते ईश्वरते विलक्षण है (ननु) चौपाई ॥ भगवन् जीवसुभाष्यो जोई ॥ त्याग योग्यताकों किम् होई॥काकों करे सो अंगीकार ॥ कहो सकल अनुकंपाधार ॥ ६६ ॥ गुरुरुवाच ॥ सोरठा ॥ सुनो शिष्य अति धीर, हेया संपद आसुरी ॥ हारक भवगत पीर, उपादेय दैवीसदा ॥ अर्थ स्पष्ट ॥*तात्पर्य यिह । ग्रहण करणे योग्य दैवीसम्पदकी दृढताकोंही चार साधन कहियेहै ॥ यांते आसुरीसंपदाका

॥ ३५ ॥

हेय औ दैवीसंपदाका उपादेय इसजीवकों कर्तव्य है (शंका) हे भगवन् आसुरीसंपदा औ दैवीसंपदा किसकों कहे हैं (उत्तरः) विधिनिषेधका उलंघन करके स्वभावसिद्ध रागद्वेषके अनुसारी ॥ ऐसी जो सर्व अनर्थोंका कारणरूप प्रवृत्ति है ॥ ता प्रवृत्तिका हेतुभूत जो राजसी तामसीरूप अशुभ वासना है ॥ सा अशुभ वासना आसुरीप्रकृति तथा राक्षसीप्रकृती कहिजावे है ॥ तहां विषयभोगोंकी प्रधानता करके रागकी प्रबलताते ॥ अशुभवासनाविषे आसुरीप्रकृतिपणा कहिये है और हिंसाकी प्रधानता करके द्वेषकी प्रबलताते ॥ ता अशुभ वासनाविषे राक्षसीप्रकृतिपणा कहिये है ॥ इतना दोनोंका अवांतर भेद है ॥ सा राक्षसीप्रकृतिरूप तथा आसुरीप्रकृतिरूप अशुभवासनाकी एकता करके ॥ आसुरीसंपदा कही जावे है ॥ सा इह आसुरीसंपदा अधिकारीके बन्धनका कारण होणेते ॥ आवश्य करके परित्याग

करणे योग्य है परन्तु सो त्याग आसुरीसंपदाके ज्ञान बिना होवे नही ॥ यांते आसुरीसंपदाका स्वरूप भगवानने गीताके षोडशोध्यायके ॥ चतुर्थश्लोकमें अर्जुनकेप्रति कहाहै ॥ सो हे शिष्य श्रवणकर ❀ दंभोदर्पोऽभिमानश्चक्रोधः पारुष्यमेवच ॥ अज्ञानंचाभिजातस्य पार्थसंपदमासुरीं ❀ अर्थ यिह ॥ हे पार्थ रजोतमोगुणमयी अशुभ वासनाकों ॥ संपादनकरके जन्मेहुये पुरुषकों ॥ दंभ औ दर्प तथा अभिमान औ क्रोध तथा पारुष्य तथा अज्ञान यिह दोष प्राप्त होवे हैं ॥ तहां हे अर्जुन अपणे महानपणेकी सिद्धिवासते लोकोंके समीप ॥ अपणेकों अत्यंत धर्मात्मा-रूप करके जो प्रसिद्ध करणा है ॥ ताका नाम 'दंभ' कहिये है और धन विद्या कुल स्वजनादि नि-मित्त है जिसविषे ॥ ऐसा जो श्रेष्ठपुरुषोंके अपमानका हेतु गर्व विशेष ॥ ताका नाम 'दर्प' कहिये है और अपणेविषे जो अत्यंत पूज्यत्वरूप अतिशयताका आरोप है ॥ ताका नाम 'अभिमान'

॥ ३६ ॥

कहिये हैं ॥ कैसाभी इह अभिमान है ॥ जिस अभिमान करके असुर निरादरकों प्राप्तहोते भए हैं ॥ यिह वारता शतपथ ब्राह्मणविषेभी कथन करी है ❋ देवाश्चासुराश्चोभयेप्राजापात्याःपस्पर्धिरेततोऽसुराअतिमानेनैवकस्मिन्वयंजुहुयामेतिस्वेष्वेवास्येषु जुह्वतश्चेरुस्तेऽतिमानेनैवपराबभूवुस्तस्मान्नातिमन्येतपराभवस्यह्येतन्मुखंयदतिमानः ❋ अर्थयिह ॥ देवते और असुर उभयका समुदाय प्रजापतिकी संतति है ॥ सो उभय परस्पर ईर्षा करतेभये ॥ तदनंतर असुर अतिमानकरके ॥ किसविषे हम हवन करिये ॥ हमारेसें कौन अधिक है ॥ ऐसे अभिमानकरके युक्त हुए ॥ स्व स्व मुखोंविषेहि हवन पावते हुए भक्षण करते भए ॥ सो राक्षस ऐसे अभिमान करकेहि॥देवतोंकरके निरादरकों प्राप्त होते भये ॥ तांते निरादरका कारण होनेते पुरुषकों ॥ अति अभिमान सर्वथा त्यागनेयोग्य है और अपणे अनिष्ट करनेविषे तथा परके अनिष्ट करणेविषे॥

प्रवृति करावणेहारा जो अग्निज्वलनरूप अंतःकरणकी वृत्ति विशेष है ॥ जिसकों क्षोभभी कहे हैं ताका नाम 'क्रोध' है और प्रत्यक्ष अत्यंत रूखे वचनोंका जो उच्चारण है ॥ ताका नाम 'पारुष्य' कहिये है ॥ इहां 'पारुष्यमेवच' इस बचनविषे स्थित जो चकार है ॥ तिसकरके अनुक्त चपलतादि दोषोंका ग्रहण करणा और यिह कार्य हमारेकों करणे योग्य है और यिह नहीं करणे योग्य है ॥ ऐसा जो कर्तव्याकर्तव्यका विवेक है ॥ ताके अभावका नाम 'अज्ञान' कहिये है ॥इहां 'अज्ञानंच' इस वचनविषे स्थित जो चकार है॥सो अनुक्त अधृत्यादि दोषोंका ग्राहक है ॥ऐसे दंभादिक दोष किस पुरुषकों प्राप्त होवे हैं॥ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए॥श्रीभगवान् कहे है ❀ आसुरींसंपदमभिजातस्य ❀ हे अर्जुन इस शरीरके आरंभकालविषे ॥ पूर्वले पापकर्मोंकरके अभि व्यक्तिकों प्राप्त भया तथा सर्व पुरुषोंकी प्रीतिका विषय॥ऐसा जो रजो तमोगुणमय

अशुभ वासनोंका समूह है ॥ ता अशुभ वासनोंकों अपणे अंतःकरणविषे॥प्रादुर्भाव हुया देखके जन्मकों प्राप्त भया जो पुरुष है ॥ जा पुरुषका आगे अश्रेय होणा है ॥ ऐसे निन्दितपुरुषकों दंभसें लैके॥अज्ञानपर्यन्त सर्व दोष प्राप्त होवे है ॥ अभयादिक गुण ता पुरुषकों प्राप्त होवे नहीं ॥ इहां हे 'पार्थ' इस संबोधनके कहणे करके ॥ श्रीभगवाननें अर्जुनप्रति यिह अर्थ सूचन करा॥विशुद्ध कुलविषे उत्पन्न हुई पृथा माताका तूं पुत्र है॥यांते इस दंभ दर्पादिक आसुरीसंपदके योग्य नहीं ॥ २६ ॥ और वेदने बोधन करे जे नित्य औ नैमित्तिक कर्म्म है तथा आत्मज्ञानके उपायरूप शम दमादिक है ॥ तिन दोनोंके अनुष्ठान करणेविषे॥ प्रवृत्ति करावणेहारी जो सात्विकी शुभवासना है॥ सो दैवीप्रकृति कही जावे है ॥ ता सात्विकी शुभवासनारूप दैवीप्रकृतिकोंही॥ दैवीसंपद कहिये है ॥ सो इस अधिकारीपुरुषके मोक्षका कारण होनेते उपादेय है

परन्तु स्वरूप जानेविना उपादेय होवे नहीं ॥ यांते गीताके षोडशाध्यायके आद्यमें ॥ तीन श्लोकोंकरके श्रीभगवानने दैवीसंपदका स्वरूप कहा है ॥ सोई तीन श्लोक इहां लिखता हूं॥ *अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ॥ दानंदमश्चयज्ञश्चस्वाध्यायस्तपआर्जवं *अर्थ यिह ॥ हे अर्जुन ' अभय ' अंतःकरणकी शुद्धि, ज्ञान, योग, दोनोंविषे स्थिति 'दान तथा दम तथा यज्ञ' स्वाध्याय, तप, आर्जव, यिह सर्व दैवीसंपदरूप है ॥ तहां हे अर्जुन शास्त्रने उपदेश करा जो अर्थ है ॥ ता अर्थविषे संशयते रहित होयके॥ अनुष्ठान करणेविषे जो तत्परता है ॥ ताका नाम ' अभय ' कहिये है । वा । सर्व परिग्रहते रहित एकाकी स्थित होणे कर कैसे जीवोंगा ॥ इस प्रकारके भयते जोरहितपणा है ॥ ताका नाम ' अभय ' कहिये है और अंतःकरणकी जो सम्यक निर्मलता है ॥ ताका नाम ' सत्त्वसंशुद्धि ' कहिये है औ अंतःकरणकी शुद्धिविषे स-

म्यकपणा क्या है ॥ तहां परमेश्वरके स्वरूप जाननेकी योग्यता होणी वा पर वंचन माया अनृततादिकोंका जो परित्याग है ॥ ताका नाम 'सत्त्वसंशुद्धि' कहिये है ॥ तहां अपणे अर्थकी सिद्धि करणेवास्ते ॥जिसी किसी मिसकरके जो परका वशीकरण है॥ताका नाम 'परवंचन' कहिये है और हृदयविषे अन्य प्रकारका अभिप्राय राखके ॥ बाह्यते अन्य प्रकारका जो व्यवहार करणा है ॥ ताका नाम 'माया' कहिये है और जैसा वृत्तांत देखा होवे तैसा वृत्तांत मुखते नहीं कहणा ॥ किंतु ताते अन्यथा कथन करणा ॥ ताका नाम 'अनृत' कहिये है ॥ इत्यादिकोंतेज़ोरहितपणा है ॥ ताका नाम 'सत्त्वसंशुद्धि' कहिये है और अध्यात्मशास्त्रते जो आत्माके स्वरूपका निश्चय है ॥ ताका नाम 'ज्ञान' कहिये है और चित्तकी एकाग्रताकरके तिस स्वरूपका जो अपणे अनुभवविषे आरुढपणा है ॥ ताका नाम 'योग' कहिये है औ ता ज्ञानयोग दोनोविषे जो व्य-

वस्थिति है ॥ अर्थात् सर्वकालविषे तत्परता है ॥ ताका नाम 'ज्ञानयोग' व्यवस्थिति है॥अथवा
❋अभयंसत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः❋ इस वचनका यिह दूसरा अर्थ करना॥हमारे ते सर्व
भूतप्राणियोंकेतांई अभय प्राप्त होवे॥इस प्रकारका अभयदान देणेका संकल्प॥परमहंस होणे काल
विषे होवे है ॥ ता संकल्पका जो परिपालन है ॥ अर्थात् मन, वाणी, शरीरकरके ॥ जो किसीभी
प्राणीकों भयकी प्राप्ति नहीं करणी है ॥ ताका नाम 'अभय' कहिये है ॥ यिह अभय दानरूप
धर्म॥दूसरेभी परमहंसोंके सर्व धर्मोंका उपलक्षण है और श्रवण मनन निदिध्यासन इन तीनोंकी
प्रपकता करके ॥ अंतःकरणका असंभावना विपरीतभावनादि मलोंते जो रहितपणा है ॥ ताका
नाम 'सत्त्वसंशुद्धि' कहिये है और अहंब्रह्मास्मि इस प्रकारका जो आत्मसाक्षात्कार है ॥ ताका
नाम 'ज्ञान' कहिये है और मनोनाश वासनाक्षय इन दोनोंके अनुकूल जो पुरुषप्रयत्न है ॥

ताका नाम ' योग ' कहिये है औ ता ज्ञानयोग दोनोंकरके जो संसारिजनोंते विलक्षण॥जीवन
मुक्तिरूप अवस्थिति है ॥ ताका नाम ' ज्ञानयोगव्यवस्थिति ' कहिये है ॥ इस प्रकारके व्या-
ख्यान किए हुए ॥ यिह अभयादिक दैवीसंपद फलरूप जानणी ॥ तहां भगवद्भक्तिते विना
सो अंतःकरणकी शुद्धि होवे नहीं ॥ यांते ता अंतःकरणकी शुद्धिके कथन ते ॥ भगवद्भक्तिभी
कथन हुई जानणी ॥ काहे ते ❋ महात्मानस्तुमांपार्थदैवींप्रकृतिमाश्रिताः ॥ भजंत्यनन्यमनसो
ज्ञात्वा भूतादिमव्ययं ❋ अर्थयिह ॥ हे पृथांकेपुत्र अर्जुन दैवीप्रकृतिकों आश्रयण करणेहारे
तथा मैं परमेश्वरते अन्यविषे नहीं है मन जिन्होंका ॥ ऐसे अंतःकरणकी शुद्धि युक्तपुरुष तो ॥
मैं परमेश्वरकों सर्व भूतोंका कारणरूप तथा नाश ते रहित जानके भजे हैं ॥ इति ॥ इस न-
वमें अध्यायके श्लोकविषे ॥ दैवीसंपदमें भगवद्भक्तिकाभी कथन किया है तथा भगवद्भक्ति अ-

त्यन्त श्रेष्ठ होनेतेभी॥ श्रीभगवान्‌ने इहां अभयादिकोंकेसाथ॥ ताका पठन किया नहीं॥ इस प्रकार महान् भागवाले॥ परमहंसोंके फलरूप दैवीसंपदकों कथन कर॥ अब गृहस्थादिकोंके साधनभूत दैवीसंपदकों कथन करे हैं॥ 'दानंदमश्च' तहां अपणे ममत्व अभिमानकेविषे रूप॥ अन्नवस्त्रादिक पदार्थोंका अपनी शक्ति अनुसार॥ श्रद्धाभक्तिपूर्वक जो अतिथी ब्राह्मणादिकोंके तांई देणा है॥ ताका नाम 'दान' कहिये है और श्रोत्रादिक बाह्यइन्द्रियोंका जो स्वस्व विषय ते निवृत्तिरूप संयम है॥ ताका नाम 'दम' कहिये है यद्यपि गृहस्थ पुरुषोंविषे सर्व प्रकार ते इन्द्रियोंका संयम सम्भवै नहीं तथापि ऋतुकालादिकों ते अतिरिक्त कालविषे जो मैथुनादिकोंका नहीं करना है॥ यिहही ताके इन्द्रियोंका संयम है 'दमश्च' इस वचनविषे स्थित जो चकार है॥ सो अनुक्त सजातीय धर्मोंका ग्राहक है और शास्त्रविहित कर्म्म विशेषका नाम 'यज्ञ'

कहिये है॥सो यज्ञ दो प्रकारका होवे है ॥ एक तो 'श्रौतयज्ञ' होवे है औ दूसरा 'स्मार्तयज्ञ' होवे है ॥ तहां अग्निहोत्र, दर्श, पूर्णमास, सोमयज्ञादिक 'श्रौतयज्ञ' कहे जावे हैं और देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ ॥ यिह चार 'स्मार्तयज्ञ' कहे जावे हैं यद्यपि ब्रह्मयज्ञभी 'स्मार्तयज्ञ' ही कथन किया जावे है तथापि इहां ताका 'स्वाध्याय' पद करके प्रथक्ही कथन किया है ॥ यांते इहां यज्ञ शब्द करके चारही 'स्मार्तयज्ञ' ग्रहण करे हैं ॥ इहां 'यज्ञश्च' इस वचन विषे स्थित जो चकार है ॥ सो अनुक्त प्रवृत्यादि धर्मोंका ग्राहक है ॥ यिह दान, दम, यज्ञ, तीनों गृहस्थ पुरुषकेही दैवीसंपदरूप हैं और पुण्य विशेषकी उत्पत्तिवास्ते जो ऋगादिक वेदोंका अध्ययन है ॥ ताका नाम 'स्वाध्याय' कहिये है ॥ इस स्वाध्यायकोंही 'ब्रह्मयज्ञ' कहे हैं यद्यपि पूर्वउक्त यज्ञ शब्दकरके पञ्चप्रकारके स्मार्तयज्ञोंका कथन होय सके है तथापि ता 'स्वा-

ध्याय' विषे ब्रह्मचारिका असाधारण धर्म्मपणा कथन करणेवास्ते॥श्रीभगवानूने इहां 'स्वाध्या-
य' का प्रथक् कथन किया है और आगे सप्तदशे अध्यायविषे॥कथन करा जो शारीरिक वाचिक
मानस यिह तीन प्रकारका तप है॥ सो तीन प्रकारका तपही इहां तप शब्दकरके ग्रहण करणा॥
सो तप वानप्रस्थका असाधारण धर्म है ॥ इस प्रकार संन्यास, गृहस्थ, ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ॥
इन चार आश्रमोंके असाधारण धर्मोंकों कथनकरके॥अब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, इन चारों
वर्णोंके असाधारण धर्मोंका कथन करते हैं 'आर्जवं' वक्रभावका जो परित्याग है ताका नाम
'आर्जव' है॥अर्थात् श्रद्धावान् श्रोताके समीप निश्चय करेहुए अर्थका जो नहीं गुह्य राखणा है॥
ताका नाम 'आर्जव' कहिये है ॥ २६ ॥ किंच ❀ अहिंसासत्यमक्रोधस्त्यागः शांतिरपैशुनं ॥
दयाभूतेष्व लोलुत्वंमार्दवंह्रीरचापलं॥२१॥❀अर्थ यिह॥हे अर्जुन अहिंसा, सत्य, अक्रोध,त्याग,

शांति,अपैशुन, सर्वभूतोंविषे दया, अलोलुत्व,मार्दव, ही, अचापल, यिह सर्व दैवीसम्पदरूप है।।
तहां हे अर्जुन प्राणियोंके जीवकारूप वृत्तिका जो छेदन है ॥ ताका नाम 'हिंसा' कहियेहै ॥
ता हिंसाते जो रहितपणा है ॥ ताका नाम 'अहिंसा' कहिये है ॥ अर्थात् जिस जिस प्राणिका
जिस जिस वृत्ति ते जीवन होता होवे ॥तिस तिस प्राणीकी तिस तिस वृत्तिका जो कदापि छेदन
नहीं करना है ॥ ताका नाम 'अहिंसा' कहिये है और जो अनर्थका अजनक यथार्थ अर्थका
बोधक वचन है ॥ ता वचनका जो सर्वदा उच्चारण है ॥ ताका नाम 'सत्य' कहिये है ॥ तहां
जो यथार्थ अर्थके बोधक बचनके उच्चारण ते ब्राह्मणादिकोंकी हिंसा होवे ॥ ता विषे सत्यताके
निवृत करणेवास्ते ॥ अनर्थका 'अजनक' यिह विशेषण कथन किया है और अन्य प्राणियोंने
बाणीकरके निरादर करनेसें । वा । ताडना करनेसें उत्पन्न भया जो क्रोध ॥ ता क्रोधका तत-

कालही जो उपशमन है ॥ ताका नाम 'अक्रोध' कहिये है और शास्त्रकी विधिपूर्वक सर्वकर्मोंका जो सन्यास है ॥ ताका नाम 'त्याग' कहिये है यद्यपि कहूं दानकोंभी त्याग कहे हैं तथापि सो दान पूर्वश्लोकविषे कथन कर आए हैं ॥ यांते इहां त्याग शब्दकरके सर्व कर्मोंका संन्यासही ग्रहण करणा और अन्तःकरणका जो उपशम है॥ताका नाम शांति कहिये है और परोक्ष कालविषे अन्य पुरुषके दोषकों॥अन्य पुरुषके आगे जो प्रगट करणा है॥ताकानाम 'पैशुन' कहियेहै॥ता पैशुनके अभावका नाम 'अपैशुन' कहिये है और दुःखी प्राणियों ऊपर जो कृपा है ताका नाम 'दया' कहिये है और विषयोंके समीप प्राप्त हुएभी तथा भोगकी समर्थताके विद्यमान हुएभी जो इंद्रियोंका अविक्रियपणा है॥ताका नाम 'अलोलुत्व' कहिये हैं और क्रूरस्वभाव तेजोरहितपणा है ताका नाम 'मार्दव' कहिये है ॥ अर्थात् व्यर्थ पूर्वपक्षादिकोकों करणेहारे शिष्यादिकोंप्रतिभी॥अप्रिय बाणीते

रहित होयके जो प्रिय बाणीकरके बोधन करना है ॥ ताका नाम 'मार्दव' कहिये है और नहीं-करणे योग्य कार्य विषे प्रवृत्तिका प्रतिबन्धक जो लोकलज्जा है ॥ ताका नाम 'ह्री' कहिये है और प्रयोजनबिनाभी वाक् पाणी पादादि इन्द्रियोंके व्यापारका नाम 'चापलता' है ॥ ता चापलताके अभावकों 'अचापलता' कहिये है ॥ आर्जवसें लैकर अचापल पर्यंत यिह पूर्व उक्त सर्व ब्राह्मणके दैवीसंपदरूप असाधारण धर्म्म हैं ॥ २१ ॥ किंच ❋ तेजः क्षमाधृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ॥ भवंति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ❋ अर्थयिह ॥ हे भारत तेज, क्षमा, धृति शौच, अद्रोह, नातिमानिता, यिह सर्व धर्म सत्वगुणमयी वासनाकों संपादन करके ॥ जन्मकों प्राप्त भया जो पुरुष ताकों प्राप्त होवे हैं ॥ तहां हे अर्जुन प्रगल्भताका नाम 'तेज' है ॥ अर्थात् स्त्री बालकादिक मूढजनोंकरके ॥ जो अभिभवकों नहीं प्राप्त होणा है ॥ ताका नाम 'तेज'

कालही जो उपशमन है ॥ ताका नाम 'अक्रोध' कहिये है और शास्त्रकी विधिपूर्वक सर्वकर्मोंका जो सन्यास है ॥ ताका नाम 'त्याग' कहिये है यद्यपि कहूं दानकोंभी त्याग कहे हैं तथापि सो दान पूर्वश्लोकविषे कथन कर आए हैं ॥ यांते इहां त्याग शब्दकरके सर्व कर्मोंका संन्यासही ग्रहण करणा और अन्तःकरणका जो उपशम है॥ताका नाम शांति कहिये है और परोक्ष कालविषे अन्य पुरुषके दोषकों॥अन्य पुरुषके आगे जो प्रगट करणा है॥ताकानाम 'पैशुन' कहियेहै॥ता पैशुनके अभावका नाम 'अपैशुन' कहिये है और दुःखी प्राणियों ऊपर जो कृपा है ताका नाम 'दया' कहिये है और विषयोंके समीप प्राप्त हुएभी तथा भोगकी समर्थताके विद्यमान हुएभी जो इंद्रियोंका अविक्रियपणा है॥ताका नाम 'अलोलुत्व' कहिये हैं और क्रूरस्वभाव तेजोरहितपणा है ताका नाम 'मार्दव' कहिये है ॥ अर्थात् व्यर्थ पूर्वपक्षादिकोकों करणेहारे शिष्यादिकोंप्रतिभी॥अप्रिय बाणीते

रहित होयके जो प्रिय बाणीकरके बोधन करना है ॥ ताका नाम 'मार्दव' कहिये है और नहीं-
करणे योग्य कार्य विषे प्रवृत्तिका प्रतिबन्धक जो लोकलज्जा है ॥ ताका नाम ' ह्री ' कहिये
है और प्रयोजनबिनाभी वाक् पाणी पादादि इन्द्रियोंके व्यापारका नाम 'चापलता' है ॥ ता चा
पलताके अभावकों 'अचापलता' कहिये है ॥ आर्जवसें लैकर अचापल पर्यंत यिह पूर्व उक्त सर्व
ब्राह्मणके दैवीसंपदरूप असाधारण धर्म्म हैं ॥ २१ ॥ किंच ❋ तेजः क्षमाधृतिः शौचमद्रोहो
नातिमानिता ॥ भवंति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ❋ अर्थयिह ॥ हे भारत तेज, क्षमा, धृति
शौच, अद्रोह, नातिमानिता, यिह सर्व धर्म सत्वगुणमयी वासनाकों संपादन करके॥ जन्मकों
प्राप्त भया जो पुरुष ताकों प्राप्त होवे हैं ॥ तहां हे अर्जुन प्रगल्भताका नाम ' तेज ' है ॥ अ-
र्थात् स्त्री बालकादिक मूढजनोंकरके ॥ जो अभिभवकों नहीं प्राप्त होणा है ॥ ताका नाम 'तेज'

कहिये है और समर्थके विद्यमान हुएभी ॥ जो परिभव करणेहारे पुरुषों ऊपर क्रोध नहीं करणा है ॥ ताका नाम ' क्षमा ' कहिये है और व्याकुलताकों प्राप्त हुएभी देह इंद्रियोंके स्थिर करणेका जो प्रयत्न विशेष है ॥ जा प्रयत्न विशेष करके स्थिर करेहुए शरीर इंद्रिय व्याकुलताकों प्राप्त होवे नहीं ॥ ताका नाम 'धृति' कहिये है ॥ यिह तेज, क्षमा, धृति, तीनों 'क्षत्रिय' के दैवीसंपदरूप असाधारण धर्म हैं और धनादिक अर्थोंके संपादनादिकोंविषे जो माया अनृतादिकोते रहितपणा है ॥ ताका नाम 'शौच' कहिये है ॥ यिह आंतरका 'शौच' जानणा ॥ मृत्तका जलादिकोकरके जन्य शरीरकी शुद्धिरूप ॥ बाह्य शौचका इहां 'शौच' शब्द करके ग्रहण नहीं करना ॥ काहेते ता शौचकों शरीरकी शुद्धि रूपता करके बाह्यपणा होणेते ॥ अंतःकरणकी वासनारूपता बने नहीं और इहां प्रसङ्गविषेतो सत्वगुणादिक भेद करके अन्तःकरणकी वासनोंकाही

।दैवी आसुरीसंपदरूप करके प्रतिपादन विवक्षित है॥ यांते शौच पद करके वाह्यशौचका ग्रहण इहां नहीं करणा और स्वाध्यायकी न्यांई जिसी किसी रूपकरके ता वाह्यशौचकोंभी ॥ जो वासनारूप अङ्गीकार करें तौ शौच शब्द करके ता वाह्यशौचकाभी ग्रहण करणा और किसी प्राणीके हनन करनेकी इच्छा करके जो शस्त्रादिकोंका ग्रहण है ॥ ताका नाम 'द्रोह' है ॥ ता द्रोहते जो निवृति है ॥ ताका नाम 'अद्रोह' कहिये है ॥ यिह शौच, अद्रोह, दोनो 'वैश्य' के दैवसिम्पदरूप असाधारण धर्म्म है और अत्यन्त मानीपणेका नाम 'अतिमानिता' है ॥ अर्थात् अपणेविषे पूज्यत्व अतिशयकी जो भावना है ॥ ताका नाम 'अतिमानिता' है ॥ ता अतिमानिताका जो अभाव है ॥ ताका नाम 'नातिमानिता' है अर्थात् अपने करके पूज्य जो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य हैं ॥ तिनकेआगे नम्र रहिणा यिह शूद्रका असाधारण ध-

र्म्म है ॥ इहां ❋ तमेतं वेदानु वचनेन ब्राह्मणाविविदिषंति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन ❋ इत्यादि श्रुतियोंने आत्मज्ञानकी इच्छाके उपायरूपकरके कथन करे जे असाधारणरूप तथा साधारणरूप वर्णाश्रमके धर्म्म हैं ॥ ते सर्व धर्म्मभी इहां दैवी संपदरूपकरके ग्रहण करणे ॥ इस प्रकार अभय धर्म्म ते आदि लेके नातिमानिता धर्म्म पर्यन्त ॥ तीनों श्लोकोंकरके कथन करे जे भिन्न भिन्न वर्णाश्रमके धर्म हैं ॥ ते धर्म इस पुरुषविषे उत्पन्न होवे है ॥ किस प्रकारके पुरुषविषे ते धर्म उत्पन्न होवे हैं ॥ ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहे है ॥ ❋ संपदं दैवी मभिजातस्य ❋ हे अर्जुन इस शरीरके आरम्भ कालविषे पूर्वले पुण्यकर्मोंकरके ॥ अभिव्यक्तिकों प्राप्त भया जो शुद्धसत्वगुणमय वासनाका समूह है ॥ ताकों अपणे अन्तःकरणविषे प्रादुर्भाव भया देखके ॥ जन्मकों प्राप्त भया जो पुरुष है ॥ जा पुरुषकों आगे श्रेयकी प्राप्ति होणी

है ॥ ता पुरुषकोंही यिह अभयादिक धर्म प्राप्त होवे हैं ॥ यिह वार्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है॥ ❀ पुण्यः पुण्येन कर्म्मणा भवति पापः पापेन ❀ श्रुति अर्थयिह ॥ पूर्ब पूर्ब जन्मके पुण्यकर्मकी वासना करके यिह पुरुष उत्तर उत्तर जन्मविषे पुण्यवान् होवे है और पूर्ब पूर्ब जन्मके पाप कर्मकी वासना करके पापवान् होवे है ॥ इति ॥ हे भारत इस सम्बोधनके कहणेकरके श्रीभगवान्नें यिह अर्थ सूचन किया ॥ शुद्ध वंशविषे उत्पन्न होणेते हे अर्जुन तूं अत्यन्त पवित्र हैं ॥ ताते इन पूर्व उक्त दैवीसंपदरूप धर्मोंके सम्पादनकरणेकों तू योग्य हैं ॥ इति ॥ इस प्रकारसें हे शिष्य श्रीभगवान्नें त्यागणे योग्य आसुरी सम्पद्का तथा ग्रहण करणे योग्य दैवी सम्पद्का स्वरूप निरूपण किया है ॥ ग्रहण करणे योग्य यिह दैवीसंपद्की दृढ़ताकोंही चार साधन कहिये है ॥ ६७ ॥ शिष्यप्रश्नः ॥ दोहा ॥ हे करुणार्णव श्रीगुरो, कौन सु साधन चार ॥ भिन्न भि-

न्न मैं रूप सुन, तद्वत् करों अचार ॥ ६८ ॥ टीका । हे कृपाके सागर श्रीगुरो आपनें जो चार साधन कथन करे सो कौन हैं ॥ मेरेकों कृपाकरके कहिये ॥ जो मैं तिनका पृथक् पृथक् स्वरूप सुनके तत्सदृशहि चाल चलन करों ॥६८॥ गुरुरुवाच ॥ गीयाछन्द ॥ आतम अनातमकी विचार विवेक भाषित धीवरा॥सुरज्येष्ट धाम अकाम स्वांते' असविराग सु पीवरा ॥ शम आदि षट् मिल सम्पाति, सुख नीत चाह मुमुक्षता ॥ यिह चार चारु विचार संग्रह, कर कुशल निर्दुःखता॥६९॥ टीका ॥ साक्षी आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप है औ स्थूल देहादि अनात्म वर्ग असत्य जड़ दुः-ख रूप है ॥ एसे ज्ञानरूप विचारकों 'धीवर' कहिये बुद्धिमान् 'विवेक' कथन करते हैं ॥ १ ॥ और ' सुरज्येष्ठधाम ' कहिये ब्रह्मलोकते लेकर ॥ यावत् लोकोंके भोगोकी ' स्वान्ते ' कहिये अन्तःकरणमें जो इच्छाका अभाव है ॥ ताकों पण्डित लोक पीवर, कहिये घनीभूत अर्थात् ब्रीत

विराग कहे हैं॥२॥और शम, दम, श्रद्धा, समाधानता, उपरामता, तितिक्षा,यिह षट् सम्पत्ति है॥ तहां अनन्तप्रकारकी मनोवासनाके रोकणेकों शम कहे हैं ॥ नेत्रादि इन्द्रियोंकों रूपादि विषयों ते रोकणेकों दम कहे हैं ॥ गुरु वेदान्तवाक्योंपर पूरण विश्वासको श्रद्धा कहे हैं॥ अन्तः-करणमें विक्षेपरूप चापल्याभावकों समाधान कहेहैं औ संसारके सुख जिस मुमुक्षुजनकों सूलनके समान प्रतीत होवे हैं तथा साधुजनोंके वाक्य जिसकों पुष्पसदृश प्रतीत होवे हैं औ सर्पणीसदृश नारी प्रतीत होवे है औ दुर्वाक्य स्वप्नमेंभी बोलन नहीं जाने है औ सदा ए-कान्त रहिनेकों जिसका चित्त चाहिता है औ कामदेव जिसकों नहीं सतावता है ॥ इत्या-दि गुणोंयुक्त पुरुषकों उपराम कहिये है औ शीत उष्ण हर्षशोकादि द्वंद्व धर्मोंके सहारणेका नाम तितिक्षा है ॥ ३॥ और सविलास अविद्याकी निवृत्ति तथा परमानन्दकी प्राप्तिकी इच्छाकों

मुमुक्षुता कहे हैं ॥ ४ ॥ यिह चार जो साधन हैं सो चारु कहिये श्रेष्ठ जो पुरुष है॥सो विचार-
के संग्रह करे तौ कुशल कहिये ग्रन्थकर्ताजी कहे हैं ॥ उस पुरुषकों निर्दुःखता कहिये मोक्ष हो-
वे है ॥ इन चार साधन युक्त पुरुष अधिकारी होवे है ॥ यांते इतनेते अधिकारीका निरूपणभया।
॥ १ ॥ और ग्रन्थ प्रतिपादिक है औ ब्रह्म प्रतिपाद्य है ॥ यिह संबन्ध अनुबन्ध कहिये है ॥२॥
और जीवब्रह्मकी एकता विषयअनुबन्ध कहिये है ॥ ३ ॥ और अनर्थकी निवृत्ति तथा परमा
नन्दकी जो प्राप्ति है ॥ सो प्रयोजन अनुबन्ध कहिये है ॥४॥ इस प्रकारके परिभासरूप चार-
अनुबन्धोंका सारे ग्रन्थमें गुंथन होवे है॥तांते चारोंही अनुबन्ध कहिये हैं॥अनुबन्धोंके निरूपण
ते अनुबन्धोंका ज्ञानभी होवे है॥ज्ञान होने ते ग्रन्थमें प्रवृत्तिभी सम्भवे है॥सो प्रवृत्ति गुरुद्वारा
होवे है ॥६९॥शिष्यप्रश्नः॥दोहा॥ गुरुलक्षण भो श्रीगुरो, कहो कृपाकर मोहि ॥ यदवागऽसिते

द्रुतकटे जगद्दुःख सन्दोहि ॥७०॥ टीका॥ हे श्रीगुरो कृपाकरके मेरेकों गुरुके लक्षण कहिये॥ जिस गुरुकी बाणिरूप असि कहिये खड्गसें द्रुत कहिये शीघ्रहि जगद्दुःखका जो समुदायहै सो कटि-या जावे॥७०॥ गुरु रुवाच ॥ भुजङ्ग प्रयातछन्द ॥ श्रुतिप्राणकों जो भली भान्त जाने॥ तथा तर्कसें शिष्य सन्देह हाने॥ सदा ब्रह्म निष्ठैकता जो निहारे॥ हरे दोष कैसो सुसंसार हारे॥७१॥ टीका॥ श्रु-तिके प्राण कहिये अभिप्रायकों जो यथावत् जानता है और अनेकविध युक्तिसें जो शिष्यके सन्देह दूर करणेकों समर्थ है और सर्वदा ब्रह्मनिष्ठ परमात्माऽभिन्न स्वात्माकों अनुभव करता है॥ सो-स्वसंसारकों हरण करता हुआ शिष्यके अध्यासरूप संसारकोंभी दूर करेहै (ननु) अध्यास कि-सकों कहे हैं (उत्तरः) 'स्वाभावाधिकरणाऽवभासत्वं अध्यासत्वं' वा अधिष्ठाने विषम सत्ताऽ-वभासत्वं अध्यासत्वं ❋ अर्थयिह ॥ जैसे रज्जूमें सर्प अध्यास होवे है ॥ तहां स्थूलदृष्टिसें तो

रज्जु अधिष्ठान है औ रज्जुआश्रित अविद्यासर्पका उपादान कारण है परन्तु जड़त्वादि हेतुसें रज्जु सर्पका तथा अविद्याका अधिष्ठानरूप आश्रय सम्भवे नहीं ॥ यांते रज्जु उपहितमें अधिष्ठानतारूप आश्रयता है परन्तु अन्तःकरणका परिणामिरूप वृत्ति तिमरादिदोषसें रज्जुकी विशेषअंशकों विषय करे नहीं ॥ किन्तु इदं अंशकों विषयकरे है ॥ तब वृत्ति उपहितचैतन्यकी औ रज्जु उपहितचैतन्यकी एकता होवे है ॥ तिस एकरूप चेतन आश्रित जो अविद्या है ॥ ताके रजोअंशका परिणामि सर्प होवे है औ सत्वांशका परिणामि ज्ञान होवे है ॥ इस प्रकारसें भ्रमस्थानमें सारे अनिर्वचनीय ख्याति है ॥ अनिर्वचनीय कहिये सत्यअसत्यादि नव वचनोंकरके जो निरणय ना होवे औ ख्याति कहिये भान औ सर्प है रजत है ऐसा कथन होवे ॥ सो अनिर्वचनीय ख्याति कहिये है ॥ ऐसे सर्प रजतादि पदार्थ स्वशब्दका अर्थ हैं ॥ ऐसे सर्प रज-

तादिकोंके व्यवहारक । वा । परमार्थिक अभावका अधिकरण रज्जु । वा । रज्जु अविच्छिन्न चैतन्य है ॥ ता अधिकरणमें प्रातिभासिक अनिर्वचनीय सर्प रजतादिकोंकी जो प्रतीति है सो अध्यास है॥अथवा व्यवहारिक रज्जुरूप अधिष्ठानविषे।वा।रज्जु अवछिन्न परमार्थिक चैतन्यरूप अधिष्ठानविषे विषमसत्ता कहिये प्रातिभासिक अनिर्वचनीय सर्प रजतादिकोंकी जो प्रतीति है सो अध्यास है ॥ तैसे मतभेदसें प्रातिभासिक ।वा। व्यवहारिक प्रपञ्च स्वशब्दकाअर्थ है ॥ ता प्रपञ्चके परमार्थिक अभावका अधिकरण ब्रह्म है॥ता ब्रह्ममें मतभेदसें प्रातिभासिक । वा । व्यवहारिक प्रपञ्चकी जो प्रतीति है सो अध्यास है॥ताहीकों भ्रम कहे हैं॥सो अध्यासरूपभ्रम पञ्चप्रकारका है ॥ एक 'भेदभ्रम' है ॥ सोभी पञ्चप्रकारका है ॥ एकजीव ईश्वरका 'भेद है औ द्वितीय जीवांका परस्पर भेद है औ तृतीय ईश्वर जड़काभेद है औ चतुर्थ जीवजड़का भेद

है। औ पञ्चम जड़ांका परस्पर भेद है। १। और अकर्ता आत्मामें कर्तापणेका भ्रम है। २। और असङ्गआत्मामें संगपणेका भ्रम है। ३। और अविकारीआत्मामें विकारीपणेका भ्रम है। ४। और ब्रह्मते भिन्नजगत् सत्य है ऐसा भ्रम है। ५। (ननु) इस अध्यासरूप भ्रमकों गुरु कैसे निवृति करे है(उत्तरः) हे शिष्य जैसे दर्पणविषे मुखका प्रतिबिंबभासता है॥सो प्रतिबिंब दर्पणविषे नहीं है किन्तु दर्पणकों देखनेवास्ते निकसी जो नेत्रकी वृत्ति है ॥ सो दर्पणकों स्पर्शकरके पीछे लौटिके मुखकोंही देखती है ॥ यांते बिंबरूप मुखसाथ प्रतिबिंब अभिन्न है ॥ तांते प्रतिबिंब मिथ्या नहीं किन्तु सत्य है परन्तु प्रतिबिंबके धर्म्म जो बिंबसें भिन्नपणा औ दर्पणविषे स्थितपणा औ बिंबसें उलटापणादिक औ तिनकी प्रतीतिरूपज्ञान सो भ्रांति है ॥ यांते इन धर्म्मनका मिथ्यानिश्चयरूप बाधकरके॥ बिंब औ प्रतिबिंबका सदा अभेद निश्चय

॥ ४८ ॥

होवे है ॥ तैसे शुद्धब्रह्मरूप बिंब है औ ता बिंबका अज्ञानरूप दर्पणविषे जीवरूप प्रतिबिंब भासता है ॥ सो जीवरूप प्रतिबिंब ईश्वररूप बिंबके साथ सदा अभिन्न है परंतु मायाके बलसें सो जीवके धर्म्म बिंबरूप ईश्वरमें भेदपणा, जीवपणा, अल्पज्ञपणा, अल्पशक्तिपणा, परिछिन्नपणा, नानापणादिक औ तिनकी प्रतीतिरूप ज्ञानसो भ्रांति है ॥ यांते ता भ्रांतिका मिथ्यानिश्चयरूप बाधकरके जीवरूप प्रतिबिंब औ ईश्वररूप बिंबका सदा अभेदनिश्चय होवे है और हे शिष्य जैसे महाकाशमें घटाकाश नाम तथा जलका अनयनरूप कार्य तथा घटाकाशनका जो परस्पर भेद भासता है ॥ सो घटरूप उपाधिसें भासता ह ॥ घटरूप उपाधिसें बिना भान होवे नहीं ॥ तैसे परमात्मदेवमें जीवनाम तथा गमनागमनरूप कार्य तथा जीवनका परस्पर भेद जो भासता है ॥ सो अन्तःकरणादिक उपाधिसें भासता है ॥ अन्तः-

करणादिक उपाधिसें बिना भान होवे नहीं और बिंब प्रतिबिंबके तथा घटाकाशोंके दृष्टांतसें जीव ईश्वर एकरूप होणेते ॥ जीव ईश्वररूप चेतनसाथ जडोंका एकही भेद है ॥ यांते हे शिष्य जैसे रज्जुमें कल्पित जो सर्प है ॥ सो कल्पित होणेते रज्जुस्वरूप है ॥ तैसे जीव ईश्वररूप एक चेतनमें कल्पित जो यिह द्वैतहै ॥ सो कल्पित होणेते एक चेतनस्वरूप है और हे शिष्य स्थूलभूतोंका जो कार्य है सो स्थूलभूतरूप है ॥ काहेते जो जाका कार्य होवेहै सो कारणस्वरूपही होवे है ॥ यांते स्थूलभूतोंका कार्य स्थूलभूतस्वरूप है औ स्थूलभूत सूक्ष्मभूतोंकी तमोअंशका कार्य होणेते तमोअंशस्वरूप हैं औ अन्तःकरण सूक्ष्मभूतोंकी मिलीहुई सत्व अंशका कार्य होणेते सत्य अंशस्वरूपहै औ ज्ञान इंद्रिय प्रत्येकसूक्ष्मभूतकी सत्वअंशका कार्य होणेते प्रत्येक भूतकी सत्वअंशस्वरूप है और प्राण सूक्ष्मभूतोंकी मिलीहुई रजोअंशका कार्य होणेते रजो

अंशस्वरूप हैं औ कर्म्म इद्रिय प्रत्येक सूक्ष्मभूतकी रजो अंशका कार्य होणे ते प्रत्येक भूतकी रजो-
अंशस्वरूप है औ पञ्चगुणासहित सूक्ष्मभूतरूप जो पृथ्वी है ॥ सो सूक्ष्मभूतरूप जलका कार्य
होणेते जलस्वरूप है औ चारगुणासहित जो जल है सो अग्निका कार्य होणेते अग्निस्वरूप है
औ त्रैगुणासहित अग्निवायुका कार्य होणेते वायुस्वरूप है औ दो गुणासहित वायु आकाशका
कार्य होणे ते आकाशस्वरूप है औ एकगुणसहित आकाश मूलभूत प्रकृतिका कार्य होणेते प्रकृ-
तिस्वरूप है ॥ सा प्रकृति परमेश्वरकी शक्ति है ॥ जो शक्ति होवे है सो शाक्तते भिन्न होवे नहीं ॥
यांते शक्ति परमेश्वर स्वरूप है ॥ सो परमेश्वर एक अद्वितीयरूप है ॥ इस प्रकारसें विपरीत चिं-
तन जड़ोंके भेदकों दूर कर्ता हुया अद्वितीय ब्रह्मका बोध उत्पन्न करे है औ विचारकरके देखिये
तो किसीभी भेदकी कहूंभी सिद्धि होवे नहीं ॥ काहेते जो भेदकों अंगीकार करे है ॥ तासे यिह

प्रष्टव्य है ॥ सो भेद भेदरहित धर्मीविषे रहे है । वा । भेदसहित धर्मीविषे रहै है ॥ प्रथम पक्ष अंगीकार करें तौ व्याघात दोषकी प्राप्ति होवे है ॥ काहेते परस्पर विरुद्ध धर्मोंका जो एक अधिकरणमें समुच्चय है ॥ ताका नाम व्याघात कहिये है ॥ जैसे प्रसंगविषे भेदते रहितता तथा भेद यिह परस्पर विरुद्ध हैं एकमें सम्भवे नहीं ॥ यांते व्याघात दोष स्पष्टही है तथा भेदरहित धर्मीविषे भेदकों ग्रहण करणे हारा प्रतक्ष ज्ञान भ्रमरूपही सिद्ध होवेगा औ उक्त दोनों दोषोंकी निवृत्ति करणे वासते द्वितिय पक्ष अंगीकार करें तौ यिह प्रष्टव्य है ॥ सो भेद अपणे करके भिन्न करे हुए धर्मीविषे रहे है । वा । किसी दूसरे भेद करके भिन्न करे हुये धर्मीविषे रहे है ॥ प्रथमपक्ष अंगीकार करें तौ आत्माश्रय दोषकी प्राप्ति होवे है ॥ काहेते अपणी उत्पत्ति विषे तथा अपणी स्थितिविषे तथा अपणे ज्ञानविषे जो अपणी अपेक्षा है ॥ ताका नाम आत्माश्रय दोष

कहिये है ॥ इहां प्रसङ्गविषे जिस भेदविशिष्ट धर्मी है ॥ तिसी भेद विशिष्ट धर्मीविषे तिसी भेदकी स्थिति होनेतें आत्माश्रय दोष आवे है ॥ द्वितीयपक्ष अंगीकार करें तौ यिह प्रष्टव्य है ॥ सो दूसरा भेदभी प्रथम भेद करके भिन्न करेहुए धर्मीविषे रहे है । वा । तीसरे भेदकरके भिन्न करेहुए धर्मीविषे रहे है॥प्रथम पक्ष कहें तौ अन्योऽन्याश्रय दोषप्राप्ति होवे है ॥ काहेते दो पदार्थोंकों अपणी उत्पत्तिविषे ।वा। स्थितिविषे ।वा। ज्ञानविषे जो परस्पर आपेक्षा है॥ताका नाम अन्योऽन्याश्रय कहिये है॥इहां प्रसंगविषे प्रथम भेदकों अपणी स्थितिविषे दूसरे भेदकी आ-पेक्षा है औ दूसरे भेदकों प्रथम भेदकी आपेक्षा होणेते अन्योऽन्याश्रय दोषप्राप्ति होवे है॥ औ तीसरे भेद करके भिन्न करेहुए धर्मीविषे दूसरा भेद रहे है ॥ ऐसा अंगीकार करें तौ यामेंभी यिह प्रष्टव्य है ॥ सो तीसरा भेदभी प्रथम भेद करके भिन्न करेहुए धर्मीविषे रहे है ।वा। चतुर्थ

भेद करके भिन्न करेहुए धर्मींविषे रहे है ॥ प्रथम पक्ष कहैं तौ चक्रका दोषकी प्राप्ति होवे है ॥ काहेते प्रथम भेदकों अपेक्षत द्वितीय भेद है औ ता द्वितीय भेदकों अपेक्षत तृतीय भेद है औ ता तृतीय भेदकों पुना प्रथम भेदकी आपेक्षा होने ते चक्रका दोषप्राप्ति होवे है औ द्वितीय पक्ष कहैं तौ अनवस्थादोषकी प्राप्ति होवे है॥काहेते सो चतुर्थभेदभी पूर्व उक्तव्याघात औ आत्माश्रय तथा अन्योऽन्याश्रय तथा चक्रका इन दोषोंकी प्राप्ति होणेते ॥ भेदरहित धर्मींविषे । वा । स्वविशिष्ट धर्मींविषे । वा । तृतीय द्वितीय भेदविशिष्ट धर्मींविषे । वा । प्रथमभेदविशिष्ट धर्मींविषे तो सम्भवे नहीं ॥ यांते पञ्चमही भेद मानना होवेगा॥इसप्रकार आगेआगे भेदोंकी धारा मानणेविषे अनवस्थादोषप्राप्ति होवे है ॥ तहां परी अवसानतेरहित जो पूर्वपूर्वकों उत्तरउत्तरकी आपेक्षा है ॥ ताका नाम अनवस्था कहिये है ॥ इसरीतिसें कोईभी भेद कहूंभी सिद्ध होवे नहीं और

जैसे पुष्पके ऊपर धरे स्फटिकमणिविषे पुष्पका रक्तवर्ण भासताहै परन्तु सो स्फटिकका धर्म्म नहीं है ॥ काहेते पुष्प औ स्फटिकके वियोगके भये स्फटिकविषे भान होवे नहीं ॥ यांते स्फटिकका धर्म्म नहीं किन्तु स्फटिकविषे भ्रान्तिसें भासता है॥ ता भ्रांतिका मिथ्यानिश्चयरूप बाधकरके स्फटिक रक्तवर्णरूप धर्म्मते रहित निश्चय होवे है॥ तैसे अन्तःकरणका धर्म्म जो कर्ता भोक्तापणा है ॥ सो आत्माविषे भासताहै परन्तु सो आत्माका धर्म नहीं किंतु अन्तःकरणका धर्म्म है ॥ काहेते सुषुप्ति अवस्थाविषे अन्तःकरण औ आत्माके वियोंगके भये आत्माविषे भान होवे नहीं ॥ यांते आत्माका धर्म्म नहीं किन्तु आत्माविषे भ्रांतिसें भासता है ॥ ता भ्रांतिका मिथ्या निश्चयरूप बाधकरके कर्तृत्व भोक्तृत्व धर्म्मतेरहित आत्माका निश्चय होवे है और जैसे घट उपाधिवाला आकाश घटाकाश कहिये है॥ ता आकाशसाथ घटका संबन्ध

भासता है परन्तु जो घटके धर्म्म उत्पत्तिं नाश गमनागमन आदिक हैं ॥ सो आकाशके धर्म्म नहीं किन्तु आकाशमें भ्रांतिसें प्रतीत होवे हैं ॥ ता भ्रांतिका मिथ्या निश्चयरूप बाधकरके उत्पत्तिनाश गमनागमन आदिकोंके संबन्धतेरहित आकाशका निश्चय होवे है ॥ तैसे देहादिक उपाधिवाला चैतन्यजीव कहिये है॥ता चतंन्यरूप जीवसाथ देहादिक संघातका संबन्ध भासता है परन्तु जो संघातके धर्म जन्ममरणादिक हैं ॥ सो चैतन्य आत्माके नहीं किन्तु चैतन्य आत्मामें भ्रांतिसें प्रतीत होवे हैं ॥ ता भ्रांतिका मिथ्यानिश्चयरूप बाधकरके जन्ममरणादिकोंके संबन्धतेरहित चैतन्य आत्माका निश्चय होवे है और मन्द अंधकारविषे रज्जुस्थित होवे तब ताकेदेखने वास्ते नेत्ररूप द्वारसें अन्तःकरणकी बृति जावे है ॥ सो अन्धाकारादि दोषसें रज्जुके विशेषआकारकों विषयकरे नहीं ॥ यांते ता बृतिसें रज्जुकी विशेष अंशका आवरणभंग होवे नहीं ॥ तहां

रज्जु उपहित चैतन्याश्रित जो तूला अविद्या है ॥ सो कार्यके अभिमुखरूप क्षोभकों पायकर सर्परूप विकारकों धारती है ॥ सो सर्प दुग्धके परिणामि दधि की न्यांई अविद्याकापरिणामि है औ रज्जु उपहितचैतन्यका विवर्त है ॥ ता कल्पितसर्पसें जैसे रज्जु विकारी होवे नहीं॥तैसे ब्रह्म-चैतन्याश्रित जो मूला अविद्या है ॥ सो प्रारब्धादिक निमित्तसें कार्यके अभिमुखरूप क्षोभकों पायकर जड़चैतन्य प्रपञ्चरूप विकारकों धारती है ॥ सो प्रपञ्च अविद्याका परिणामि औ ब्रह्म चैतन्यका विवर्त होनेते मिथ्या है ॥ ता मिथ्याप्रपञ्चसें ब्रह्मविकारी होवे नहीं (ननु) मिथ्या-प्रपञ्चमें जो मिथ्यात्व है सो सत्य है । वा । मिथ्या है ॥ प्रथमपक्ष कहें तौ अद्वैतकी हानी औ द्वितीयपक्ष कहें तौ मिथ्यात्वसें स्वविरोधि प्रपञ्चके सत्यत्वका प्रतिक्षेप नहीं होवेगा ॥ काहेते जैसे शुक्तिमें प्रातिभासिक रजतके तादात्म्यसें स्वाभेदरूप तादात्म्यका प्रतिक्षेप होवेनहीं

और जैसे एकब्रह्ममें सप्रपञ्चत्व औ निष्प्रपञ्चत्व उभै धर्म्म हैं परंतु मिथ्याभूत सप्रपञ्चत्वसें परमार्थिक निष्प्रपञ्चत्वका प्रतिक्षेप होवे नहीं॥तैसे मिथ्याभूत मिथ्यात्वसें प्रपञ्चके परमार्थिक सत्यत्वधर्मका प्रतिक्षेप होवे नहीं॥इसप्रकारसें अद्वैतकी सिद्धि उभैरीतिसें होवे नहीं(उत्तरः) सन्घटः सन्पटः इस रीतिसें घटादिकनमें जो सत्यत्व प्रतीत होवे है॥सो अधिष्ठानगत सत्यत्वका घटादिकनमें भान होवे है। वा। अधिष्ठानगत सत्ताका घटादिकनमें अनिर्वचनीय संबन्ध उपजे है ❀ औ वाचाऽऽरंभणंविकारोनामध्येयं ❀ इत्यादिक श्रुतिसें घटादिकनमें मिथ्यात्व है ॥ यांते घटादिकनमें अपनी सत्ता नहीं किंतु ब्रह्मकी सत्ता है ॥ यिही घटादिनमें सत्यत्व धर्मका मिथ्यात्वधर्म्मसें प्रतिक्षेप है और जु दृष्टांत कहे तहां सुनो शुक्तिमें स्वतादात्म्य रूप अभेद प्रत्यक्षप्रमाण कर सिद्ध है तथा ❀ एकमेवाद्वितीयंब्रह्मनेहनास्तिकिंचनः ❀ इत्यादि श्रुतिप्रमाणसें ब्रह्ममें निष्प्रप-

ञ्चत्व सिद्ध है औ शुक्तिमें प्रातिभासिक रजतका तादात्म्य तथा ब्रह्ममें सप्रपञ्चत्व भ्रमसिद्ध है॥
यांते प्रमाणसिद्ध धर्मीसें भ्रमसिद्ध धर्मोंका प्रतिक्षेप होवे है। ❀ अन्य ग्रन्थकार ऐसे समाधान
करे है ❀ प्रमाणसिद्ध धर्मीकेसमान सत्तावाले धर्मसें स्वविरोधि धर्म्मका प्रतिक्षेप होवे है औ
प्रमाणसें ननिरणीत धर्मीते विषमसत्तावाले धर्मसें स्वविरोधिधर्मका प्रतिक्षेप होवे नहीं औ
दोनों धर्म्म प्रमाण निरणीत होवे तहांभी अपरका प्रतिक्षेप होवे नहीं॥ प्रसंगविषे श्रुतिआ-
दि प्रमाणसें सिद्ध व्यावहारिक प्रपञ्चमें मिथ्यात्वभी व्यावहारिक है॥ काहेते आगंतुक दोषर-
हित केवल अविद्याजन्य प्रपञ्च औ मिथ्यात्व है॥ यांते दोनों व्यावहारिक होनेते स्वविरोधि
प्रपञ्चमें परमार्थिक सत्यत्व धर्म्मका प्रतिक्षेप होवे है॥ जैसे प्रत्यक्ष्यादि प्रमाणसें सिद्ध शुक्ति
तथा शुक्तिमें स्वतादात्म्यरूप अभेद व्यावहारिक होनेते स्वविरोधि विषमसत्तावाले रजत ता-

दात्म्यका प्रतिक्षेप होवे है और जैसे ❋ ननिरोधो नचोत्पत्तिर्नवधोनचसाधकः ॥ नमुमुक्षुर्ने-वैमुक्ति इत्येषपरमार्थितः इत्यादि श्रुतिप्रमाणते सिद्ध ब्रह्ममें निष्प्रपञ्चत्व तथाब्रह्म परमार्थिक होनेते स्वविरोधि सप्रपत्ञ्चत्व धर्मका प्रतिक्षेप होवे है और प्रमाणसें ननिरणीत प्रपञ्चते विषम-सत्तावाले सत्यत्त्व धर्मसें प्रपंचके मिथ्यात्व धर्मका प्रतिक्षेप होवे नहीं ॥ जैसे प्रमाणसें ननिरणीत विषमसत्ता कहिये प्रातिभासिक सत्तावाले रजत तादात्म्यसें ॥ व्यावहारिक शुक्तिके स्वतादा-त्म्यरूप अभेदका प्रतिक्षेप होवे नहीं और जैसे प्रमाणसें ननिरणीत विषमसत्ता कहिये व्या-वहारिक सत्तावाले सप्रपञ्चत्वसें निष्प्रपञ्चत्वका प्रतिक्षेप होवे नहीं यद्यपि ❋ यतोवाइमानिभू-तानि ❋ इत्यादि श्रुतिप्रमाणसें सप्रपञ्चत्व है तथापि जा अर्थसें अनर्थ निवृत्ति होवे ॥ ता अर्थमेंही श्रुतिका तात्पर्य होवे है ॥ सो अनर्थ निवृत्ति निष्प्रपञ्चत्वके बोधसें होवे है परन्तुसप्र-

पञ्चत्व विपरित चिन्तनादिद्वारा अद्वैतबोधमें उपयोगी होनेते सप्रपञ्चत्व प्रतिपादक श्रुतिभी निष्फल नहीं ॥ ❀ अन्य ग्रन्थकार ऐसे समाधान करे है ❀ स्वाश्रय गोचरतत्व साक्षात्कारसें जिस धर्मका बाध होवे नहीं ॥ तिस धर्मसें विरोधि धर्मका प्रतिक्षेप होवे है ॥ तहां मिथ्यात्व-का आश्रय प्रपञ्च है औ ताका अधिष्ठान ब्रह्म है ॥ ताकों विषयकरणेवाला जो तत्व साक्षा त्कاररूप ज्ञान है ॥ तां ज्ञानसें प्रपञ्चके मिथ्यात्वका बाध होवे नहीं ॥ यांते प्रपञ्चके मिथ्यात्वसें ताके विरोधी सत्यत्वका प्रतिक्षेप होवे है ॥ तथा निष्प्रपञ्चत्वका आश्रय ब्रह्म है तां ब्रह्मके सा-क्षात्कारूप ज्ञानसें निष्प्रपञ्चत्वका बाध होवे नहीं यांते ब्रह्मके निष्प्रपंचत्वसें ताके विरोधि स-प्रपंचत्वका बाध होवे है ॥ जैसे शुक्तिमें स्वतादात्म्य है औ कल्पित रजतकाभी तादात्म्य है परन्तु शुक्ति साक्षात्कारसें रजत तादात्म्यका प्रतिक्षेप होवे है ॥ सो प्रतिक्षेप मतभेदसें चार

प्रकारका है ॥ तत्वशुद्धिकारकेमतमें ॥ घटः सन् पटः सन् इत्यादिक ज्ञानका विषय अधिष्ठान चेतन है औ सत्यरूप चेतनमें घटादिक अध्यस्त होनेते अपने अधिष्ठान सत्यरूप चेतनसें अभिन्न होयके भ्रम ज्ञानके विषय होवे हैं ॥ जैसे शुक्ति आदिकनकों विषय करणेवाला इदमाकार ज्ञान होवे है औ इदमाकार वृत्तिरूप ज्ञान उपहित चेतनमें रजतादि अध्यस्त होनेते अपने अधिष्ठान सत्यरूप चेतनसें अभिन्न होय के भ्रम ज्ञानके विषय रजतआदिक होवे हैं ॥ तैसे प्रमाणजन्य सकल ज्ञानोंका विषय सत्यरूप अधिष्ठान है औ घटादि गोचर प्रमाणजन्यवृत्ति होवे नहीं ॥ काहेते अज्ञात गोचर प्रमाण होवे है औ घटादि जड़ पदार्थोंमें अज्ञानकृत आवरणके असंभव होणेते अज्ञातत्वका अभाव है ॥ यांते घटादिकनमें प्रमाणोंकी गोचरता संभवे नहीं ॥ किंतु तिनका अधिष्ठानही प्रमाणजन्य ज्ञानका

विषय है ॥ इस रीतिसें सकल प्रमाणका विषय सत्यरूप चेतन है ॥ ता सत्यरूप चेतनमें ता-
दात्म्य सम्बधसें अनेक भेद विशिष्ट घटादिकनकी प्रतीतिभ्रमरूप है ॥ ता भ्रमरूप प्रतीतिका
मिथ्या निश्चयरूप बाध करके॥ सर्व प्रमाणोंका विषय सत्यरूप अधिष्ठान है॥ ऐसा निश्चय होवे
है यिही सत्यत्वका प्रतिक्षेप है और न्याय सुधाकारके मतमें अधिष्ठानगत सत्यत्वके सम्ब-
न्ध विशिष्ट घटादिक घटःसन् इत्यादिक प्रतीतिके विषय है ॥ यांते घटादिकनमें अपना सत्य-
त्व नहीं ॥यिही घटादिकनमें सत्यत्वका प्रतिक्षेप है और ग्रन्थकारनके मतमें घटोऽस्ति इत्यादि-
क प्रतीतिका गोचर घटादिकनका सत्यत्व है ॥ श्रुति युक्ति ज्ञानीके अनुभवसें घटादिकनमें
मिथ्यात्व है ॥तहां अबाध्यत्वरूप सत्यत्वसाथ मिथ्यात्वका विरोध होनेते ॥ घटादिकनमें जाति-
रूप सत्यत्व है ॥ जैसे सकल घटादिकनमें अनुगत धर्म घटत्व है॥ तैसे घटः सन् पटः सन् इस

एकाकार प्रतीतिका गोचर सकल पदार्थनमें अनुगत धर्मसत्व है। वा। देशकालके सम्बन्धविना तो घटादिकनकी प्रतीति होवे नहीं किंतु देशकालके सम्बन्धविशिष्टही घटादिकनकी प्रतीति होवे है ॥ काहेते इह देशे घटोस्ति इदानीकाले घटोस्ति ॥ इस रीतिसें देशकाल संबन्धकों घटादि गोचर प्रतीति विषय करे है॥यांते देशकाल संबन्धरूपही घटादिकनमें सत्यत्व है ॥ ।वा। घटादिकनका स्वरूपही घटोस्ति या प्रतीतिका विषयहै ॥ घटादिकनमें पृथक् सत्वको उक्त प्रतीति विषय करे नहीं ॥ काहेते नञ्रहित वाक्यसें जाकी प्रतीति होवे ॥ ताका नञ्सहितवाक्यसें निषेध होवे है ॥ काहेते घटोस्तियावाक्यते घटके स्वरूपकी प्रतीति होवे है औ घटोनास्ति या वाकयते घटके स्वरूपका निषेध होवे है यिह सर्वकों संमत है ॥ यांते घटोस्ति या नञ् रहित वाक्यते घटके स्वरूपमात्रका बोधही मानना उचित है ॥इस रीतिसें घटोस्ति

इस प्रतीतिका गोचर घटकाही स्वरूप है ॥ यांते घटके स्वरूपसें अतिरिक्त घटादिकनमें सत्यत्व नहीं ॥ यिही घटादिकनमें सत्यत्वका प्रतिक्षेप है और आचार्य इस रीतिसें सत्यत्वका प्रतिक्षेप करे है ❀ प्राणावै सत्यं तेषा मेष सत्यं '' सत्यस्य सत्यं ❀ अर्थ यिह ॥ प्राण कहिये हिरण्यगर्भ सत्य है ॥ ताकी अपेक्षा ते परमात्मा उत्कृष्ट सत्य है ॥ तहां अनात्य सत्यतासें आत्म सत्यता उत्कृष्ट है और जैसे अन्य राजाकी अपेक्षा ते उत्कृष्टकों राज राज कहे हैं ॥ तैसे उत्कृष्ट सत्यकों सत्यका सत्य श्रुतिभगवतिने कह्या है ॥ तहां अन्य प्रकारका तो उत्कर्ष अपकर्ष संभवे नहीं किंतु सर्वदा अबाध्यत्व औ किंचित काल अबाध्यत्वमेंही उत्कर्ष अपकर्ष कहना होवेगा ॥ सो सर्वदाअबाध्यत्वरूप उत्कर्ष सत्यत्व परमात्माका है औ किंचित काल अबाध्यत्वरूप अपकर्ष सत्यत्व कल्पित रजत ते लैकर हिरण्यगर्भ पर्यंत अनात्मा

में है ॥ यांते सर्वदा अबाध्यत्वरूपउत्कर्षसत्यत्व अनात्मामें नहीं ॥ यिही अनात्मामें सत्यत्वका प्रतिक्षेपहै॥इसरीतिसें प्रपंच मिथ्या है॥ता मिथ्या प्रपंचसें सर्वदा अबाध्यरूप आत्मदेव विकारी होवे नहीं और जैसे कनक औ कुंडलका कार्य कारणभाव करके भेद भासता है सो कल्पित है॥ काहेते विचार करणेसें कनककी सत्तासें कुंडलकी भिन्न सत्ता निकसे नहीं ॥ यांते कनकसें कुण्डल भिन्न है यिह भ्रांति है ॥ ता भ्रांतिका मिथ्या निश्चयरूप बाधकरके ॥ कनकसाथ अभिन्न कुण्डलका निश्चय होवे है ॥ तैसे ब्रह्म औ जगत्का कार्यकारणभावसें भेद भासता है सो कल्पित है ॥ काहेते अस्ति भांति प्रियरूप ब्रह्मसें जगत्की भिन्न सत्ता निकसे नहीं ॥ यांते ब्रह्मसें जगत् भिन्न है यिह भ्रांति है ॥ ता भ्रांतिका मिथ्या निश्चयरूप बाधकरके ब्रह्मते अभिन्न जगत्का निश्चय होवे है ❋ तात्पर्य यिह ॥ असत् १ जड़ २ दुख ३ द्वैतता ४ यिह

चार विशेषण अनात्माके है औ सत् १ चित् २ आनंद ३ अद्वैतता ४ यिह चार विशेषण आत्माके है परन्तु आत्माके सत् औ चित् यिह दो विशेषण संसर्गद्वारा अध्यस्त होयके ॥ अनात्माके असत् जड़ इन दो विशेषणोंकों आच्छादे है।।यांते अनात्माविषे असत्ता औ जड़ताकी प्रतीति होवे नहीं किंतु विद्यमान है औ भासता है ऐसी भ्रांति होवे है ॥ ता भ्रांतिका मिथ्या निश्चयरूप बाधकरके ॥ अनात्मा असत् जड़ है ऐसा निश्चय होवे है और अनात्माके दुःख औ द्वैतता यिह दो विशेषण स्वरूपसें उत्पन्न होयके ॥ आत्माके आनंद औ अद्वैतता इन दो विशेषणोंकों आच्छादे हैं ॥ यांते मैं आनंदरूपहूं औ अद्वितीयरूपहूं ऐसी प्रतीति आत्माकी होवे नहीं ।।किंतु मैं दुखी हूं औ ईश्वरादिकोंसें भिन्न हूं ऐसी भ्रांति होवे है।।ता भ्रांतिका मिथ्या निश्चयरूप बाधकरके ।। मैं आनंदरूपहूं औ अद्वितीयरूप हूं ऐसा निश्चय होवे है ।। इस प्रकारसें जो

ब्रह्म श्रोत्रिय है तथा ब्रह्मनिष्ठावाला है तथा भ्रमकों दूर करणेवाला है सो गुरू कहिये है ॥ केवल ब्रह्मनिष्ठ । वा । ब्रह्मश्रोत्रिय पंगु ।वा। अन्ध केवट वत् संसारसागरसें पार करसके नहिं ॥ किंवा ॥ गृशब्दे, इस धातुसें गुरु शब्द बना है 'गृणाति उपदिशति तत्त्वमिति गुरुः' यिह गुरुपदकी व्युत्पत्तिहै ॥ ऐसे गुरुकेपास मुमुक्षुजनोंकों प्राप्त होना योग्यहै ॥ इसी अर्थकों श्रुतिभी कहेहै ❋ तदभिज्ञानार्थंसगुरुमेवाभिगच्छेत् श्रोत्रियंब्रह्मनिष्ठमिति ❋ अर्थयिह ॥ आत्मज्ञानकी इच्छावाला मुमुक्षु ब्रह्मश्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुकों प्राप्त होवे ॥ इस श्रुतिकी आज्ञासेंभी समित्पाणि होइके भक्तियुत ऐसे गुरुकी शरणकों प्राप्त होना योग्यहै॥ गुरु भक्तहिकों वेदोक्त अर्थोंका प्रकाश होवेहै ॥ इसी वार्त्ताकों श्रुतिभी कहेहै ❋ यस्यदेवेपराभक्तिर्यथादेवेतथागुरौ ॥ तस्यैतेकथिताह्यर्थाः प्रकाशन्तेमहात्मनः ❋ अर्थयिह ॥ जिस पुरुषकी ईश्वरमें परम भक्ति है ॥ तैसे

हि गुरुमें जिसकी होवे ॥ इह तत्त्वोपयोगी अर्थ उसी महात्माकों प्रकाश होवेहै अन्यकों नहीं इति ॥ इसी वार्त्ताकों मनुजीभी कथन करेहै ❋ इमंलोकंमातृभक्त्यापितृभक्त्यातुमध्यमम् ॥ गुरुशुश्रूषयात्वेवंब्रह्मलोकंसमश्नुते ॥ १ ॥ सर्वेतस्यादृताधर्मायस्यैतेत्रयआदृताः । अनादृतायस्तु यस्यैतेसर्वास्तस्याफलाःक्रियाः ॥ २ ॥ यावत्त्र्यस्तेजीवेयुस्तावन्नान्यंसमाचरेत् । तेष्वेवनित्यंशुश्रूषांकुर्य्यात्प्रियहितेरतः ❋ अर्थयिह ॥ यिह जीव इस भूमि लोककों माताकी भक्ति करणेसें प्राप्त होता है औ पिताकी भक्तिसें अन्तरिक्ष लोककों प्राप्त होताहै ॥ तैसेहि गुरुकी भक्तिसें ब्रह्मलोककों प्राप्त होवेहै ॥ १ ॥ जिस पुरुषनें माता पिता गुरुका सत्कार कराहै ॥ उसके सम्पूर्ण धर्म सफल होते हैं औ जिसनें इन तीनोंका निरादर कराहै ॥ उसकी सम्पूर्ण श्रौत स्मार्त क्रिया निष्फल है ॥ २ ॥ जितना काल मातापिता तथा गुरू जीते रहें ॥

उतना काल कल्याणकी कामणावाला पुरुष ॥स्वतंत्र होइके धर्मान्तरका अनुष्ठान न करे ॥ किंतु तिन्होंकीही सर्वदा शुश्रूषाकोंकरे प्रीतमजुहै तिन्हैके सुखविषे प्रीतिवाला होवे ॥ ३ ॥ सो गुरु भक्ति कायक मानस वाचक भेदसें त्रिधा है॥ शरीरसें सेवा करणी । वा । शरीरसें द्रव्योपार्जन करके द्रव्य सेवा करणी सो कायक कहिये है ॥ १ ॥ और मनसें साक्षात् विष्णु मूर्ति जानणा सो मानस कहिये है ॥ २ ॥ और प्रासंगक गुरूकी प्रशंसा करणी यिह वाचक कहिये है ॥ ३ ॥ (ननु) ❀ श्रवणंकीर्तनंविष्णोः स्मरणंपादसेवनम् ॥ अर्चनंवन्दनंदास्यम् साख्यंसर्वस्वमर्पणम् ❀ अर्थ यिह ॥ ईश्वरके गुणोको श्रवण करणा जैसे परीक्षत राजानें करा है ॥१ ॥ औ गुणोकों 'कहिणा शुकदेव वत् ॥२॥ और स्मरण प्रल्हाद वत् ॥३॥ पाद पूजन लक्ष्मीवत् ॥४॥ पूजना पृथुराज वत ॥५॥ वन्दना अक्रूर वत् ॥६॥ दासभाव हनुमान वत ॥७॥ सख्यभाव अर्जुन वत् ॥८

सर्व स्वदान बलिराजा वत् ॥ ९ ॥सर्व प्राणीयोंकों कर्त्तव्यहै ॥ इस रीतिसें नवधा भक्ति ग्रन्थोंमें कहिहै॥ आप त्रिधा कैसे कहितेहों (उत्तरः) हे शिष्य विचार कियेसें यिह नवभेद उस तीनके अवा न्तरहि होजावेहैं ॥ तान्ते त्रिधा भक्तिहि मुख्य है ॥इस प्रकारसें त्रिधा भक्तिकों करणेवाला जिज्ञासु गुरु वचनोते सनातनी शिक्षाकों प्राप्त होवे है ॥ ७१ ॥ शिष्य प्रश्नः ॥ दोहा ॥ भगवन्शिक्षासना तनीसुकहोकृपाकरमोह ॥ विषवतसुखसंसारपिखशरणगहीइकतोह ॥ ७२ ॥ गुरुरुवाच ॥ सोरठा॥ सुनोशिष्यमतिमानशिक्षायिहीसिनातनी ॥त्यागनिखिलअभिमानउदासीनसुभवमार्ग गहो॥७४॥ ❀ अर्थस्पष्ट॥ ❀ तात्पर्ययिह ❀ उदासीनवदासीन ❀ इत्यादि भगवद्वचन प्रतिपाद्य ' तथा ❀ ऊचीनदरसराफीहोय ॥ नानककहेउदासी सोय ❀ इत्यादि गुरु नानक वचन प्रतिपाद्य' जो सर्वोत्कृष्ट परमात्माकों साक्षात्कार करके स्थित उदासीन पुरुष है ॥ ता उदासीन पुरुषकी

स्थिति है जिसविषे॥ ऐसा जो सर्बसें उपरामतारूपउदासीनमार्ग है ॥ सा उदासीन मारग परमात्मानें ❀ तदैक्षतबहुस्यांप्रजायेय ❀ ऐसी सृष्टिकी इच्छा कालमें ही स्वमहिमारूप पुरी में अधिकारीयोंके प्रवेश के वास्ते शिक्षा सहितहि रचाहै ॥ सो परंपरा प्राप्त दीर्घ कालके प्रभावसें गौनभावकों प्राप्त होता भया तौ सनकादिक बहुकाल पर्य्यन्त उसी मारगका उपदेश करते भये ॥पुनः काल कर्मके वेगसें शिथिल भावकों प्राप्त होता भया तौ स्वयंज्योति जगदाधार परमकारुणिक परमात्मदेव॥गुरुनानक रूपसें आविरभाव होते भये और उसी अनादि शिक्षा सहित उदासीन मार्गका उपदेश ॥ श्रीचन्द्र, लक्ष्मीचन्द्र,अङ्गदादिशिष्योंकों करते हुए ॥ पुनः सन्मार्गकों स्फुट करते भये ॥ सो परंपरा प्राप्त अनादि शिक्षाका आद्य मंत्र यिहहै ॥ ❀ १ ओं सतानाम कर्ता पुरुष निर्भय निर्वैर अकाल मूर्ति अयोनी साभं गुरुप्रसाद जप आदि सच जुगादि

सच हय भी सच नानक होसी भी सच ॥ १ ॥ * अर्थयिह ॥ इस मंत्रके आद्यका एक अंक *एकमेवाद्वितीयम्*इस श्रुतिका सूत्र रूपहै अर्थात् एक अद्वितीय परमात्माहै ऐसे बोधन करे- है ॥ अद्वितीय सजातिविजाति सुगत इन त्रय भेदरहितका नाम है॥परस्पर पुरुषोंके भेदकों स- जाति भेद कहे हैं ॥ १ ॥ पुरुष और पशुका भेद विजाति भेदहै ॥ २ ॥ औ पुरुषका पाणि पा- दादिकोंसें भेद स्वगत भेद है ॥३॥ परमात्माका सजात्यन्तराभाव होणेते प्रथम भेद सम्भवे नहीं औ विजाति घटपटादिककी तदतिरिक्त सत्ताका अभाव होणेते द्वितीय भेदभी सम्भवे नहीं य- द्यपि घटादि पदार्थ विजाति प्रतीत होवे हैं तथापि घटादि पदार्थ शुक्तिरजतवत् कल्पित हैं औ कल्पितकी सत्ताका अधिष्ठान सत्तासें अनतिरेक होवेहै ॥यिह सर्व विद्वानोंके अनुभवसिद्ध- है॥यांते विजाति भेदभी सम्भवे नहीं और परमात्माकों निरवयव होनेते पर स्वगत भेदभी बने

नहीं ॥ इस रीतिसें त्रयभेदरहित परमात्माकों प्रथम एक अंक बोधन करेहै ॥ 'ॐ' यिह परमेश्वरका मुख्य नामहै 'अवतिरक्षतीति ओम्' यिह इसकी व्युत्पत्तिहै ❀ अवरक्षण गति कात्यादिषु ❀ इस धातुसें व्याकरणमें बनेहै ॥ यांते सर्वकी रक्षा करणेवाला तथा सर्वत्र वर्तमान तथा सर्वके प्रकाश करणेवाला 'ॐ' पदका अर्थहै और ❀ सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म ❀ इत्यादिक श्रुतियोंके सूत्ररूप सत्य पदका उपदेश गुरुजी करेहै ॥ सो परमात्मा सत्यस्वरूप है ❀ तात्पर्ययिह ॥ केचित्पदार्थ प्रातिभासिक सत्यहैं औ केचित् व्यवहारक सत्यहैं ॥ ब्रह्मज्ञानते बिनाहि ज्ञानमात्रसें बाध होनेवाले शुक्ति रजतादि प्रातिभासिक सत्यहैं औ ब्रह्मज्ञानसें बाध होनेवाले घटपटादि व्यवहारक सत्यहैं औ परमात्मा परमार्थिक सत्यहै ॥ जाका त्रय काल विषे नास होवे नहिं सो परमार्थिक सत्य कहियेहै ॥ श्रुतिगत ज्ञान पदसें परमात्मामें ज्ञान रूपता बोधन

होवेहै ॥ अनन्त पदसें देशकाल वस्तु परिच्छेद शून्यता बोधन होवेहै तथा च शिष्टोक्तिः
* नव्यापित्वाद्देशतोऽतोनित्यत्वान्नापिकालतः ॥ नवस्तुतोपिसार्वात्म्यादानंत्यंब्रह्मणित्रिधा *
अर्थयिह ॥ परमात्माका व्यापक होणेते देशते अन्त नहिं औ नित्य होणेते कालते अन्त नहिं
तथा परमात्मासें पृथक् वस्तुका अभाव होणेते वस्तु परिच्छेदभी नहिं ॥ इतनेते ब्रह्मका
स्वरूप लक्षण कथन किया ॥ काहेते 'स्वरूप सद्व्यावर्तकं स्वरूपलक्षणम्' तहां जो
स्वरूप भूत हुयाहि व्यावर्तक होवे सो स्वरूप लक्षण होवेहै ॥ जैसे 'तेजः प्रकाशादिमत्वम्'
यिह सूर्यका स्वरूप लक्षणहै औ तम आदिकोंते व्यावर्तकभीहै ॥ तैसेहि सत्य ज्ञानादि स्वरूप
लक्षण असत्य जडादिकोंते परमात्माकी व्यावृति करेहै ॥ यांते परमात्माका सत्यादि स्वरूपल-
क्ष्यणहै॥अब सत्यादिकपदोंकों सार्थ करेहैं ॥ सत्य ब्रह्म इतना हीं कहिये तो ऐसीतो नैयायिकोंके

मतमें सत्ता जातीभीहै॥यांते चिद् पद कह्या॥चिद् ब्रह्म इतना हीं कहिये तौ ऐसातो नैयायिकोंके मतमें आत्माका चिद्रूप ज्ञान गुणभीहै॥यांते आनंद पद कह्या ॥ आनंद ब्रह्म इतनाहीं कहिये तौ ऐसातो विषय जन्य सुखभीहै ॥ यांते चिद् पद कह्या ॥ इसरीतिसें सत्य चिद आनंद यिह तीनो मिलके ब्रह्मका स्वरूप लक्षणहै (ननु) सत्यादिक ब्रह्मका स्वरूप होवे तौ सत्यादिकोंका तथा ब्रह्मका लक्षण लक्ष्य भाव नहीं होवेगा ॥ काहेते जो लक्ष्य लक्षण भाव होवेहै सो भेदके अधीन होवेहै ॥ अभेद विषे लक्ष्य लक्षण भाव होवे नहीं ॥ जो कदाचित् अभेद विषेभी लक्ष्य लक्षण भाव होवे तौ सूर्यभी सूर्यका लक्षण हुया चाहिये (उत्तरः) यद्यपि सत्यादिक ब्रह्मका स्वरूपहैं तथापि सत्यादिकोंका ब्रह्ममें कल्पित भेद ग्रन्थकारोंने अंगीकार कीयाहै ॥तथाच शिष्टोक्तिः ❋ आनंदोविषयानुभोनित्यत्वं चेतिसंतिधर्माः ॥ ब्रह्मणोऽपृथत्त्वेऽपिपृथगिवाव-

भासंत ❋ अर्थ यिह ॥ आनंद ज्ञान नित्यता यिह तीनों धर्म ब्रह्मकेहै जाणो ॥ सो वास्तवते ब्रह्मते अपृथक् हुएभी प्रथक् हुएकी न्यांई प्रतीत होवेहैं इति (शंका) सो सत्यादिक धर्म वास्तवते ब्रह्मते अपृथक् होवे तौ तिन सत्यादिकोंकी ब्रह्मते पृथक् होइके प्रतीति किस कारणते होवेहै (उत्तरः) अंतःकरणकी वृत्तिरूप उपाधिके वशते तिन सत्यादिकोंकी ब्रह्मते पृथक् प्रतीति होवेहै ॥ काहेते वाधाऽभाव विशिष्ट अर्थात् अहं अहं वृति विशिष्ट चैतन्य सत्य पदका बाच्यार्थहै और ज्ञानरूप वृत्ति अवच्छिन्न चैतन्य ज्ञान पदका वाच्यार्थहै औ प्रेय वृत्ति अवच्छिन्न चैतन्य आनंद पदका वाच्यार्थहै ॥ इस रीतिसें ब्रह्मका तथा सत्यादिकोंका उपाधि कृत भेद विद्यमान होणेते लक्ष्य लक्षण भाव संभवेहै तथा सत्यादिक पद भाग त्याग लक्षणाते अखंड अर्थके बोधक होणेते॥गुण गुणीभावभी

तिन्होंका अर्थ सिद्ध होवे नहीं तथा सत्यादिक पद अपर्यायहैं तथा समान भवक्ति वालेहैं तथा लक्षणाद्वारा एक अर्थके बोधकहैं ॥ यांते अखंड अर्थकी बोधकताभी संभवेहैं ॥ अर्थात अखंड अर्थके बोधकभीहैं ❋ यतोवा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभि संविशन्ति तद्वि जिज्ञा सस्व तद् ब्रह्मेति❋इस श्रुतिका सूत्ररूप 'नाम कर्ता' इस पदका उपदेश गुरुजी करेहै ॥ नाम पदसें रूप पदकाभी अध्याहार आपेक्षतहै ॥ अर्थात पुनः सो ब्रह्म कैसाहै नामरूप जगत्का कर्त्ता कहिये मायाद्वारा विवर्तरूप कारणहै ॥ तहां वेदांत सिद्धान्तमें कारण दो प्रकारका है ॥ एक परिणामिरूप कारणहै औ दूसरा विवर्तरूपकारणहै ❋ उपादान समसत्ताक कार्यापति परिणामः औ उपादान विषम सत्ताक कार्यापति विवर्तः ❋ अर्थयिह ॥ उपादानके समान सत्ताहै जाकी ऐसा जो कार्यहै ॥ ताकों जो प्राप्त होना है सो परिणामरूप का-

रण कहियेहै ॥ जैसे दुग्धने दधिरूप कार्यकों प्राप्त होना है ॥ काहेते इन दोनोंकी व्यवहारक सत्ताहै ॥सत्ता सिद्धान्तमें मत भेदसें दो प्रकारकी । वा । तीन प्रकारकीहैं ॥ तहां मधुसूदन स्वामी आदि आचार्योंके मतमें तो ॥ परमार्थिक, प्रातिभासिक, भेदसें सत्ता द्विधाहै औ ब्रह्मकी परमार्थिक सत्ताहै औ घटपटादिकोंकी तथा शुक्तिरजतादिकोंकी प्रातिभासिक सत्ताहै और त्रय सत्तावादी वेदान्त परिभाषाकार धर्मराज ध्वरीन्द्रहै ॥ वहु घटादिकोंकी व्यवहारक सत्तामानेहै इतना भेद है परन्तु मुख्य द्वय सत्ता वादहि है और उपादानते विषम सत्ताहै जाकी ॥ ऐसा जो कार्यहै ताकों जो प्राप्त होना है ॥सो विवर्तरूप कारण है ॥ जैसे शुक्तिने । वा । तद उपहित चैतन्यने रजतरूप कार्यकों प्राप्त होना है ॥ काहेते रजतादिकों ते शुक्तिआदिकोंकी विषमसत्ताहै ॥ तैसे प्रपंचते ब्रह्मकी विषमसत्ताहै ॥ यांते नामरूप प्रपञ्चका ब्रह्म विव-

तरूप कारणहै अथवा नामकर्ता कहिये माया आश्रयकर अभिन्न निमित्त उपादानरूप कारणहै ❋ कार्यान्वितं सत्कार्य जनकं उपादानम् ❋ अर्थयिह ॥ कार्यमें अन्वित होइके जो कार्यका जनक होवे सो उपादान कारण कहियेहै ॥ जैसे स्वप्न पदार्थोंके प्रति निद्राहै औ ❋ कार्यानन्वितं सत्कार्य जनकं निमित कारणम् ❋ अर्थयिह ॥ कार्यमें अनन्वित होइके जो कार्यका जनक होवे सो निमित्त कारण कहियेहै ॥ जैसे स्पप्न पदार्थोंके प्रति साक्षी चेतनादिक हैं औ ऊर्ण नाभि नामक जन्तुभी इस अभिन्न निमित्त उपादान कारणतामें ॥ दृष्टान्तरूपेण वेदान्त ग्रन्थोंमें प्रसिद्धहै औमुण्डकोपनिषद्के प्रथम खण्डमें इसीका प्रतिपादक श्रुतिभीहै ॥ तथाच ❋ यथोर्णनाभिः सृजतेगृह्णतेच यथापृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि तथाऽक्षरासम्भवन्तीहविश्वम् ❋ इसरीतिसें सो परमात्मा नामरूप प्रपञ्चका

अभिन्न निमित्तरूप कारणहै ॥ तहां मायाका लोहकान्तमणिरूप चुम्बकवत् ॥ सन्निधि मात्र करके प्रेरकत्वहि ईश्वर साक्षीमें निमित कारणताहै औ ईश्वर साक्षी आश्रित माया जगत्का उपादान कारणहै॥तहां कार्योकार कर परिणामिकों प्राप्त होनाहि मायामें उपादानताहै॥इस प्रकारसें हेशिष्य सच्चिदानन्दरूपब्रह्म जगत्का कर्ताहै तथा कर्मानुसार सुखदुःखका अनुभवरूपभोगका भुगाना-रूप पालना कर्ताहै तथा भोगाभिमुख कर्मके उपरामहुए जगत्की सूक्ष्मावस्थारूप संहारका कर्ताहै ॥इसरीतिसें ब्रह्मका तटस्थ लक्षणभी निरूपण भया॥काहेते❋कदाचित्कत्वेसति व्यावर्तकं तटस्थ लक्षणम् ❋ अर्थयिह ॥ जो कदाचित्क लक्ष्ममें रहे औ लक्ष्यकों अलक्ष्योंते भेदन करे सो तटस्थ लक्षण होवेहै ॥ जगत् कर्तृत्व आदिकभी परमात्मामें कदाचित्कहैं औ जड़ प्रकृति आदिकोंते भेदकभीहैं ॥ यांते कर्तृत्वादि ब्रह्मका तटस्थ लक्षणहै ॥ अब पदोंकी सफलता करे

हैं ॥ लय कारणत्वं इतनाहीं कहिये तौ ब्रह्म केवल उपादानही सिद्ध होवेगा ॥ काहेते जो कार्य जिस कारण विषे लय होवेहै ॥ ता कार्यके प्रति ता कारणकों केवल उपादान कारणताही देखणेमें आवेहै ॥ जैसे घटके लयका कारण मृत्तिका ताघटका केवल उपादानही होवेहै औ निमित्त कारण होवे नहीं ॥ तैसे ब्रह्मते भिन्नही कोई निमित्त कारण जगत्का अंगीकार करण होवेगा ॥ यांते स्थिति कारणत्व कह्या ॥ सृष्टि स्थिति कारणत्वं इतनाहीं कहिये तौ जैसे कुलाल घटके प्रति केवल निमित्त कारण है ॥ तैसे ब्रह्मभी केवल निमित्त कारणही होवेगा औ उपादान कोईअन्यही मानना पडेगा ॥ यांते लय कारणत्व कह्या ❋ तात्पर्ययिह ॥ जगत्कर्तृत्वेसति जगदुपादानत्वं तटस्थ लक्षणत्वं ❋ अर्थ यिह ॥ जगत्के कर्तृत्व विशिष्ट जो जगत्का उपादान होनाहै ॥ यिहही ब्रह्मका तटस्थ लक्षणहै ॥ तहां जगत् उपादानत्वं इतनाहीं कहिये तौ

ऐसी मायाभीहै ॥ काहेते सुद्ध ब्रह्मकोंतो जगत्की उपादानता नहींहै किंतु माया विशिष्टकोंही जगत्की उपादानताहै ॥ यांते बिशिष्टविषे बर्तने हाराधर्म विशेषणविषेभी अवश्य रहेगा ॥ इसीते विशेषणरूपमायाकोंभी जगत्का उपादानपणा अवश्य होवेगा ॥ यांते जगत् कर्तृत्व यिह पदकह्या ॥ तहां कार्यके उपादानका जो अपरोक्ष ज्ञानहै तथा ता कार्यके करणेकी जो इच्छाहै तथा ता इच्छा जन्य जो प्रयत्नरूप कृतिहै ॥ यिह तीनों जिस विषे रहेहैं सोईही कर्ता होवेहै ॥ जैसे कुलालादिक ता ज्ञान इच्छा प्रयत्न वाले होणेते घटादिकोंके कर्ताहैं ॥ इस प्रकारका कर्ता पणा चेतनमेंही संभवताहै मायामें संभवे नहीं ॥ यांते कर्तृत्व पद कहणेते माया विषे उक्त लक्षणकी अतिव्याप्ति नहीं ॥ किंवा ॥ जगत् कर्तृत्व इतनाहीं कहिये तौ नैयायिकोंने केवल कर्तारूप करके अंगीकार करा जो ईश्वरहै ॥ तामें उक्त लक्षणकी अतिव्याप्ति होवेगी ॥

काहेते नैयायिक प्रमाणुयोंकोंतो जगत्का उपादान मानेहैं औ ईश्वरकों जगत्का कर्ता मानेहैं औ सिद्धांतमें तो जगत्का अभिन्न निमित्त उपादान कारण मान्याहै ॥ यांते जगत् उपादानत्वं इस पदके कहणेसें नैयायिक अभिमत ईश्वरविषे अतिव्याप्ति नहीं और ❋ आकाशवत्सर्वगंत श्चनित्यः । महितोमहीयान् ❋ इत्यादि श्रुतियोंके सूत्ररूप 'पुरुष' पदका उपदेश श्रीगुरुजी करेहै । 'पद पालन पूर्णयोः' इस धातुसें पुरुष शब्द सिद्ध होवेहै चराचरं जगत् पृणाति पूरयति स पुरुषः अर्थात् सकल जगत्में पूर्ण होरहाहै ॥ इसलिये परमात्माका नाम पुरुषहै और ❋ अभयंवैजनकप्राप्तोसि ❋ इसश्रुतिके सूत्ररूप 'निर्भय' पदका उपदेश श्रीगुरुजी करे है ॥ सो ब्रह्म भयते रहित है और ❋ हृत्पुण्डरीकं विरजं विशुद्धं विचिन्त्य मध्ये विशदं विशोकम् ❋ इत्यादि श्रुतिके सूत्ररूप 'निर्वैर' पदका उपदेश श्रीगुरुजी करे है ॥ निर्वैर नाम रागद्वेष शून्यकाहै

औ श्रुतिगत 'विरज' पदसैंभी राग द्वेष शून्यकाहि ग्रहिणहैं॥ यांते पूर्वोक्त परमात्मा रागद्वेष शून्यहै अर्थात् कृतकर्मानुसार फल देणेमें पक्षपाति नहिं और ❋ ज्ञःकालकालोगुणीसर्वविद्यः❋ इसश्रुतिके सूत्ररूप 'अकाल मूर्ति' इसपदका उपदेश श्रीगुरुजी करे है॥ पुनः सो परमात्मा केसाहै॥ कालकाभी कालहै और ऐश्वर्य्यादि गुणो वालाहै और ज्ञानस्वरूपहै॥ तहां काल नाम समय औ यमका है॥ यांते समय स्वभाव वा यमयातना न होवे जिसकों सो अकाल कहियेहै॥ सोईहै मूर्ति कहिये स्वरूप जिसका सो अकाल मूर्तिहै और ❋ नतस्य कार्यं करणञ्च विद्यते ❋ इत्यादि श्रुतियोंके सूत्ररूप 'अयोनी' पदका उपदेश श्रीगुरुजी करेहै॥ वास्तवसें न कोई सो परमात्माका कार्यहै न कारणहै इसीते अयोनीहै और ❋ श्रवणायापिबहुभिर्योनलभ्यः शृण्वंतोपिबहवोयंनविदुःआश्चर्योवक्ताकुशलोऽस्यलब्धाआश्चर्योज्ञाताकुशलानुतिष्ठः ❋ इत्यादि

श्रुतियोंके सूत्ररूप 'साभं' पदका उपदेश श्रीगुरुजी करेहै ॥ 'सा' कहिये सैकड़े वृत्तियोंमें आरूढ होइके'भं'कहिये अज्ञानका भंगन करे है ॥ अर्थात् निवृत्ति करे है ॥ किम्वा 'साभं' नामसहित आभाके है अर्थात् आश्चर्यरूप है ॥ यिहवार्तागीताके द्वितीयअध्यायके उनतीसमें श्लोककरके भगवाननेभी कथनकरीहै ॥ तथाच ❀ आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदतितथैवचान्यः ॥ आश्चर्य वच्चैनमन्यः शृणोतिश्रुत्वाप्येनंवेदनचैवकश्चित् ❀ अर्थयिह ॥ हेअर्जुन कोईकपुरुष इसआत्मदेवकों आश्चर्यवत् देखताहै तथा अन्यकोईपुरुष इस आत्मदेवकों आश्चर्यवत् ही कथन करेहै तथा अन्यकोई पुरुष इस आत्मदेवकों आश्चर्यवत् श्रवण करे है तथा कोई पुरुष इस आत्मदेवकों श्रवण करकेभी नहीं जानेहै ❀ तात्पर्ययिह ॥ 'एनं' या पदकरके कथन करा जो आत्मदेवरूप कर्म है तथा 'पश्यति' या पद करके कथन करी जो दर्शनरूपक्रिया है तथा

'कश्चित्' या पद करके कथन करा जो अधिकारी पुरुषरूप कर्ताहै ॥ या तीनोंकाही 'आश्चर्य वत्' यिह विशेषणहै।।तहां हे अर्जुन यिह आत्मदेव 'आश्चर्यवत्' कहिये अद्भुत पदार्थके समानहै तथा अविद्या करके कल्पित नाना विरुद्ध धर्मोवाला प्रतीति होहै ॥ याहेतूतेही यिह आत्मदेव वास्तवते सर्वदा विद्यमान हुआभी अविद्यमान हुएकी न्यांई प्रतीति होवेहै तथा यिह आत्मदेव वास्तवते स्वप्रकाश चैतन्यरूप हुआभी जडकी न्यांई प्रतीति होवेहै तथायिह आत्म-देव वास्तवते आनंदरूप हुआभी दुखीहुएकी न्यांई प्रतीति होवेहै तथा यिह आत्मदेव वास्त-वते सर्वविकारोंतेरहित हुआभी विकारवानकी न्यांई प्रतीति होवेहै तथायिह आत्मदेव वास्त-वते नित्य हुआभी अनित्यकी न्यांई प्रतीति होवेहै तथा यिह आत्मदेव वास्तवते प्रकाशमान हुआभी अप्रकाशमानकी न्यांई प्रतीति होवेहै तथा यिह आत्मदेव वास्तवते ब्रह्मते अभिन्न

हुआभी भिन्नहुएकी न्यांई प्रतीति होवेहै तथा यिह आत्मदेव वास्तवते सर्वदा मुक्त हुआभी बद्धहुएकी न्यांई प्रतीति होवेहै तथा यिह आत्मदेव वास्तवते अद्वितीयरूप हुआभी सद्वितीयकी न्यांई प्रतीति होवेहै ॥ इसते आदि लैके अनेक प्रकारकी आश्चर्यरूपता आत्मदेवविषे प्रतीति होवेहै ॥ ऐसे आश्चर्यरूप आत्मदेवकों शमदमादिक साधन संपन्न तथा अंत्य शरीर वाला कोईक पुरुषहि गुरु शास्त्रके उपदेशते॥ अविद्यारचित सर्ब द्वैत प्रपञ्चका निषेध करके॥ परमात्म देवके स्वरूपमात्रकों विषयकरणेहारी तथा महावाक्यरूप वेदांत करके जन्य तथा सर्व पुण्यकर्मोंका फल रूप ॥ ऐसी अंतःकरणकी वृत्ति विषे साक्षात्कार करे है और सो साक्षात्काररूप दर्शनभी आश्चर्यवत् है॥काहेते सो अंतःकरणकी वृत्तिरूप साक्षात्कार॥स्वरूपते मिथ्यारूप हुआभी सत्य आत्मदेवका अभिव्यंजक है तथा सो दर्शनरूप साक्षात्कार अविद्याका कार्यरूप हुआभी

ता अविद्याकों नाशकरेहै तथा सो दर्शनरूप साक्षात्कार अविद्याका कार्य होणेते आपकोभी नाश करेहै ॥ इसते आदिलैके आश्चर्यवत्‌ता ता दर्शनरूप साक्षात्कार विषे है और ता दर्शनरूप साक्षात्कारके आधाररूप विद्वानविषेभी आश्चर्यवत्‌ताहै ॥ काहेते सो विद्वान पुरुष आत्मदेवकों साक्षात्कार करके अविद्या तत्कार्यते रहित हुआभी ॥ प्रारब्धकर्मकी विचित्रताते अज्ञानी पुरुषकी न्यांई व्यवहार करेहै तथा सो विद्वान पुरुष सर्वदा समाधिविषे स्थित हुआभी व्युत्थानकों प्राप्त होवेहै तथा सो विद्वान पुरुष व्युत्थानकों प्राप्त हुआभी पुना समाधि सुखको अनुभव करेहै ॥ इसते आदिलैके आश्चर्यवत्‌ता तादर्शनरूप साक्षात्कारके आधाररूप विद्वान पुरुष विषेहै और अज्ञानी सर्व पुरुषोते 'अन्यः' कहिये भिन्न जो ज्ञानी पुरुष है ॥ सो हेअ-र्जुन सर्व शब्दोंके अवाच्यरूप तथा जाती गुण क्रियाते रहित आत्मदेवका जो कथन करेहै ॥

सो आश्चर्यवत्‌है ॥ जिसकारणते लोकविषे जाती गुण क्रियाते विना शब्द बोधन करेनहीं ॥ किंवा ॥ सुषप्त पुरुषके उठावणेहारे वचनवत् शक्तिरूप । वा । लक्षणारूप । वा । और किसी संबन्धते विनाही जो शब्दने बोधन करनाहै ॥ सो अत्यंत आश्चर्यवत्‌है ॥ जिसकारणते शब्दका सामर्थ्य किसी पुरुषतेभी चिंतन करा जावे नहीं (शंका) शक्ति लक्षणादि संबन्धते विनाही शब्द अपणे अर्थका बोधक होवे तौ सर्व पुरुषोंकों अनाजासतेही सर्वग्यता प्राप्त हुई चाहिये ॥ काहेते सर्व शब्दोंकी शक्ति । वा । लक्षणारूप वृत्तिका ज्ञान सर्व पुरुषोंकों नहीं है (उत्तरः) यिह दोष लक्षणा पक्ष विषेभी तुल्यहीहै ॥ काहेते शक्यार्थके संबन्धका नाम लक्षणाहै ॥ सोशक्य संबन्धरूप लक्षणाभी अनेक पदार्थोंमें रहेहै ॥ यांते तिन्हो अनेक पदार्थोंका बोध होणा चाहिये ॥ जैसे 'गंगायांग्रामः' यावचनविषे जो गंगा पदहै ॥ ता गंगा पदकी तीरविषे लक्षणा होवेहै॥

तहां गंगा पदका शक्यार्थ जो जलका प्रवाहहै ॥ ता प्रवाहका जैसे तीरसें संयोग संबन्धहै ॥ तैसे मत्स्यादिक अनेक पदार्थोंसाथ संयोग संबन्धहै यद्यपि शक्यार्थका संबन्ध अनेक पदार्थोंसें होवेहै परंतु जिस अर्थमें वक्ताका तात्पर्य होवेहै ॥ तिसीही अर्थका बोध होवेहै ॥ अन्य अर्थका बोध होवे नहीं (समाधान) वक्ता पुरुषका तात्पर्यभी सर्व श्रोता पुरुषोंके प्रतिहै यद्यपि अं-तःकरणकी शुद्धिवाला कोईक पुरुषही ता तात्पर्यकों निश्चय करेहै (समाधान) अंतःकरणकी शुद्धिवाले पुरुषकों हमारे मतमेंभी ॥ शक्ति । वा । लक्षणादि संबन्धते विनाहि वक्ताके तात्पर्यके विषयका बोध होवेहै तथा हमारे शक्ति । वा । लक्षणादि संबन्धके अनंगीकार पक्ष विषे ❀ यतो वाचो निवर्तंते अप्राप्य मनसासः ❀ या श्रुतिका अर्थ संकोचतेविनाही सिद्ध हो-वेहै तथा ❀ अगृही त्वैव संबन्ध मभिधानाभिधेययोःहित्वा निद्रां प्रबुध्यंतेसुषप्तेर्बोधताः

परैः ❋ इत्यादि श्लोकों करके वार्तक कारनें भगवानका अभिप्राय लिखाहै ॥ यांते यिह अर्थ सिद्ध भया॥ वचनका विषे आत्मा तथा ता वचनका वक्ता विद्वान पुरुष तथा सावचनरूप क्रिया यिह तीनों अत्यंत आश्चर्यरूपहैं और ❋ आश्चर्य वच्चैनमन्यःश्रृणोति श्रुत्वा प्येनंवेद ❋ हेअर्जुन आत्माकों साक्षात्कार करणेहारा तथा आत्माका कथन करणेहारा जो मुक्तपुरुषहै॥ता मुक्त पुरुषते भिन्न जो मुमुक्षुजनहै सो विधिपूर्वक ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप जाइके जो इस आत्मदेवकों 'श्रृणोति' कहिये सर्ब वेदांतवाक्योंके तात्पर्यका विषयरूपकरके निश्चय करेहै॥ सोभी अत्यंत आश्चर्यवत्है और ता ब्रह्मवेत्ता गुरुके मुखते आत्मदेवका श्रवणकरके॥ जो मनन निदिध्यासनकी परिपक्कता द्वारा साक्षात्कार करणाहै सोभी आश्चर्यवत्है ॥ सो साक्षातकारकी आश्चर्यरूपता पूर्व निरूपणकर आयेहैं ❋ तात्पर्यायिह ॥ श्रवणका विषे आत्मा तथा श्रवणरूप क्रिया

तथा श्रवणकर्त्ता पुरुष यिह तीनोंही आश्चर्यरूपहैं ॥ तहां आत्माविषे तथा श्रवणरूप क्रिया विषे पूर्व उक्तही आश्चर्यरूपताहै और श्रवणकर्ता पुरुष विषे यिह आश्चर्यरूपताहै ॥ पूर्व अनेक जन्मोंविषे अनुष्ठान करे जो पुण्य कर्महैं ॥ तिन्हों करके निवृत्ति होइ गयाहै पापरूप मल जिसके अंतःकरणका तथा गुरु शास्त्रके वचनोंविषेहै अत्यंत श्रधा जिसकी ॥ऐसे उत्तम अधिकारी पुरुषकी जो इस लोकविषे दुर्लभता है ॥ सा दुर्लभताही ता श्रोता पुरुषविषे आश्चर्यरूपताहै ॥यिह वार्ता श्रीभगवान् आपही ❋ मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यततिसिद्धये ॥ यततामपिसिद्धानांकश्चिन्मांवेत्तितत्वतः ❋ या श्लोकविषे कथन करीहै और ' नचैवकश्चित् ' कहिये कोईक पुरुष ब्रह्मवेत्ता गुरूके मुखते ॥ श्रवणादिकोकों कर्ता हुआभी इस आश्चर्यरूप आतमदेवको जान सकता नहीं (ननु) ऐसा जो आश्चर्यवत् परमातम देवहै ॥ ता परमातम देवकों जो श्रवणादिकर्त्ता

हुयाभी नहीं जानेहै ॥ सो फिर कैसे जानेहै (उत्तरः) ‘गुरु प्रसाद’ नाम गुरुवोंकी क्रिपा करके प्रतिबन्धोंकी निवृत्तिद्वारा जानेहै (ननु) सो प्रतिबन्धकौनहैं (उत्तरः) सो प्रतिबन्ध भूत१ वर्तमान २ भावी ३ भेदते त्रै प्रकारके हैं ॥ तहां श्रवणादिकालविषे जो पूर्व दृष्ट पदार्थोंका वारम्वार स्मरण है ॥ सो भूत प्रतिबन्ध कहिये है और विषयासक्ति तथा बुद्धिकी मंदता औ कुतर्क तथा विपरीत अर्थ विषे दुराग्रह ॥ इन भेदनते वर्तमान प्रतिबन्ध चार प्रकारका है और जन्मादिक देनेहारा जो कोईक अदृष्ट प्रबल है ॥ सो भावी प्रतिबन्ध कहिये है (ननु) इन प्रतिबन्धोंकी निवृत्ति कैसे होवेहै (उतरः) वारम्वार स्मरणका जो विषय है ॥ ताका वारम्वारही ब्रह्मरूपत्वेन जो चिंतन है ॥ ता चिंतनसें भूत प्रतिबंधकी निवृत्ति होवेहै औ शमदमादिकोंसें विषयासक्तिरूप प्रतिबन्धकी निवृत्ति होवेहै औ षड्विध युक्तियोंसें वेदांतवा-

क्योंका अद्वितीय ब्रह्ममें तात्पर्य निश्चयरूप श्रवणसें ॥ बुद्धिकी मंदतारूप प्रतिबंधकी निवृत्ति होवे है औ श्रुति अर्थके अनुसारही मननसें कुतर्करूप प्रतिबन्धकी निवृत्ति होवेहै औ आत्माकार मनके प्रवाहरूप निदिध्यासनसें ॥ अन्यथार्थमें दुराग्रहरूप प्रतिबन्धकी निवृति होवेहै॥ औ प्रबल अदृष्टके भोगनेसें भावी प्रतिबन्धकी निवृत्ति होवेहै।इस प्रकारसें प्रतिबन्धोंकी निवृत्तिद्वारा आश्चर्यरूप आत्मदेवका साक्षात्कार तिसकोंभी होवेहै।।अथवा ❋ गुरुणांप्रसादोयस्मिन्स गुरुप्रसादः ❋ इस बहुव्रीहि समासते 'गुरुप्रसाद' यिहपद शिष्यका बोधकहै ॥ अर्थात् हे शिष्य ऐसे पूर्व उक्त परमात्म देवका तूं ' जप ' कहिये स्वात्माऽभेद रूपेण अभ्यास कर ॥ ताअभ्यासकर ही इस आश्चर्यवत् परमात्मदेवकों तूं जानेगा ॥ सो अभ्यासका प्रकार आगे चतुर्थ अध्यायमें निरूपण करेंगे ॥ पुना सो आश्चर्यवत् परमात्मदेव कैसा है ॥ तदैक्षत

बहुस्यां प्रजायेय ❋ इस सृष्टिकी इच्छाते 'आदि' कहिये पूर्व सत्यरूपहै औ 'जुगादिसच' कहिये इसीच्छाते उत्तर होणेवाले जो सत्ययुगादिकहैं ॥ तिनकी उत्पत्ति कालमेंभी सत्यहै तथा 'हैभी' कहिये अबभी अर्थात् सत्ययुग द्वापरादि युगोंमें होणेवाले जीवोंकी कर्मानुसार पालना कालमें सत्यरूपहै ॥ 'नानक होसीभीं सच' कहिये श्रीगुरु नानकदेवजी श्रीचन्द्र लक्ष्मीचन्द्र अङ्गदादि शिष्योंकों कहेहै ॥ सोपरमात्मा सर्वजगत्की सूक्ष्मरूपताकरके स्थितिकालमेंभी सत्यरूपही होवेगा ॥ ऐसे त्रैकालमें नाशते रहित ब्रह्मरूप स्वआत्माकों विस्मरण हुयेकों स्मरण करो ॥ ७३ ॥ शिष्यप्रश्नः ॥ दोहा ॥ प्रवृत्तिरूप प्रतिबन्धसें स्मरण नहिं मम होय॥ उदासीन उपदेश कर स्मरण करावों सोय ॥ ७४ ॥ टीका ॥ हे श्रीगुरो अनेकविध प्रवृत्तिरूप प्रतिवन्धकते हमारेकों विस्मरण भया जो परमात्माहै ॥ सो क्रिपाकरके उदासीन पुरुषोंकीहै स्थ-

ति जिसविषे ऐसा जो उदासीन मार्गहै ॥ ता मार्गके उपदेशद्वारा हमारेकों स्मरण करवावों ॥७४॥
गुरुरुवाच॥दोहा॥ ❋ उदासीन पथरीतिकों भाषो तोह सुरूप ॥ चित्त एकाग्र कर सुनो तुम मोसुत मंत्र अनूप ॥ ७५ ॥ ❋ आत्मन्यग्नीन्समारोप्य वेदिमध्ये स्थितो हरिं ध्यात्वा हृदित्वनुज्ञातो गुरूणा प्रैष्यमीरयेदिति ॥१॥ ❋ टीका ॥ संसारसें उदासीन होणेवाला मुमुक्षु स्वआत्माविषे अग्निका आरोप करके और हृदयविषे हरिका ध्यानकर वेदीके मध्यभागमें स्थितहोवे ॥ तदनन्तर गुरुकी आज्ञासें प्रैष्य मंत्रका उच्चारण करे ॥ १॥ ❋ अथ दण्डकमण्डलुकौपिनादिकं गृहीत्वा जलाशयं गत्वांजलिनाजलमादाय आशुः शशान् इत्यनुवाकेनाभिमंत्र्य सर्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहेति जलेएव क्षिपेत् ॥ २ ॥ ❋ टीका ॥ अथ दण्ड कमण्डलु कौपीनादिकोंकों लेकर जलके समीप जायके हाथमें जलकों लेकर ॥ शीघ्र शशान् इस अनुवाक्यसें मन्त्रत करके सम्पूर्ण देवताओंके प्रति ॥

स्वाहा इस रीतिसें उच्चारण करके जलमें जलकों क्षेपण करे ॥२॥ ❀ अद्भ्यःस्वाहा पुत्रैषणायश्च वित्तैषणायश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थितोहं स्वाहेत्यपूस्वेवापः पाणिना हुत्वा ॥ ३ ॥ ❀ टीका ॥ अद्भ्यः स्वाहा इस मन्त्रका उच्चारण करके ॥ ऐसे उच्चारण करे जो पुत्रकी इच्छासें तथा धनकी इच्छासें औ लोक इच्छासें मैं उपरामहों ॥ स्वाहा ऐसा उच्चारणकर जलमें जलकों हाथसें हवन करे ॥ ३ ॥ ❀ ततोहं उदासीना करोमीतिसंकल्प्य प्रैष्योच्चारणंकुर्यात् तद्यथा प्राङ्मुख ऊर्ध्व-बाहुस्तिष्ठन् अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा ॥ ४ ॥ ❀ टीका तिसते अनन्तर मैं उदासीन हो-यकर यिह करताहों ऐसा संकल्प करे औ प्रैष्य उच्चारण करे उच्चारण कालमें पूर्वकी तरफ मुख करे तथा ऊपर कों बाहु कर स्थित होय कर यिह कहे ॥ सम्पूर्ण प्राणियोंकों मेरेसें अभय प्राप्त हो वों ॥ पश्चात् स्वाहा इस पदक उच्चारण करे ॥ ४ ॥ ❀ अथ हंसदीक्षा ॥ ॐ ह्रीं ब्रह्माहं

सोहं सोहमस्मि परमहंसाः तत्वमसि शब्दो ॐ ॥ ५ ॥ ❋ टीका ॥ 'ॐ' शब्दका अर्थ पीछे कर आये है औ ह्रीं ब्रह्म कहिये आद्य प्रकृति मायावच्छिन्न जो ब्रह्म है॥ सो अहं कहिये मैं हूं औ सोहं सोहमस्मीति कहिये सो मैं हूं सो मैं हूं ऐसे अभ्यास करे औ परमहंसा कहिये शुद्ध तथा परमात्मास्वरूप तथा तत्वमसि और ॐम् आदि शब्दोका लक्षस्वरूप मैं हों ऐसा निश्चय करे ॥ ५ ॥ ❋ ॐ ब्रह्मनाम सहस्त्राणि विष्णुनाम शतानिच ॥ गुरुनानक नाम प्रभावेन यज्ञो-पवीतोत्तारणम् ॥ ६ ॥ ❋ टीका ॥ सहस्त्रशः ब्रह्मनामके प्रभावसें और शतशो विष्णुनामके प्र-भावसें तथा शतशः गुरुनानकनामके प्रभावसें मैं यज्ञोपवीत उत्तारण करताहों॥६॥❋ ॐ ब्रह्म-नाम प्रभावेनविष्णु सन्ध्या शतानिच ॥ दीयते मस्तके स्थानं शिखाबन्धं करोम्यहम् ॥ ७ ॥ ❋ टीका ॥ ब्रह्मनामके प्रतापसें तथा विष्णु आदिकोंके नामके प्रभावसें तथा सन्ध्यावन्दनादि

अनन्तकृतकर्म्मके प्रभावसें मस्तकमें शिखाकों बन्धन करता हों ॥७॥ ❋ उँब्रह्मपुत्रीमातङ्गी तेजोवन्ती तपस्विनी ॥ दीयते मस्तके स्थानं शिखाछेदं करोम्यहम् ॥८॥ ❋ टीका ॥ ब्रह्म जो वेद है तद प्रतिपाद्य संस्कारोसें उत्पन्न होणेसें शिखाकों ब्रह्मपुत्री कहेहैं ॥ मातङ्गी कहिये अनन्त शुभ गुणयुक्त तेजोवन्ती कहिये प्रकाशवती तपस्विनी कहिये यावत् तपश्चर्य्यामें सहायिका ऐसी जो शिखा है ॥ जिसकों मस्तकमें स्थान दिया जाता है ॥ मैं अब उसकों छेदन करताहों ॥ ८ ॥ ❋ उँ ब्रह्मपुत्री शिखात्वंहि बालरूपा तपस्विनी ॥ मस्तकेचकृतं स्थानं गच्छ देवि नमोस्तुते ॥ ९॥ ❋ टीका ॥ हे ब्रह्मपुत्री शिखे तैनें बाल्यावस्थासें लेकर ॥ हे तपस्विनी मेरे मस्तकमें स्थान करा है ॥ हे देवि अब तूं जाहु तेरेकों मेरी नमस्कार होवों ॥ ९ ॥ ❋ उँ ब्रं ब्रं ब्रं मातङ्गी स्वाहा ॥ १० ॥ ❋ टीका ॥ उँ ब्रं ब्रं ब्रं मातङ्गी स्वाहा ॥ यिह मन्त्र शिखाके हवन कालमें उच्चारण

करण॥स्वाहा अव्यय है इसका अर्थ सर्वत्र देवहविर्दानादि ग्रहैं ग्रहैं ग्रहैं ऐसा है॥१०॥❀ ॐ भूः सन्यस्तं मया ॐ भुवः सन्यस्तं मया ॐ स्वःसन्यस्तं मया ॐ भूः भुवः स्वः सन्यस्तं मयेति मन्दमध्यमोत्तम स्वरेण पठेत् ॥११॥❀ टीका ॥ भूः । भुवः । स्वः । ऊर्ध्व सप्तलोककी संज्ञा है ॥ सो संसारसें उदासीन होनेकी कामना वाला पुरुष ॥ ऐसा संकल्प करे जो मैंने भूःलोककों त्यागा तथा मैंने भुवःलोककोंभी त्यागा तथा मैंने स्वःलोककोंभी त्यागा तथा तीनोंकों एक संकल्पसें पुना मैंने त्यागा ॥ ऐसे मन्द स्वरसें तथा मध्यम स्वरसें तथा उत्तम स्वरसें उचारण करे ॥ ११ ॥ ❀ ततः शिखार्थं रक्षितान् केशान् उत्पाद्य भूःस्वाहेति भूमौ जलेवा हुत्वा तथैवचोपवीतं विसृज्य भूःस्वा हेतिजलेहुत्वा ॥ १२ ॥ ❀ टीका ॥ तिसते अनन्तर शिखाके वास्ते जो रक्षे सिरपर केश उनकों खाडकराइकर भूःस्वाहा ऐसे उचारण कर भूमिमें । वा । जलमें

हवन करके ॥ तैसेही यज्ञोपवीतकों त्यागके अर्थात् अब मैं यज्ञोपवीत नहीं ग्रहण करुंगा ऐसे दृढ निश्चय वाला होयके भूःस्वाहा ऐसे कहि कर जलमें हवन करे ॥ १२ ॥ ❋ अभयं सर्वभूतेभ्योमत्तः स्वाहेत्यभय दक्षिणादानार्थं जलाञ्जलिं क्षिपेत् ॥ १३ ॥ ❋ टीका ॥ अभय हों सर्व प्राणियोंकों मेरेसें ऐसे जीवोंकों अभय दान देणेके वास्ते॥ स्वाहा ऐसे उच्चारण करता हुआ जलकी अञ्जलि जलमें क्षेपण करे ॥ १३ ॥ ❋ अद्भ्यां कराभ्यां विहरन्नाहं वाक्कायमानसैः करिष्ये प्राणिनां पीडा पाणिनःसन्तु निर्भयः दत्वैवं सर्वभूतेभ्यः सर्वत्राभय दक्षिणां ततोविचिन्त्य धीमान सर्वात्मनि संस्थिति मिति पठित्वा महा प्रस्थानं कुर्यात् ॥१४॥❋ टीका ॥ इन जलवाले हाथोंसें व्यवहार करताहुवा मैं कायसें । वा । वाणीसें अथवा मनसें प्राणियोंकों पीडन न करुंगा ॥ मेरेसें सर्व जीव निर्भय होवें ऐसे सर्वदा काल सम्पूर्ण भूतोंकों अभयदान देयकरके

फिर आत्मस्थितिकों चिन्तन करके पुनः बुद्धिमान्सर्वात्मस्थितिकों पठन करके तदनन्तर महाप्रस्थान करे अर्थात् वनादि एकान्त अस्थलोंमें स्थिति करे ॥ १४॥ ❋उंगुरुअविनाशी खेल रचाइया ॥ अगमनिगमका पन्थ बताइया ॥ज्ञानकी गोदरी क्षिमाकी टोपी॥ यतका आड़बंद शीललंगोटी ॥१५॥ ❋ टीका ॥ दत्तजी कहेहै हेभगवन् यिह संसाररूप खेडा किसने रचाहै ॥ श्रीचंद्रजी कहेहै 'उं' कहिये प्रकासरूप सर्वकी रक्ष्याकर्ता गुरु कहिये सर्वसें उतकृष्ट अविनाशी कहिये नास पर्यंत विकारोंते रहित जो परमात्माहै ॥ तिसने यिह संसाररूप खेडारचाहै (शंका)हे भगवन् यिह आपही कहितोहों वा कोई और कहिताहै (उत्तरः) हे प्रिय यिह मै तेरेप्रति शास्त्र औ वेदका मार्ग बताइआहै अर्थात शास्त्रवेद कहिता है ॥ (पुनाशंका) हेभगवन् उदासीनके अंतर चिन्हकौनहैं (उत्तरः) ज्ञानकी गोदरीआदि स्पष्टहीहैं ॥ इत्यादि मन्त्रका अपणेमें नि-

श्रय करताहुअ सतसंगमें निवास करे ॥ काहेते सतसंगते बिना कोमल वैराग्या दिकोंकी निवृत्ति होवेहै औ वैराग्यादिकोदे निवृत्तिभया निरतसै सुखकी प्राप्ति होवे नहीं॥७५॥तथाही॥❀ दोहा ॥ उगलतही आंधो करे निगलत त्यागे प्राण ॥ जल प्रैठे सुख होतहै तैसे संगत जान ॥ ७६ ॥ कवित्त्व ॥ जीव जग जेते सभ चलत हैं भेड़ा चाल, योग्यायोग्य मन माहि रञ्च न निहारते॥ शिक्षा शून्य मन मनमुख बररात डोल, खोलत न आत्मविचार भव हारते ॥ त्याग मोक्षमारग कुमारग निसंग चले, सुत वित्त वामा हित प्राण लग वारते ॥ मानुष जन्म यिह अमोल मोल मोतनके, मूढनकों मिल्यो सोतो मूल बिन जारते ॥ ७७ ॥ सवैया ॥ द्वेष घनी जिनके बिन कारण कार्यमन्द करे मनलाई ॥ नीचन सङ्गत नीत्त करे अरु सन्त समागम मूक विलाई ॥ कामन काम न छोर सके नहिं फूलन सेज सुसार दुलाई ॥ या विधके नर नीचनकों धिक वेद पुराण

पुकार अलाई ॥ ७८ ॥ जीव जिते भव भूर भये सभ स्वारथ लाग करे हित नीको ॥ खाद्य नि-
हार मिले खगके सम पक्ष पसार कहे कुल जीको ॥ खावत गावत है यसकों नत देवत सीस
कलंक कुटीकों ॥ नीच विहार निहारसु या विध लागत सन्तनकों कुल फीको ॥७९॥ कवित्त्व ॥
नाना विध वासना ते व्याकुल जगत् जीव, सींव कैसे होय भाई पीव विन पायते ॥ काम क्रोध
लोभ यिह वात पित्त कफ कोपे, रोग क्यों दुरावे बिन औषध के खायते ॥ मन्द मति साथ जाने
प्रीतम दुराय लीनो, होय क्यों मिलाप बिन पास तांके जायते ॥ सन्त हरि रूप हरि रूप यिह
सन्त सही, कहि मानऽचल फल पावे पैठ गायते ॥ ८० ॥ दोहा ॥ कामादिक जड खाद्य है, दंभ
छलादिक नीर ॥ यम यातन वर दक्षणा, ग्राहक कई अधीर ॥८१॥ अन्नोदक सम दक्षणा, इच्छा
होय तो लेहु ॥ जो यांते उपराम मन, तौ सत्सङ्ग करेहु ॥८२॥ सवैया ॥ त्याग विवेक शमादिक या-

वत शोच बिना जिस माहि भये हैं ॥ औ श्रवणादिक चारु विचार तत्त्वं पद शोधन संग लये हैं ॥ जीवन मोक्ष फिरे भव भीतर चारु विचार सुवाक्य कहे हैं ॥ शून्य मठादि नदी तट बासक तासक कोविद सन्त कहे हैं ॥८३॥सोरठा॥ संतन संगनिवास॥आनंद प्राप्त होतहै, दुःखका बहु-भंडार, विनसंतन संसार जो ।८४।दोहा॥जीवनकों फलहै यही, संतनसंग निवास॥विनसंतनमरनो भलो, जिउहै ढाक पलास ॥८५॥ संतनका सतसंग जो, अति उत्तम है जान॥ विनाभाग मिलतो नहीं, यिह निश्चयेविद्वान ॥८६॥ प्रीती चन्द्र चकोरकी विदित निखिल संसार॥ अस सन्तन सो जो करे, भवनिधि उतरे पार ॥८७॥ साधु संग अनन्त फल, भ्रमर मूण्ड जिम सङ्ग॥ हरी हृदय शिव सीस पुर, चरण पखालत गंग ॥ ८८ ॥ क्षमा गरीबी ग्रहण कर, यथा लाभ सन्तोष ॥ मोक्ष काम नर यत्न कर, हारे सकलेदोष ॥८९॥ सोरठा । थोरेमाह विचार आपा परका डारकै ॥ गो-

विंदकों रिद धार बहुत लिखो तौभी यही ॥९०॥ कर चातुर्य विचार, भव चतुराई डारकै ॥ निन्दा स्तवन विसार' रघु पुङ्गव नन्द्यो खलैः॥ ९१ ॥ मित्र शत्रु नहि कोय, हर्ष शोक कान्ते करें॥ करे अविद्या दोय' स्वप्न तुल्य जागे नहिं ॥ ९२ ॥ दोहा ॥ भयो अविद्या नींदकर, स्वप्न रूप संसार ॥ पंच कोशसें भिन्न निज, धी जाग्रत उरधार ॥९३॥ ❁ अर्थ स्पष्ट॥ शिष्य प्रश्नः ❁ चौपाई ॥ भगवन् कोश पंचकसरूपा ॥ भाषो मोहि मिटे भ्रम कूपा ॥ कहो पुना अन्वय व्यतिरेका ॥ जिसकर लषों आतम चिति एका ॥९४॥ ❁ अर्थस्पष्ट॥ गुरुरुवाच ❁ दोहा॥ अन्नमय और प्राणमय, मनोमय मयविज्ञान ॥ आनन्दमय पुन अन्वय, व्यतिरेक शिष्य सुजान ॥ ९५॥ ❁ टीका ॥ हे शिष्य एक अन्नमय कोश है ॥ द्वितीय प्राणमय कोश है ॥ तृतीय मनोमय कोश है ॥ चतुर्थ विज्ञानमय कोश है ॥ पंचम आनंदमय कोश है ॥ तहां हे शिष्य यिह स्थूल श-

रीर अन्नमय कोश कहिये है ॥ काहेते अन्न ते स्थूल शरीरकी उत्पत्ति स्थिति होवेहै ॥ यांते अन्नमय कहियेहै औ आच्छादक होणेते कोश कहियेहै ॥ जैसे म्यानने खड्गकों आच्छादन करीताहै ॥ तैसे अन्नमय कोशने मुख्यात्मदेवकों आच्छादन कराहै ॥ काहेते चारवाकीये अन्नमय कोशकोंही आत्मा मानेहै परन्तु सो अन्नमय कोशविषे उत्पत्त्यादि हेतुते तथा जडत्वादि हेतुते आत्मरूपता संभवे नहीं तथा कृतनाश अकृताभ्यागम इन दोनों दोषोंकीभी प्राप्ति होवे है ॥ काहेते इसदेहरूप आत्माके नाशहुए॥ ता देहते भिन्न भोक्ता आत्माके अभाव होणेते ॥ ता देह कृत पुण्य पाप कर्मका फलके भोगते विनाही नाश होवेगा औ अबी नवीन उत्पन्न भया जो देहरूप आत्माहै ॥ तिसने पूर्व कोई पुण्य पापरूप कर्मतो करया नहीं औ जन्मकालते लैकर सुख दुःखरूप फलकी प्राप्तितो होवेहै ॥ सा फलकी प्राप्ति पुण्य पाप कर्मते विनाही माननी होवेगी ॥

यांते कृतनाश अकृताभ्यागम दोषोंकी प्राप्तिहै (ननु) प्रायश्चित्तादिकों करके तथा तत्व-ज्ञान करके ता पुण्य पाप कर्मका फल भोगते विनाही नाश शास्त्रोंमें कथन करा है (उत्तरः) शास्त्र उक्त प्रायश्चित्तादि उपायोंते विनाही जो फल भोगते विना कर्मोंका नाशहै ताका नाम कृत नाशहै ॥ इत्यादि दोष आनेते यिह स्थूल देह आत्मा नहीं ॥ और प्राण अपान व्यान समान उदान यिह जो पंच प्राण हैं ॥ तथा पंच जो कर्म इन्द्रिय हैं सो प्राणमय कोश कहिये है परन्तु प्राणोंकी मुख्यता होणेते प्राणमय कहिये है॥ तहां पंच-भूतोंकी मिलि हुई रजो अंशकी कार्यताही प्राणोंमें मुख्यताहै औ मुख्यात्म देवका आच्छादक होणेते कोश कहियेहै ॥ काहेते हिरण्यगर्भीये प्राणसहित कर्मइंद्रियोंकोंही आत्मा माने हैं परन्तु प्राणोंसहित कर्मइंद्रिय विषेभी उत्पत्त्यादि हेतुते कृतनाश अकृताभ्यागम दोषकी प्राप्ति होणेते

तथा जडत्वादि होणेते आत्मरूपता संभवे नहीं यद्यपि मरण जीवन प्राणोंके अधीन होनेते प्राणही चेतन आत्माहैं तद्यपि प्राण चेतनरूप आत्मा संभवे नहीं॥ काहेते प्राण पंचभूतोके रज गुणका कार्य होणेते तिन्होंमें क्रिया शक्ति है*तात्पर्ययिह॥ जैसे अश्वोंके संचारते विना स्यंदनका तथा तिसमें स्थित भूपका संचार होवे नहीं॥ तैसे प्राणरूप अश्वोंतेविना अंतःकरणादि स्यंद-नका तथा तिसमें स्थित भूपवत् चैतन्यस्वरूप आत्मदेवका संचार होवे नहीं॥ यांते प्राणोंके संचाराऽसंचारके जाननेवाला प्राणोते भिन्नहीं भूपवत् चैतन्यस्वरूप आत्मदेवहै और पंच-ज्ञान इन्द्रिय षष्टा मन यिह मनोमय कोश कहिये है॥ राजावत् मनकी मुख्यता होणेते म-नोमय कहिये है॥ अर्थात् जैसे राजाकी मुख्यता होणे ते सैना संयुक्तकोंही राजा कहेहैं॥ तैसे मनकी मुख्यता होणेते ज्ञान इन्द्रिय संयुक्त मनकोंही मनोमय कहिये है॥ तहां पंचभूतोंकी

मिली हुई सत्वांशकी कार्यताही मनमें मुख्यता है औ आछादक होणेते कोश कहिये है ॥ काहेते केईक हिरण्य गर्भीयेके अनुसारी ज्ञानेंद्रिय संयुक्त मन कोंही आत्मा मानें हैं परन्तु ज्ञानेंद्रिय संयुक्त मनविषे आत्मरूपता संभवे नहीं ॥ काहेते ज्ञानेंद्रिय प्रत्येक भूतकी सत्वांशका कार्य है तथा पंचभूतोंकी मिली हुई सत्वांशका अंतःकरण कार्य है ॥ ता अंतःकरणकी संकल्परूप वृत्ति मन होणेते मनभी कार्यहै ॥ यांते कृतनाश अकृताभ्यागम दोषोंकी प्राप्ति होणेते ज्ञानेंद्रियसंयुक्तमनविषेभी आत्मरूपता संभवे नहीं और पंच ज्ञानेंद्रिय षष्ठी बुद्धि यिह विज्ञानमय कोश ॥ अपणे हृदयविषे हे शिष्य निश्चय कर ॥ विज्ञानकी मुख्यता होणेते विज्ञानमय कहिये है ॥ तहां पंच भूतोंकी मिली हुई सत्वांशकी कार्यताही विज्ञानमें मुख्यता है औ आच्छादक होणेते कोश कहिये है ॥ काहेते बौध योगाचारादिक विज्ञानमय कोशकोंही आ-

त्मा माने हैं परन्तु विज्ञानमय कोशविषेभी आत्मरूपता संभवे नहीं ॥ काहेते प्रत्येक भूतके सत्वांशते ज्ञानेन्द्रिकी उत्पत्ति होणेते औ भूतनकी मिली हुई सत्वांशते अंतःकरणकी उत्पत्ति होणेते ॥ ताका कार्यरूप बुद्धिभी उत्पत्ति वाली है ॥ यांते कृत नाश आकृताभ्यागम दोषोंकी प्राप्ति होणेते ॥ यिह विज्ञानमय कोशभी आत्मा नहीं किंतु आत्माकी उपाधि है ❋ तात्पर्य यिह ॥ अंतःकरणकी वृत्ति दो प्रकारकी है एक निश्चयाकार वृत्ति है औ द्वितिय सुखाकार वृत्ति है ॥ निश्चयरूप वृत्तिवाला अंतःकरण बुद्धि कहि जावे है औ सोई विज्ञानमय कोश है ॥ तदुपाधिक जीवकोंही कर्ता ज्ञाता प्रमाता कहीये है और सुखाकार वृत्ति मत् अंतःकरण जीवात्माके भोक्तृत्व पणेमें उपाधि है ॥ यिह भोक्तृत्वोपाधि अज्ञान पर्यन्त आनंदमय कोश कहियेहै औ वृतिरूप आनंदका अनुभव होणेते आनंदमय कहिये है औ मुख्यात्म देवका आच्छादक होणे ते कोश

कहिये है ॥ काहे ते केईक पुरुष सुखाकार वृत्ति विशिष्ट आज्ञानकोंही आत्मा माने हैं औ केईक अज्ञान प्रतिबिंबित चेतनकोंही आत्मा कहेहैं ॥ तहां नैयायिक जडरूप आत्मा माने हैं ॥ ऐसा जड अज्ञानरूप आनंदमय कोशही है ॥ भट खद्योतवत् जड चेतन उभैरूपही आत्मा माने है ॥ ऐसा आनंदमय कोशही है ॥ काहे ते आनंदमय कोशविषे अज्ञानांश तो जड है औ अभास अंश चेतन है और अज्ञान तीन रीतिसें प्रतीत होवे है ॥ शास्त्र संस्काररहितकों जगतूरूप परिणामिकों प्राप्त हुया सत्यरूप प्रतीत होवे है औ शास्त्रसंस्कार वालेकों अनिर्वचनीय प्रतीत होवेहै औ तत्ववेत्ताकों तुच्छरूप प्रतीत होवे है ॥ ऐसे तुच्छ अज्ञानरूप आनंदमय कोशकोंही माध्यमिक आत्मा मानेहै परन्तु जडत्वादि हेतु ते आनंदमय कोशविषेभी आत्मरूपता संभवे नहीं ॥ किंवा ॥ जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति समाधि अवस्थाकों व्यभिचारी होणे

ते ॥ तिन्होमें होणेवाले तृतीय शरीररूप पंच कोशभी व्यभिचारी हैं ॥ काहेते * इन्द्रियार्थो पलब्धिर्जाग्रत * ॥ ऐसी जाग्रत् स्वप्नमें है नहीं औ * करणे षूप संहृतेषु जाग्रत् संस्का-रजः प्रत्ययः स विषयः स स्वप्नः * ऐसी स्वप्न सुषुप्तिमें है नहीं औ * बुद्धेर्कारणात्मनाऽवस्थितिः सा सुषुप्तिः * ऐसी सुषिप्ति समाधिमें है नहीं औ * ध्यातृध्यान धेय त्रिपुटि भान शून्यत्वं समा-धित्वं * ऐसी समाधि जाग्रतादिकोमें है नहीं ॥ इस प्रकारसें चारो अवस्थाकों व्यभिचारी होणेते ॥ तिन्होमें होनेवाले तृतेशरीररूप पंच कोशभ व्यभिचारीहैं ॥ याहीते मिथ्या हैं ता मिथ्या कोशनमें जो अहंता हैं ॥ यिहही कोशन साथ आत्माका अन्वयहे ॥ अर्थात् व्यष्टि स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर औ अविद्या १ तथा क्रमते उक्त तीनों शरीरोंकरके उपाहित विश्व तैजस प्राज्ञ २ तथा तिन सबौंका आधाररूप अनुपहित प्रत्येक चैतन्य ३ ॥ इन तीनोंकी तप्त लोह

पिंडकी न्यांई एकरूप करके जो प्रतीतिहै ॥ सोईही अहंपदके लक्ष्यार्थरूप जीव साक्षीका अ-
न्वयहै तथा हे शिष्य पंच कोशनमें जो ममताहैं ॥ यिहही पंच कोशनते आत्माका व्यतिरेक है॥
अर्थात् जैसे हंस पक्षी जलसें दुग्धकों न्याराकर दुग्धकों गृहण करेहै ॥ तैसे पंचकोशोंते
साक्षी आत्माकों न्यारा कर जो गृहण करनाहै ॥ सोई आत्माका व्यतिरेकहै ॥ ऐसे
तूं आपणे चित्तमें निश्चय कर ॥ ९५ ॥ ❋ तात्पर्यरूप ॥ चौपाई ॥ हौं दीर्घ दुवलो लघुश्यामा
॥ गौर वर्ण हौं अति अभि रामा ॥ हौं भूखो प्यासो वाचाला ॥ हौं गन्ता ग्राही कर ख्याला
॥ ९६ ॥ मल मूत्रादि करों मैं त्यागा ॥ शब्द सुणो मैं कर अनुरागा ॥ लेहु स्पर्श रूप रस
गन्धा ॥ करों मनोरथ निश्चय अन्धा ॥ ९७ ॥ मैं सोया अस कुछ सुघ नाहीं ॥ अहं भाव अ-
सकोशन माही ॥ यां विध अन्वय कोशनमें तात ॥ भासितहै सो कहा साक्षात ॥ ९८ ॥ लघु

दीर्घ अहे मोहि शरीरा । प्राण दुखी व्यापी तनु पीरा ॥ मम वाणी नहिं वशुगत होऊ ॥ हस्तपाद पीडित मम दोऊ ॥ ९९ ॥ मोहि उपस्थमें है अति व्याधू ॥ ममपायुमें दुःख असाधू मम मानस संकल्प करेही ॥ करण मोर अत्युच्च सुनेही ॥ १०० ॥ मम नयननसें दीखत नाहीं ॥ मम रसनामें रस न सुहाहीं ॥ गन्ध लेत मम घ्राण अनूपा ॥ त्वक् स्पर्श चाहित बहु रूपा ॥१०१॥ मम सूक्ष्म मती जानत नीती॥मम निद्रामें अधिक सुप्रीती॥यिह ममता कोशनमें नीता ॥ तांते आत्मा सदा अतीता ॥ १०२ ॥ इस प्रकारसें पंचा कोशाके निरूपणते ॥ तर गौणमिथ्या आत्माका तथा गौणमिथ्या आत्माका तथा मुख्य आत्माका निरूपण भया ॥ काहेते जामें अहंता होवे सो आत्मा होवेहै ॥ सो अहंता स्त्रीपुत्रके अन्नमयादि कोशोमें होवेहै ॥ तथा अपणे अन्नमयादि कोशोमें होवेहै ॥ तथा मुख्य आत्मामें होवेहै ॥

यांते तीनोंही आत्माहैं परन्तु स्त्रीपुत्रादिकोंके अन्नमयादि कोश तर गौण मिथ्यात्माहैं और अपणे अन्नमयादि कोश गौण मिथ्यात्माहैं ॥ काहेते स्त्री पुत्रादिकोंके अन्नमयादि कोशोंमें तर गौण प्रीतीहै औ अपणे अन्नमयादि कोशोमें गौण प्रीतीहै (ननु) स्त्री पुत्रादिकोंके अन्नमयादि कोशोंमें तर गौण प्रीती कैसेहै और अपणे अन्नमयादि कोशोंमें गौण प्रीती कैसेहै (उत्तरः) राज दंडसें तथा प्रज्वलत हुई अग्निआदिकोंसें जबी अपणे अन्नमयादि कोशोंकों नाश हुंदे यिह पुरुष देखे है॥ तबी बहुत यत्नसें बहुत दूर देशमें अपनें अन्नमयादि कोशोंकों लेजावे है॥ स्त्रीपुत्रादिकोंके अन्नमयादि कोशोंकों राजदंडसें तथा प्रज्वलत हुई अग्नि आदिकोसें नकासे नहीं ॥ यांते स्त्री पुत्रादिकोंके अन्नमयादि कोशोंमें तरगौण प्रीतिहै औ अपणे अन्नमयादि कोशोंमें गौण प्रीतिहै ॥ यांते स्त्रीपुत्रादिकोंके अन्नमयादि कोश तर गौण मिथ्यात्मा हैं औ अपणे अन्नमयादि

कोश गौण मिथ्यात्मा हैं और जो पञ्च कोशोंमें भ्रम करके अन्वयताकों प्राप्त हुयाहै तथा विचार दृष्टि करके जो व्यतिरेक कऱ्या जावैहै सो मुख्य आत्मा कहियेहै ॥ सो मुख्यात्माही सत् । १ । चित्त । २ । आनंद । ३ । ब्रह्म । ४ । स्वयंप्रकाश । ५ । द्रष्टा । ६ । उपद्रष्टा । ७ । एक । ८ । अनंत । ९ । अखंड । १० । असंग । ११ । अद्वितीय । १२ । अजन्मा । १३ । निर्विकार । १४ । निराकार । १५ । अव्यक्त । १६ । अव्यय । १७ । अक्षर । १८ । अहं त्वं आदि पदोंका लक्ष्य । १९ । कूटस्थ । २० । साक्षी । २१ । प्रत्यग् । २२ । इत्यादिक पदोंका अर्थ रूपहै ॥ काहेते जाकी ज्ञानसें । वा । और किसीसें निवृत्ति होवे नहीं ॥ सो सत् कहियेहै ॥ आत्माकी ज्ञानसें । वा । और किसी कारणसें किसी प्रकारसेंभी निवृत्ति होवे नहीं ॥ यांते मुख्यात्मा सत्स्वरूप है और अलुप्त प्रकाशकों चित् कहियेहै ॥ आत्मरूप प्रकाशका किसी कालमेंभी लोप होवे नहीं ॥

यांते आत्मा चित्स्वरूप है और जो परम प्रेमका विषय होवे सो आनंद कहियेहै ॥ आत्माते भि-
न्नमें जो प्रीतिहै सोभी आत्मा अर्थही प्रीतिहै॥ यांते आत्माही परम प्रेमका विषयहै ॥ तांते आ-
त्मा आनंदरूपहै और आत्मा ब्रह्महै ॥ काहेते ब्रह्म नाम व्यापककाहै ॥ जाका देशते अन्त न
होवे सो व्यापक कहियेहै ॥ आत्माका देशते अन्तहोवे तौ जाका देशते अन्त होवे ताका काल
तेभी अन्त होवेहै ॥ जाका देश कालसें अन्त होवे सो अनित्य होवेहै ॥ यांते आत्माभी देश
कालके अन्तवाला होणेते अनित्य होवेगा ॥ सो आत्माकी अनित्यता ❁ आकाशवतसर्वगतश्च
नित्यः ❁ इत्यादिश्रुतिसाथ विरोध होनेते सम्भवे नहीं ॥ यांते आत्माब्रह्महै और जो दी-
पककी न्यांई अपणे प्रकाशविषे अन्यकी अपेक्षा करे नहीं औ आप सर्वका प्रकाशक
होवे सो स्वयंप्रकाश कहियेहै । वा । अवेद्य हुया अर्थात् सर्व ज्ञानोंका अविषय हुया जो अ-

परोक्ष होवे सो स्वयंप्रकाश कहियेहै ॥ ऐसा सर्व ज्ञानोंका अविषय हुया अपरोक्षरूप आत्माही-
है ॥ यांते आत्मा स्वयंप्रकाशहै और जो देखनेवाला होवे सो द्रष्टा कहियेहै ॥ आत्मा यांते
सर्व दृश्यका जाननेवाला है तांते आत्मा द्रष्टा है और जैसे यज्ञशाला विषे यज्ञकार्यके करणे-
वाले पंचदश ऋत्विज होवे है औ षोडशवा यजमान् होवे है औ सतारवी यजमानकी स्त्री
होवे है और अठारवा उपद्रष्टा पास देखनेवाला होवे है ॥ सो कछुभी कार्य करता नहीं ॥ तै-
से स्थूलदेहरूप यज्ञशाला विषे पांच ज्ञानेन्द्रिय तथा पांच कर्मेन्द्रिय तथा पांच प्राण यिह
पन्द्रां ऋत्विज हैं ॥ सोलवां मनरूप यजमान है औ सतरावी बुद्धिरूप यजमानकी स्त्री है॥यिह
सर्व अपणे अपणे विषयका ग्रहण करनारूप भोगमय यज्ञकार्य करते हैं औ इन सर्वका
समीपवर्ती जाननेवाला आत्मा अठारवां उपद्रष्टा है और आत्माका सजाति और आत्मा

नहीं होनेते आत्मा एकहै और आत्मा अनंतहै काहेते जो देशकाल वस्तुके अंतते रहित होवे सो अनंत कहियेहै ॥ आत्मा व्यापक होनेते आत्माका देशते अंत नहीं औ आत्मा नित्य होनेते आत्माका कालतेभी अंत नहीं औ आत्मा सर्व स्वरूप होनेते आत्माका वस्तुतेभी अंत नहीं॥ देशकाल वस्तुके अंतते रहित होणेतेही आत्मा अनंतहै और आत्मा अखण्डहै ॥ काहेते आत्मा निरवयव होणेते ताका शस्त्रादिक छेदनरूप खण्डन करें नहीं॥यिह वार्ता श्रीकृष्ण भगवान्नेभी गीताके द्वितीय अध्यायके त्रिविंशति श्लोककरके ❋ नैनं छिन्दंति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ॥ नचैनं क्लेदयंत्यापो नशोषयति मारुतः ❋ ऐसे कथन करीहैं ॥ यांते आत्मा अखण्ड स्वरूपहै । वा । पांच प्रकारके भेदते रहित होणेते आत्मा अखण्डहै । वा । सजातीय विजातीय स्वगत भेदते रहित होणेते आत्मा अखण्डहै और आत्मा असंगहै काहेते संग नाम संबन्धका

है ॥ सो संबन्ध सजातीय विजातीय स्वगतसें होवेहै ॥ अपनी जातीवालेसें जो संबन्धहै सो सजातीय संबन्ध कहियेहै ॥ जैसे ब्राह्मणका अन्य ब्राह्मणसें संबन्धहै औ भिन्न जातिवालेसें जो संबन्ध है ॥ सो विजातीय संबन्ध कहियेहै ॥ जैसे ब्राह्मणका वैश्यादिकोंसें संबन्धहै औ अपने अवयवनसें जो संबन्ध है सो स्वगत संबन्ध कहिये है ॥ जैसे ब्राह्मणका अपने हस्त पाद मस्तकसें संबन्ध है औ चेतनरूप आत्मा एक होणेते सजातिसें आत्माका संबन्ध नहीं यद्यपि ब्रह्मा विष्णु आदि सजाति है तथापि ब्रह्मा विष्णु आदिक मायारूप उपाधिकरके कल्पित होणेते मिथ्या हैं ॥ यांते तिन्होंसेंभी सजातीय संबन्ध संभवे नहीं औ अनात्माकों मरीची जलवत् अलीक होणेते विजातिसेंभी आत्माका संबंध संभवे नहीं औ निरवयव होणेते आत्माका स्वगतसेंभी संबन्ध संभवे नहीं ॥ यांते आत्मा असंग है और आत्मा अद्वितीय है

काहेते नामरूपप्रपंचकों गन्धर्व नगरकी न्यांई कल्पित होणेते द्वैतरहित अद्वितीय है और आ-
त्मा अजन्मा है काहेते स्थूल देहका धर्म्म जन्महै ॥ सूक्ष्मदेहका धर्म्मभी जन्म नहीं तौ आ-
त्माका जन्म कैसे होवेगा औ दुराग्रहसें आत्माका जन्म माने तौ आत्माका मरणभी मानना
होवेगा ॥ यांते जन्म मरणवाला होणेते आत्मा अनित्य होवेगा औ आत्माकी अनित्यता पर-
लोक वादियोंकों अनिष्ट है ॥ काहेते कृतनाश अकृताभ्यागम यिह दोष प्राप्त होवे है ॥ यांते
आतमा अजन्मा है और आत्मा निर्विकार है काहेते जैसे घटके जन्म । १ । अस्तिपणा अ-
र्थात् प्रगटता । २ । वृद्धि । ३ । विपरिणाम । ४ । अपक्षय । ५ । विनाश । ६ । यिह षट्
धर्म्म है परन्तु घट विषे स्थिति घटते भिन्न जो घटाकाश है तिसके धर्म्म नहीं ॥ तैसे स्थूल
देहके जन्म । १ । अस्तिपणा । २ । वृद्धि । ३ । विपरिणाम । ४ । अपक्षय । ५ । विनाश । ६ ।

यिह षट् धर्म्म है परन्तु देहविषे स्थित देहते भिन्न जो आत्मा है ताके यिह षट् धर्म्म नहीं॥ यांते आत्मा निर्विकार है औ आत्मा निरवयव होणेते निराकार है और आत्मा अव्यय है काहेते जैसे कोठेमें ब्रीहिके पावणे काढणेसें ब्रीहिका बढणा घटणारूप व्यय होवे है ॥ तैसे आत्माका बढणा घटणारूप व्यय होवे नहीं ॥ यांते आत्मा अव्यय है और आत्मा अक्षर है काहेते क्षर नाम नाशका है औ आत्मा क्षररूप नाशते रहित होणेते आत्मा अक्षर है औ याही कों अक्षय अमृत अविनाशीभी कहेहैं और जो अहं त्वं आदि पदोंमें लक्षणा करके लखीए सो अहंत्वं आदि पदोंका लक्ष्य कहियेहै ॥ सो अहंत्वं आदि पदोंमें लक्षणा आगे निरूपण करेंगे और जो विकारों ते रहित होकर अहरनकी न्यांई स्थित होवे सो कूटस्थ कहिये है । वा । तृणाका समुदायरूप जो रूडी है ॥ ताकी न्यांई असाररूप साभास बुद्धिमें जो विकारोते रहित होकर

स्थित होवे सो कूटस्थ कहिये है और जो राग द्वेषते रहित हुया तथा चेतन हुया तथा समीप-
वर्ति हुया सम्यक्शक्तिके ज्ञानवाला होवे सो साक्षी कहिये है ॥ चेतन होवे तथा समीपवर्ति
होवे इतनाहीं कहिये तौ दो पुरुष विवाद करद्योंके पास जो राग द्वेषवाला पुरुष है सोभी
साक्षी कह्या चाहीये ॥ काहेते सो रागद्वेषवाला पुरुष चेतन तथा समीपवर्ति है ॥ यांते उदा-
सीनपद कह्या औ उदासीन हुआ समीपवर्ति होवे इतनाहीं कहिये तौ दो पुरुष विवाद क-
रद्योंके पास जो वृक्षादिक जड़ पदार्थ हैं सोभी साक्षी हुए चाहीये ॥ काहेते सो वृक्षादिक राग-
द्वेषते उदासीन हुए विवाद करनेवाले पुरुषोंके समीपवर्ति हैं ॥ यांते चेतन पद कह्या औ उदा-
सीन हुया चेतन होवे इतनाहीं कहिये तौ दो पुरुषोंके विवादका जो देश है ॥ता देशते भिन्न देशमें
रहनेवाला जो उदासी चेतन पुरुषहै सोभी साक्षी कह्या चाहीये ॥ काहेते जो भिन्न देशमें रहने-

त्रि० ॥८७॥

वाला पुरुष है सो रागद्वेषते रहित हुया चेतन है॥ यांते समीप पद कह्या औ उदासीन चेतन समीपवर्ति होवे इतनाहीं कहिये तौ दो पुरुषोंके विवादवाले देशमें ऐसे बालक आदिकभी हैं॥ यांते सम्यक् ज्ञातृत्व शक्ति मत पद कह्या॥ तैसे सिद्धान्तमें लक्षणका समन्वय करे हैं॥ चेतन हुआ समीपवर्ति होवे इतनाहीं कहिये तौ साभास बुद्धिकोंभी साक्षी कह्याचाहिये॥ काहेते साभास बुद्धि चेतन हुई समीपवर्तिहै॥ यांते उदासीन पद कह्या औ उदासीन हुया समीपवर्ति होवे इतनाहीं कहिये तौ प्राणउदासीन हुए समीपवर्तिहैं॥ यांते चेतनपद कह्या औ उदासीनहुया चेतन होवे इतनाहीं कहिये तौ उदासीनहुया चेतनरूप शुद्धब्रह्मभीहै परन्तु सो शुद्धब्रह्म समीप तथा दूरभावते रहित होणेते साक्षी सम्भवे नहीं यद्यपि व्यापक होणेते शुद्धब्रह्मभी समीपवर्तिहै तथापि सम्यक् शक्ति ज्ञातृत्वमतता अन्तःकरण उपहितमेंहीहै शुद्धमें नहीं

और जो अन्नमयादि कोशोंके भीतर होवे सो प्रत्यग् कहियेहै । वा । सर्ववृत्तियोंकों जो प्रकाशे है सो प्रत्यग् कहिये है । वा । उलटा हुया जो प्रकाशेहै अर्थात सत चित् आनन्दरूप हुया जो असत्य जड़ दुःखरूप संघातकों प्रकाशेहै सो प्रत्यग् कहियेहै॥इस प्रकारसें पंचाकोशांके निरूपण ते तरगौण मिथ्यात्मा तथा गौण मिथ्यात्मारूप अहंपद वाच्यार्थका निरूपण भया तथा अन्वय-व्यतिरेक निरूपणते अहंपद लक्ष्य कूटस्थ साक्षी प्रत्यग्रूप मुख्यात्माका निरूपण भया॥१०२॥ दोहा॥ यद्यपि वेद बखानतभि, न्यायअरुदतीमान॥ अहंपदको बहुलक्षही, साक्षी सर्वको जान॥ १०३॥ दोहा॥ श्रुतिगण गावत जासगुण, सुरगण करत प्रणाम॥ सश्रीगुरु नानकं सदा, प्रणवौं आठो याम॥१०४॥इतिश्री मदुदासीनवर्य्य विरक्त शिरोऽबतंस श्री६ ब्रह्मकृष्ण पाद पथोज प्रे-ष्येण कुशलदासेन कृता विचाररत्नावलिः अहंपदवाच्य लक्ष्यार्थ निरणयोनाम प्रथमोनिवासः॥१

श्रीगणेशायनमः ॥ १ ॐ सत्यगुरुप्रसाद ॥ ॥ सवैया ॥ भूत परेत पिशाच निशाचर केतक पूजतहैं नरभूले ॥ पावक पाहिन पादप पूज असी खर पाद पखार अकूले ॥ व्यापकहै जगदीश्वर यद्यपि सीञ्चत शाख तरू तज मूले ॥ चेतन जो गुरु नानक नीत विनीत सदा सुख तां हम झूले ॥ १ ॥ दोहा ॥ हारक जन त्रय तापके, कारक जो भव पार ॥ तारक तरणी पाद गुरु, नानक नीत जुहार ॥ २ ॥ दोहा ॥ शक्ति प्रतिबिम्व बिम्ब युत, ईशसु मनमें मान ॥ सर्व कारण श्रुति कहे, साक्षी सर्व पुन जान ॥ ३ ॥ टीका ॥ हे शिष्य जैसे जलपूरत मेघ तथा मेघोंमें प्रतिबिम्ब तथा प्रतिबिम्बका अधिष्ठानरूप आकाश इन तीनोंके समुदायकों मेघाकाश कहियेहै॥तैसे जो अनादि तथा भावरूप तथा साक्षात् ज्ञान करके निवृत्ति होवे सो अज्ञान कहिये है ॥ तहां अनादि अज्ञान इतनाहीं कहिये तौ ऐसा प्रागऽभावभी है ॥ यांते भाव कह्या ॥ भाव

अज्ञानं इतनाहीं कहिये तौ ऐसे घटादिकभीहैं ॥ यांते अनादि कह्या ॥ अनादि भावं इतनाहीं कहिये तौ ऐसा ब्रह्मभीहै ॥ यांते ज्ञान निवृतत्वं ऐसे कह्या ॥ अनादि भाव ज्ञान निवृतत्वं इतना-हीं कहिये तौ ऐसा चेतन साथ मायाका सम्बन्धभी है ॥ यांते साक्षात ज्ञान निवृतत्वं ऐसेकह्या ॥ ऐसा जो सदऽसतद्विलक्षण नानाशक्तियोंवाला अज्ञान तथा ता अज्ञानमें चेतनका जो प्रतिबिम्ब तथा प्रतिबिम्बका अधिष्ठान जो चेतन ॥ इन तीनोंके समुदायकों ईश्वर मनविषे निश्चय कर ॥ (ननु) रूपवान वस्तुकाही प्रतिबिम्ब होवेहै औ रूपरहितका प्रतिबिम्ब होवे नहीं औ ब्रह्म रूपादिक गुणोंते रहित होणेते ॥ ताकाभी प्रतिबिम्ब सम्भवे नहीं और जु ऐसे कथन करों जैसे रूपरहित आकाशका प्रतिबिम्ब होवे है ॥ तैसे रूपरहित ब्रह्मकाभी प्रतिबिम्ब होवेहै ॥ यिह कथनभी सम्भवे नहीं ॥ काहेते आकाशके आश्रित जो अभ्र नक्षत्र आदिक रूपवान पदार्थहैं ॥

तिन्होंकाही प्रतिबिम्ब होवे है औ आकाशका प्रतिबिम्ब होवैं नहीं औ आकाशका प्रतिविंब है यिह जो अनुभव होवे है॥ सो भ्रमरूप होणे ते वाधत है॥यांते बिम्ब प्रतिबिम्ब भेदते ब्रह्मका जीव ईश्वररूप करके ॥ जो भेद कथन करा है सो सम्भवे नहीं (उत्तरः) रूपवान वस्तुकाही प्रतिबिम्ब होवे है॥ या प्रकारका सर्वत्र नियम सम्भवे नहीं॥ काहेते केईक अस्तलमें रूपरहित वस्तुकाभी प्रतिबिम्ब देखनेमें आवे है॥ जैसे रूपादिक गुण रूपरहित होवे है तौभी जपाकुसुमादिकोंके लोहतादि रूपोंका स्फटिकादिकोंविषे प्रतिबिम्ब प्रत्यक्ष देखनेविषे आवे हैं यद्यपि रूपरहित द्रव्यका प्रतिबिम्ब होवे नहीं तथापि विचारसें देखिये तौ रूपरहित द्रव्यकाभी प्रतिबिम्ब होवे है॥ काहेते जैसे रूपरहित आकाश द्रव्यका प्रतिबिंब होवेहै ❀ तात्पर्ययिह ॥ जैसे बाह्य आकाश नीलतावाला तथा विशालतावाला प्रतीति होवे है॥ तैसे कूप तडागादि-

कोंके स्वल्प जलोंविषेभी सो नीलता विशालतावाला आकाश प्रतीति होवे है ॥ यांते ता जलविषे भासमान जो आकाश ॥ सो बाह्य आकाशका प्रतिविम्बही मानना उचित है औ आकाशका प्रतिबिम्बहै ॥ यिह सर्व लोकोंके अनुभवकों भ्रमरूपताभी सम्भवे नहीं ॥काहेते जैसे नेदं रजतं इस विरोधी ज्ञानके हुए ही ॥ शुक्तिविषे इदं रजतं इस अनुभवकों भ्रमरूपता होवे है॥तैसे यिह आकाशका प्रतिबिम्ब नहीं है॥या प्रकारका विरोधी ज्ञान होवे नहीं ॥ यांते उक्त अनुभव भ्रमरूप नहीं॥इस प्रकार रूपरहित आकाश रूपद्रव्यके प्रतिबिम्बके सिद्ध हुए॥ ता बिम्ब प्रतिबिम्ब भेद करके सो जीव ईश्वरविभाग सम्भवे है औ यथा कथंचित्तरूप रहित द्रव्यका प्रतिबिम्ब नहींभी सम्भवे तौभी सिद्धान्तकी क्षिति नहीं॥काहेते गुणके आश्रयकों तथा समवायि कारणकोंही द्रव्य मान्याहै औ ❋साक्षी चेताकेवलोनिर्गुणश्च❋इत्यादि श्रुतिने ब्रह्मकों निर्गुण कह्याहै ॥ यांते

ता ब्रह्मकों गुणोंका आश्रयपणा सम्भवता नहीं तथा समवायके अनङ्गीकारते ब्रह्मकों समबायि कारणताभी सम्भवे नहीं ॥ यांते रूपरहित रूपादिक गुणोंकी न्यांई ता ब्रह्मका प्रतिबिम्ब माननेविषे कोईभी बाधक नहीं यांते बिम्बप्रतिबिम्ब भेदकरके सो जीव ईश्वरविभाग सम्भवेहै ॥ और ता अज्ञानरूप अविद्यामें जो चैतन्यका प्रतिबिम्बहै ॥ सो तो जीव कह्या जावे है औ बिम्ब ईश्वर कह्या जावेहै ॥ तथा च ॥ श्लोक ॥ ❀ बिम्बत्वं प्रतिबिम्बत्वं यथा पूष्णिचकल्पतं जीवत्वमीश्वरत्वंचतथा ब्रह्मणिकल्पतं ❀ अर्थयिह ॥ जैसे सूर्यविषे बिम्बपणा तथा प्रतिबिम्बपणा कल्पितहै ॥ तैसे ब्रह्मविषे प्रतिबिम्बत्व बिम्बत्वरूप जीव ईश्वरपणा कल्पित है औ स्वरूपसें बिम्ब प्रतिबिम्ब कल्पित नहीं ॥ ❀ तात्पर्ययिह ॥ प्रमातृरूपजीवा भास्य नाना होणेते स्वप्न जीवाभास्यवत् बन्ध मोक्षादि सर्व व्यवस्था सम्भवे है औ वास्तव जीव बन्ध मोक्षादि

सर्व कल्पिणाशून है और जैसे अनेक वृक्षोंका जो समूह हैसो समष्टिबन कह्याजावे है औ प्र-
त्येक वृक्ष व्यष्टिबन कह्या जावे है ॥ तैसे नाना अज्ञानोंका जो समूह है ॥ सोतो समष्टि अज्ञान
कह्याजावे है ॥ तहां ता समष्टि अज्ञान उपहित चैतन्यतो ईश्वरकह्या जावे है औ व्यष्टि अज्ञा-
न उपहित चैतन्य जीव कह्या जावेहै ॥ सो अज्ञान नानाहोणेते जीवभी नानाहैं ❋ तात्पर्ययि-
ह ॥ श्रुति स्मृतिविषे शुक वामदेवादिकोंका मोक्ष कथन कऱ्या है औ अस्मदादिक जीवोंकों
इदानी कालविषे संसारकी प्रतीति होवे हैं तथा प्रत्येक पुरुषविषे अहं अज्ञः न जानामि या
प्रकारका भिन्न भिन्न अज्ञान विषयक अनुभवभी होवे है तथा ❋ इन्द्रो माया भिः पुरु रूपई-
यते❋अर्थयिह॥'इन्द्रो'कहिये इन्द्र जुहैं सोभी'मायाभिः' कहिये नाना मायाकर है औ नाना मा-
या करकेही 'पुरुरूप ईयते' कहिये परमेश्वर नानारूप धारेहै ॥ इसरीतिसें इस श्रुतिविषेभी

ता मायारूप अज्ञानका नानापणाही कथन कऱ्या है यद्यपि इस श्रुतिमें माया पदकी शक्तियों-
में । वा । गुणोमें स्वशक्यतादात्म्य संबन्ध रूपअजहत लक्षणाहै तथापि इसमें कोई प्रमाण न-
हीं ॥ यांते सो अज्ञानहि नाना मानने उचित हैं यद्यपि ❀ अजामेकां ❀ इत्यादिकश्रुतियोंने अ-
ज्ञानका एकपणा कथन कऱ्याहै तथापि सो अज्ञान समूहके एकत्वपणेकों लेकर कथन कऱ्या
है।यांते ता श्रुति वचनोकाभी विरोध नहीं ॥ इस प्रकार अज्ञानके नानात्व करके जीवके ना-
नात्व सिद्ध हुए ॥ जिस जीवकों ब्रह्म साक्षात्कार होवे है ॥ तिस जीवकोंही अपणे अज्ञानकी
निवृतिरूप मोक्ष होवे है औ ब्रह्म साक्षात्कारते रहित पुरुषोंकों अपणे अपणे अज्ञान वशते सं-
साररूप बंधही रहेहै॥इस प्रकारते बंध मोक्ष व्यवस्थाभी इस नानाजीव पक्षविषे भली प्रकारते
संभवे है औ ता एक अज्ञान एक जीव पक्षविषे सा बंधमोक्षकी व्यवस्था सम्भवती नहीं

(शंका) अज्ञानके भेद करके जीवोका भेद अंगीकार करोंगे तौ जीव जीवके प्रति प्रपंचकाभी भेदही होवेगा औ जो कहों इष्टापति है तौ जो घट तुमनें अनुभव कर्‍याहे ॥ सोईही घट मैनें अनुभव कर्‍या है ॥ या प्रकारकी घटादिक प्रपंचकी एकताकों विषय करणेहारी प्रत्यभिज्ञा है ताका विरोध प्राप्त होवेगा ॥ जिस कारणते अन्यके अज्ञान कल्पित प्रपंचका अन्यकों अनुभव होवे नहीं औ बाधकके अभाव हुये ता प्रत्यभिज्ञाकों भ्रमरूपताभी संभवती नहीं औ एकही परमेश्वर सर्व जगत्के उत्पत्ति स्थिति लयका कारणहै ॥ इस सर्व शास्त्रके सिद्धांत साथभी विरोध होवेगा यद्यपि अज्ञान उपहित चैतन्यरूप ईश्वर करके रच्या होणेते यिह प्रपंच साधारण है तद्यपि अनिर्मोक्ष प्रसंग होवेगा काहेते निर्गुण ब्रह्मभावकी प्राप्तिका नाम मोक्षहै औ नाना अज्ञानपक्षविषे एक जीवके तत्वज्ञानकरके एक अज्ञानके निवृत्त हुएभी तिन सर्व अज्ञानों-

की निवृत्ति नहीं होवेगी औ अज्ञानोंके विद्यमान हुए ईश्वरका तथा जगत्‌काभी बाध नहीं होवेगा औ ता ईश्वर जगत्‌के विद्यमान हुए ता ब्रह्मविषे निर्गुणपणाभी संभवता नहीं ॥ याते सो निर्गुण ब्रह्मकी प्राप्तिरूप मोक्ष किसीभी जीवकों नहीं होवेगा ॥ किंवा ॥ सिद्धांतविषे अद्वितीय ब्रह्मके ज्ञानतेही मोक्ष मान्याहै ॥ सो अद्वितीय ब्रह्मकाज्ञान ता नाना जीव पक्षविषे संभवता नहीं ॥ जिस कारणते ता ज्ञान कालविषेभी ता मुक्त पुरुषोंते भिन्न दूसरे जीव तथा ईश्वर तथा अज्ञान तथा जगत् विद्यमान होणेते सो ब्रह्म सद्वितीयहीहै ॥ या कारणतेभी किसी जीवका मोक्ष नहीं होवेगा ॥ किंवा ॥ यथाकथंचित्त ज्ञानते मोक्षभी होवों ॥ तौभी सगुणरूपकी प्राप्तिरूपही मोक्ष सिद्ध होवेगा ॥ निर्गुण ब्रह्मकी प्राप्तिरूप मोक्ष नहीं होवेगा ॥ सो अत्यंत अनिष्ट है काहेते ❀ अनंतरोऽबाह्यः कृत्स्नः प्रज्ञानघन एव ❀ इत्यादिक श्रुतियोंविषे निर्गुण ब्रह्मकी

प्राप्तिकोही मोक्षरूप कह्याहै ॥ तिन सर्व श्रुतियों साथ विरोध होवेगा ॥ यांते नाना अज्ञानकों अंगीकार करके नाना जीव मानणे अयुक्त हैं (उत्तरः) अज्ञानके भेद करके जीवोंका भेद अवश्य मानना उचत है ॥ अन्यथा बंध मोक्ष शास्त्रकों अप्रमाणताही होवेगी औ इस नाना जीव पक्षविषे पूर्व कथन करा जो प्रत्येक जीवके प्रति प्रपंचका भेद ॥ सो हमारेकों अंगीकारहीहै ॥ अर्थात् जीव जीवके प्रति सो प्रपंच भिन्न भिन्नही है औ प्रपंचके नानापणेविषे जो पूर्व प्रत्यभिज्ञाका विरोध कह्या सोभी संभवता नहीं ॥ जिस कारणते सा प्रत्यभिज्ञा भ्रमरूपही है ॥ काहेते जहां एकही शुक्तिविषे दश पुरुषोंकों रजतका भ्रम होवेहै ॥ तहां प्रत्येक पुरुषके अज्ञान करके कल्पित जो रजत सो भिन्न भिन्नही होवे है ॥ सो एक रजत होवे नहीं औ दश पुरुषोंके भ्रमका एकही रजतविषय होवे तौ एक पुरुषकों ता शुक्तिरूप अधिष्ठानके ज्ञानकरके ता रजत भ्रमके

निवृत्त हुए ॥ ता अधिष्ठान ज्ञानते रहित दूसरे पुरुषोंकों सो रजत प्रतीत नहीं होणा चाहिये औ दूसरे पुरुषोंकोंभी सो रजततो प्रतीत होवे है ॥ यांते सो रजत एक नहीं किंतु तिन दश पुरुषोंके प्रत्येक अज्ञान करके कल्पित दश रजत तहां उत्पन्न होवे है यद्यपि एक पुरुषके अज्ञान करके कल्पित रजतका अन्य पुरुषकों प्रत्यक्ष होता नहीं तद्यपि तिन दश पुरुषोंकों काल पायके जो रजत तुमने अनुभव करचा था ॥ सोईही रजत हमनेभी अनुभव करचा है ॥ या प्रकारकी भ्रमरूप प्रत्यभिज्ञा उत्पन्न होवे है ॥ तैसे प्रसंग विषेभी प्रत्येक जीवके अज्ञान कल्पित प्रपंचके भेद हुएभी तथा अन्यके अज्ञान कल्पित प्रपंचका अन्यकों अप्रत्यक्ष हुएभी जो घट तुमने अनुभव करचा है ॥ सोईही घट हमनेभी अनुभव करचा है ॥ या प्रकारकी भ्रमरूप प्रत्यभिज्ञा संभवे है ॥ यांते जीव जीव प्रति प्रपंचके भेद मानणे विषे ता प्रत्यभिज्ञा-

का विरोध होवे नहीं ॥।वा। तिन जीवोंके नाना हुएभी समष्टि अज्ञान उपहित चेतन्यरूप ईश्वर करके॥ रचित यिह प्रपंच तिन सर्व जीवोंके प्रति एकही साधारण है॥ यांते ता पूर्व उक्त प्रत्यभिज्ञाकाभी विरोध नहीं तथा एकही परमेश्वर सर्व जगत्के उत्पत्ति स्थिति लयका कारण है॥ इस सर्व सिद्धांतकाभी विरोध नहीं ॥ तथा जीव जीव प्रति प्रपंचके भेद मा-नणे विषे॥ जो कल्पिणारूप गौर्व दोष प्राप्त होता था॥सोभी प्राप्त होवे नहीं औ श्रुति आचार्यके प्रसादते उत्पन्न भया जो अहं ब्रह्मास्मि या प्रकारका ब्रह्मज्ञान है॥ ता ब्रह्मज्ञान करके इस अधिकारी पुरुषकों ॥ अपणे अपणे अज्ञानके निवृत्त हुए ॥ तिस अज्ञानके कार्यभूत लिंग शरीरादिकोंकी निवृत्तिते ॥ निर्गुण ब्रह्म भावकी प्राप्तिरूप मोक्षभी सम्भवे है (शंका) ता नाना जीव पक्षविषे ता मुक्त पुरुषते भिन्न दूसरे जीव तथा ईश्वर तथा जगत् वियमानही

हैं ॥ यांते मै मुक्त हूं अन्य जीव बद्ध हैं ॥ यिह अन्य प्रपंच है यिह अन्य ईश्वर है ॥ या प्रकारकी भेददृष्टि तापुरुषकों अवश्य करके होवेगी ॥ ता भेद दृष्टिके विद्यमान हुए अद्वितीय ब्रह्मका साक्षात्कारही नहीं होवेगा ॥ ता साक्षात्कारकेअभाव हुए निर्गुणब्रह्मभावकी प्राप्तिरूप मोक्षही संभवता नहीं (उत्तरः) ❋ इदं सर्वं यदयमात्मावाचाऽऽरंभणंविकारो नामधेयं ॥ माया मात्र मिदंद्वैतमद्वैतं परमार्थतः ❋ इत्यादिक श्रुतियोंके विचार करके ता अधिकारी पुरुष ने ॥ अज्ञानादि सर्व जड प्रपंचका ब्रह्मविषे कल्पितपणा निश्चय करके मिथ्यापणाही निश्चय करा है सो मिथ्या वस्तु द्वैतभावकों करता नहीं ॥ यांते ता अधिकारी पुरुषकों अद्वितीय ब्रह्मका साक्षात्कार संभवे है ॥ ता साक्षात्कार करके तिस विद्वान पुरुषकों ब्रह्मभावकी प्राप्तिरूप मोक्ष संभवे है (शंका) इस नाना जीव पक्षविषे आत्मज्ञान करके अपणे अज्ञानकी

निवृत्ति हुएभी अन्य जीवोंके अज्ञानके विद्यमान हुए ब्रह्मविषे ईश्वरपणेकी निवृत्ति नहीं होवेगी ॥ यांते इस पुरुषकों ज्ञान करके सगुण ब्रह्मभावकी प्राप्तिहि होवेगी (समाधान) लोक विषेभी अन्य वस्तुके ज्ञान ते अन्य वस्तुकी प्राप्ति होती नहीं ॥ काहेते जैसे शुक्तिके ज्ञान ते रजतकी प्राप्ति होवे नहीं ॥ तैसे गुरु शास्त्रके उपदेश ते इस अधिकारी पुरुषकों निर्गुणब्रह्मका ही ज्ञान भया है ॥ सगुण ब्रह्मका ज्ञान भया नहीं ॥ यांते ता निर्गुण ब्रह्मके ज्ञान ते इस तत्ववेत्ता पुरुषकों ता निर्गुणब्रह्मकीही प्राप्ति होवे है औ मायामय सगुण ब्रह्मकी प्राप्ति होवे नहीं ॥ जैसे शुक्तिविषे अन्य पुरुषकों रजत भ्रांति कालमेंभी दूसरा विशेषदर्शी पुरुष ता शुक्तिके ज्ञान ते ता शुक्तिकोंही प्राप्त होवे है औ रजतकों प्राप्त होवे नहीं ॥ जिस कारण ते ता शुक्तिविषे सो रजत वास्तवते है नहीं औ अन्य पुरुषके अज्ञान कल्पित रजतकों अन्य पु-

रुषके प्रत्यक्ष ज्ञानकी विषयताभी होती नहीं ॥ तैसे अन्य अज्ञानी पुरुषोंकों स्व स्व अज्ञानके वशते ॥ ता ब्रह्मविषे जीव ईश्वर जगत्‌रूप भ्रांतिके विद्यमान कालविषेभी ॥ श्रुति आचार्यके प्रसाद ते दूसरा विशेषदर्शी पुरुष ॥ मैं ब्रह्म हूं इस प्रकारके अद्वैतीय ब्रह्मके साक्षात्कार ते ॥ ता आनंद एक रस अद्वितीय निर्विशेष ब्रह्मकोंही प्राप्त होवे है ॥ ता सगुण ईश्वरकों प्राप्त होवे नहीं ॥ जिस कारण ते सो सगुण ईश्वर मायामय होणेते ता निर्गुणब्रह्म ते भिन्न नहीं है ॥ अर्थात् भ्रांति करके देख्या हुया पदार्थ वास्तव ते होवे नहीं ॥ तैसे ता निर्गुण ब्रह्मविषे भ्रांति करके कल्पित सो जीव ईश्वर जगत्‌भावभी वास्तवते ता ब्रह्मविषे है नहीं॥यांते इस नाना जीव पक्ष विषे सर्वजीवोंके प्रति साधारण प्रपंचके । वा । असाधारण प्रपञ्चके अंगीकार कीये हुयेभी ॥ सो निर्गुण ब्रह्मकी प्राप्तिरूप मोक्ष बनसके है और पूर्व कथन करा जो सर्व जगत्‌का कारणभूत

॥९५॥

अज्ञान ॥ तां अज्ञान उपहित जो चैतन्य है ॥ अर्थात् ता अज्ञानविषे प्रतिबिंबत जो चैतन्य है ॥ सो तो ईश्वर कह्या जावे है औ अज्ञानके कार्यभूत जे अंतःकरण हैं ता उपहित चैतन्य जीव कह्या जावे है ॥ अर्थात् ता अंतःकरणविषे प्रतिबिंबत चैतन्य जीव कह्या जावे है औ ❀कार्यो उपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः ❀ इत्यादिक श्रुति जीवकी कार्य उपाधिकी साधक है औ ईश्वरकी कारण उपाधिकी साधक है ॥ किंवा ॥ ❀ स्वमपि तो भवति ❀ इस श्रुतिनें सुषप्तिविषे जीवका ब्रह्मविषे औपाधिक लय कथन कराहै ॥ अर्थात उपाधिके लय प्रयुक्त लय कथन करा है ॥ तहां जीवका अंतःकरण उपाधि मानीये तौ ता अंतःकरणरूप उपाधिके लय करके ता जीवका औपाधिक लय संभवे है औ ता जीवका अविद्या उपाधि मानिये तौ ता अविद्याका सुषप्तिविषे लय होता नहीं॥यांते सुषप्तिविषे जीवके उपाधिक लयकों कथन करणेहारा सो श्रुति वचन

असंगत होवेगा॥यांते ता श्रुति वचन तेभी जीवका अंतःकरण उपाधि सिद्ध होवेहै॥इस पक्षविषे-
भी अंतःकरणरूप उपाधियोंकों नाना होणेते तथा प्रच्छिन्न होणेते सो जीवभी नानाहैं तथा प्रच्छि
न्नहैं॥ इस रीतिसें अज्ञानके एकत्व नानत्व करके। वा। अंतःकरणके नानत्व करके॥ जीवके एकत्व
नानत्व विषे आचारयोंके विवाद हुएभी परन्तु माया उपहित ईश्वर एक है इस विषे किसीभी आ-
चार्यका विवादनहीं॥ तथासो ईश्वर एक देशमें स्थित नहीं॥काहेते जो एक देशमें अंगीकार करें
तौ जा वस्तुका देशते अंत होवे है॥ ताका कालतेंभी अंत होवे है॥ यांते ईश्वर अनित्य होवे
गा॥जो अनित्य होवेहै सो कर्तासें जन्य होवे है॥यांते ईश्वरकाभी कर्ता अंगीकार करणा होवेगा
॥ सो ईश्वरका कोई कर्ता वनें नहीं॥ काहेते आत्माश्रय दोष आनेते अपना कर्ता आपतो ब-
ने नहीं॥ जहां आपही क्रियाकाकर्ता औ आपही कर्म होवे॥ तहां आत्माश्रय दोष होवे है॥

यांते जो ईश्वर अपणा कर्ता आप होवे तौ आपही क्रियाका कर्ता औ आपही कर्म होणेते आ-
त्माश्रय दोष होवेगा ॥ और कर्ता अंगीकार करें तौ औरभी प्रथम कर्ताकी न्यांई कर्ता जन्य ही
कहिना होवेगा॥प्रथम ईश्वरकों द्वितीयका कर्त्ता अंगीकार करें तौअन्योऽन्याश्रय दोष होवेगा॥
औ तीसरा कर्त्ता अंगीकार करें तौ सो तीसराभी कर्त्ताजन्य ही कहिना होवेगा॥ प्रथमसें जन्य कहें
तौ चक्रिका दोष होवेगा ❀तात्पर्य यिह ॥ जैसे कुलालके चक्रका भ्रमण होवे है॥ तैसे प्रथम कर्ता
द्वितीयजन्य द्वितीय तृतीय जन्य तृतीय प्रथमजन्य सो प्रथम फेर द्वितीयजन्य होवेगा ॥इस रीति-
सें कार्य कारण भावका भ्रमण होणेते चक्रिका दोष होवेगा ॥ तृतीयका कर्ता चतुर्थ माने चतु-
र्थका पंचम माने तौ अनवस्था दोष होवेगा ॥ अनवस्था नाम धाराका है ॥ औ कर्ताकी धारा
अंगीकार करें तौ कौनसा कर्त्ता करे है यिह निरणय नहीं होवेगा ॥ धारामें आदि अंत कर्ताकों

छोड कर मध्यमें किसी कर्ताकों कर्ता कहें तौ यामें युक्ति नहीं ॥ ता युक्तिके अभावकोंही विनि-
गमना बिरह दोष कहे हैं औ धाराका अंत अंगीकार करके अंत कर्ताकों कर्ता कहें तौ सोई ज-
गत्का कर्ता अंगीकार करणे योग्य है ॥ पूर्वले सर्व निष्फलहै यांहीकों प्राग लोप दोष कहे हैं ॥
इस रीतिसें ईश्वरका देशते अंत अंगीकार करणेते ॥ आत्माश्रयादिक षट् दोष प्राप्त होवेहैं ॥
यांते ईश्वरका देशते अंत नहीं किंतु ईश्वर व्यापक है तथा सर्व शक्तिमान है ॥ काहेते जो अ-
ल्प शक्तिवाले जीवहैं ॥ तिन्होंसें ता ईश्वरके कार्य जगत्की रचना मनसेंभी चिंतन होवे नहीं ॥
यांते ईश्वर अद्भुत शक्तिवाला है तथा स्वतंत्र है ॥ काहेते जो न्यून शक्तिवाला होवे सो परा-
धीन होवे है औ सर्वशक्तिवाला पराधीन होवे नहीं ॥ यांते ईश्वर सर्वशक्तिवाला होणेते
स्वतंत्र है औ ❀ यतोवा इमानि भूतानि जायंते येन जातानि जीवंति यत्प्रयंत्यभि संवि-

शंति तद्वि जिज्ञासस्वतद्‌ ब्रह्म ❋ यिह श्रुति सर्व जगत्‌ की उत्पत्ति पालन संहारकी कारणता कहे हैं ॥ यांते सो ईश्वर जगत्‌का कारण है (ननु) सो ईश्वर अरम्भक रूप कारण है । वा । परिणामरूप कारण है । वा । विवर्त्ताधिष्ठानरूप कारण है।।प्रथम पक्ष कहें तौ सम्भवे नहीं ॥ काहेते परस्पर संयुक्त अनेक द्रव्योंकोंही आरम्भक रूपता होवे है ॥ जैसे नैयायिकोंके मत विषे परस्पर संयुक्त अनेक परमाणुओंकों जगत्‌की आरम्भक रूपकारणताहै औ तुमारे मतविषेतो ब्रह्मरूप ईश्वर एक अद्वितीयरूप है ॥ यांते आरम्भकरूपकारणता ईश्वरमें सम्भवे नहीं और परिणामरूपभी ईश्वर कारण सम्भवे नहीं।।काहेते ❋ निष्कलंनिष्क्रयंशान्तं अविकार्योयमुच्यते ❋ इत्यादिक श्रुति स्मृतियोंने ईश्वरकों निर्गुण निष्क्रय निरवयव अविकारी कथन कऱ्या है।। यांते ईश्वरमें परिणाम रूप कारणता सम्भवे नहीं और विवर्त्ताऽधिष्ठानरूप कारणताभी ईश्वरमें स-

म्भवे नहीं ॥ काहेते घटः सन् पटः सन् इस प्रकार घट पटादि प्रपंचका सत्यरूप करकेही सर्व लोकोकों अनुभव होवे है ॥ ऐसा सत्य प्रपंच ब्रह्मका विवर्त होणेते मिथ्या है या कल्पणेमें कोई प्रमाणनहीं औ प्रपंचके मिथ्यापणे ते बिना ता ईश्वरकों विवर्ताधिष्ठानरूपताभी सम्भवे नहीं ॥ इसरीतिसें ईश्वर विषे किसी प्रकारकीभी उपादान रूप करणता सम्भवे नहीं और निमित्त कारणता रूप कर्तापणाभी ईश्वर विषे सम्भवे नहीं ॥ काहेते कार्यकी उत्पत्तिके अनुकूल जा विषे ज्ञान् इच्छा प्रयत्न यिह तीनोंरहेहैं ॥ सो निमित्त कारणरूप कर्ता होवे है ॥ सो ईश्वर विषे तीनों सम्भवे नहीं ॥ काहेते जो ईश्वरमें ज्ञान इच्छा प्रयत्न अंगीकार करे तासें यिह प्रष्टव्य है ॥ सो ज्ञानादि नित्य है । वा । अनित्यहै ॥ प्रथम पक्ष अंगीकार करे तौ सदाही जगत् होणेते प्रलयका अभाव होवेगा औ द्वितीय पक्ष कहे तौ जगत्की न्यांई ज्ञानादिकभी कार्य हो

णेते तिन्होकों ब्रह्मका आश्रय पणा नहीं होवेगा ॥ काहेते जो उपादान होवे सोई आश्रय होवे है औ पूर्व प्रकारसें ब्रह्मकों उपादानता सम्भवे नहीं ॥ इस रीतिसें ईश्वरविषे उपादानपणेके तथा निमित्तपणेके असम्भवते अभिन्न निमित्त उपादान कारणता सम्भवे नहीं ॥ यांते इस जगत्रूप कार्यका ब्रह्मते भिन्न कोई कारण मानना योग्य है ॥ सो ऐसा कारण सत्व रज तम गुणरूप प्रधान है ॥ ता प्रधानतेही महत्तत्वादिद्वारा क्रम करके यिह जगत् उत्पन्न होवेहै ॥ यांते प्रधानकों परिणाम रूपकारण होणेते जगत्के जन्मादिकोंकी कारणता सम्भवे है और आत्मरूप पुरुष तो असंग है तथा निर्विकारहै ॥ यांते ता विषे जगत्की कारणता सम्भवे नहीं (उत्तरः) हे वादी तत्पदका अर्थ दो प्रकारका होवेहै ॥ एक तो वाच्यार्थ होवे है औ दूसरा लक्ष्यार्थ होवे है ॥ तहां माया उपहित चैतन्य तो तत्पदका वाच्यार्थ है और मायाते

रहित शुद्ध चैतन्य तत्पदका लक्ष्यार्थहै ॥ ता लक्ष्यार्थकों जगत्का उपादान कारणपणा यद्य-
पि सम्भवता नहीं तद्यपि माया उपहित ईश्वरकों उपादानपणा संभवेहै ॥ सो उपादानप-
णाभी आरंभकरूप । वा । परिणामरूप सम्भवे नहीं किन्तु विवर्ताऽधिष्ठानरूपहै ॥ तहां
अधिष्ठान वस्तुका जो अवास्तव ते अन्यथाभाव होणा है ताका नाम विवर्त कहिये है ॥
जैसे रज्जु शुक्ति । वा । तदुपहित चैतन्यका अवास्तव ते सर्प रजतादि अन्यथाभाव है ॥
तैसे ईश्वरकाभी यिह जगत् अवास्तव ते अन्यथाभाव है ॥ किंवा ॥ घटः सन् पटः सन् इत्या-
दिक अनुभव ते जगत्का सत्यपणा होणेते ॥ जगत्विषे ब्रह्मके विवर्तपणे करके मिथ्यापणा
सम्भवता नहीं ॥ यिह जो पूर्व वादीने कथन करा सोभी सम्भवे नहीं ॥ काहेते सो अनुभव
तो घट पटादिकोंके अधिष्ठान चैतन्यके सत्यपणेकोंही विषय करे है औ घटादिकोंके सत्य प-

णेकों विषय करे नहीं ॥ यांते सो अनुभव प्रपंचके मिथ्यापणेका बाधक नहीं तथा ❀ नेह ना-
नास्ति किंचनः ❀ इत्यादि श्रुति ब्रह्मते भिन्न सर्व प्रपञ्चका निषेध करे है ॥ यांते ता प्रपञ्चकी
स्वतः सत्ता सम्भवती नहीं और जो वादीने जगतके मिथ्यापणेमें प्रमाणका अभाव कह्या
सोभी सम्भवे नहीं॥काहेते❀वाचाऽऽरंभणं विकारोनामधेयं❀इत्यादि श्रुति साक्षात जगत्के मि-
थ्यापणेकों कथन करे है॥किंवा॥सो ईश्वररूपब्रह्मकों जगत्का उपादानपणा अवश्य मानना योग्य
है॥काहेते❀यत्प्रयंत्यभिसंविशंति❀इत्यादि श्रुति ब्रह्मरूप ईश्वर विषे सर्व जगत्के लयकों कथ-
न करे है॥जिस कार्यका जिस कारणमें लय होवेहै॥तिस कार्यका सो उपादान कारणही होवेहै॥जैसे
घटादिक कार्यका मृत्तिकादिक कारणमें लय होवेहै ॥ यांते ता घटादिक कार्यका सो मृत्तिकादिक
उपादान कारणही देखनेमें आवे है ॥ तैसे श्रुतिप्रतिपाद्य जगत्के लयका आधार होणेते ता ब्रह्म-

रूपईश्वरकों जगत्का उपादानपणा अवश्य मानना उचित है ॥ किंवा ॥ ❋ बहुस्यां प्रजायेय ❋ इत्यादिक श्रुतिने ब्रह्मरूप ईश्वरकाही बहुत होणा कथन कऱ्या है॥ या कारण तेभी ता ब्रह्मरूप ईश्वरकोंही जगत्का उपादान मानना योग्य है ॥ किंवा ॥ सांख्यवादीने जो प्रधानकों जगत्का उपादान अंगीकार करा सो सम्भवे नहीं ॥ काहेते सो प्रधान जगत्का उपादान कारण है यामें कोईभी प्रमाण नहीं है॥अर्थात किसीभी श्रुतिविषे त्रिगुणात्मक प्रधानकों जगत्का उपादान पणा कह्या नहीं॥किन्तु❋आत्मन आकाशः संभूतः ❋ इत्यादिक श्रुतियोंविषे चेतनरूप ब्रह्मकों ही जगत्का उपादानपणा कथन करया है ॥ यांते सो ईश्वरहि अभिन्न निमित्त उपादानरूपकर्ता है ❋ तात्पर्ययिह ॥ सो ईश्वर ज्ञान शक्ति वाले अज्ञान उपहित सरूप करके तो जगत्का कर्ता है औ विक्षेपादि शक्तिवाले अज्ञान उपहित सरूपकरके जगत्का उपादानहै ॥ तथा ता

ईश्वरकों ❀ यः सर्वज्ञः सर्ववित ❀ यिह श्रुति सर्व पदार्थोंके समान विशेष भावकों जाननेवाला कहे है ॥ यांते ईश्वर सर्वज्ञहै तथा सो ईश्वर भगवान् है अर्थात् षट्भगो सम्पन्नहै ॥ सो षट्भग यिह है ❀ ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ॥ वैराग्यस्याथमोक्षस्यषण्णंभगइतींगना ❀ अर्थयिह ॥ सम्पूर्ण जो ऐश्वर्य्य है । १ । तथा संपूर्ण जो धर्म्म है । २ । तथा सम्पूर्ण जो यश है । ३ । तथा संपूर्ण जो श्री है ।४। तथा संपूर्णजो वैराग्य है ।५। तथा संपूर्ण जो ज्ञान है । ६ । इति । वा । भगवान्पदका यिह अर्थहै ❀ उत्पत्तिंच विनाशंच भूतानामागतिं गतिं ॥ वेत्तिविद्यामविद्याच सवाच्यो भगवानिति ❀ अर्थयिह ॥ जो सर्वज्ञ पुरुष सर्व भूतोंकी उत्पत्तिकों तथा ता उत्पत्तिके कारणकों जाने है तथा ता सर्वभूतोंके नाशकों तथा ता नाशके कारणकों जाने है तथा सर्व भूतोंके सम्पदा रूप आगतिकों तथा सर्व भूतोंकी अपदारूपगतिकों जाने है

तथा विद्या औ अविद्याकों जानैहै ॥ सो सर्वज्ञ पुरुष भगवान् या नाम करके कहणे योग्यहै ॥ ऐसे सर्वज्ञ अन्तर्यामी ईश्वरकी शरणरूप उपासना मुमुक्षु जनोंने करणे योग्य है।शरणरूप उपासना किसकों कहे हैं ऐसा पूछे तौ श्रवण कर ॥ सा शरणरूपउपासना त्रै प्रकारकीहैं ॥ तथाच शिष्टोक्ति ❀ तस्यैवाहंममैवासौसएवाहमितित्रिधा ॥ भगवच्छरणत्वंस्यात्साधनाभ्यासपाकतः❀ अर्थयिह ॥ इस अधिकारी पुरुषकों साधनोंके अभ्यासके परिपाकते तीन प्रकारकी भगवच्छरणरूप उपासना प्राप्त होवे है ॥ तहां एकतो तिस परमेश्वरकाही मैंहूं ॥ इस प्रकारकी भगवच्छरणरूप उपासना प्राप्त होवे है औ दूसरी यिह परमेश्वर मेराही है।इस प्रकारकी भगवच्छरणरूप उपासना प्राप्तहोवे है औ तीसरी सो परमेश्वर मैंही हूं ॥ इस प्रकारकी भगवच्छरणरूप उपासना प्राप्त होवे है ॥ अब इस त्रै प्रकारकी भगवच्छरणरूप उपासनाकों विस्तारसें निरूपण

करे हैं ❋ सत्यपिभेदापगमेनाथतवाहंनमामकीनस्त्वं ॥ सामुद्रोहितरंगः कुचनसमुद्रोनतारंगः ❋ ॥ अर्थयिह ॥ हे सर्ब जगत्केनाथ परमेश्वर जैसे समुद्रका तथा तरङ्गोंका भेद नहींभी परन्तु समुद्रके तरङ्ग कहे जावे हैं औ समुद्र तरङ्गोंका कह्या जावे नहीं ॥ तैसे हे नाथ आपका और हमारा यद्यपि भेद नहींभी परन्तु मैं आपकाहीहूं औ आप परमेश्वर हमारा नहीं हैं ऐसा जो दृढनिश्चय है॥सो मन्द शरणरूप उपासना है और ❋ हस्तमुत्क्षिप्ययातोसिवलात्कृष्णकिमद्भुतं ॥ हृदयाद्यदिनिर्यासिपौरुषं गणयामिते ❋॥अर्थयिह॥हे कृष्ण अर्थात् हे भक्तजनोंके रक्षा करनेवाले भगवान्।वा।❋कृषिर्भूवाचकःशब्दो णश्चनिवृत्तिवाचकः ॥ तयोरैक्यंपरंब्रह्म कृष्णइत्यभिधीयते ❋ अर्थयिह॥'कृषि'शब्द भू नाम सत्ताका वाचक है औ 'ण' शब्द निर्वृत्ति नाम आनन्दका वाचक है॥'तयोरैक्यं'नाम सत्य आनन्द उभयकी जो एकता है॥ सो सर्वका पररूपब्रह्म है॥ सो पररूप ब्रह्मही

कृष्ण इस शब्द करके कथन करया है ॥ अर्थात् हे सत्य आनन्द सर्वका पररूप ब्रह्म स्वाश्रय रहनेवाली मायाके प्रभाव ते सकाररूप बणाय कर ॥ बलात्कारसें अपणे हस्तकों छुडायके जाता भया है॥इस करके आपका कोई अद्भुत पौरुष सिद्ध नहीं होता ॥हे परमेश्वर जब आप हमारे हृदयते निकसिजावेगा ॥ तब मैं आपके पौरुषकों मानूंगा ॥ ऐसे जो परमेश्वरकों जानणा है ॥ सो मध्यम शरणरूपउपासना है और ❀ सकलमिदंमाञ्चवासुदेवः परमपुमान्परमेश्वरःसएकः ॥ इतिमतिरचलाभवत्यनन्ते हृदयगतेव्रजतान्विहायदूरात् ❀ अर्थयिह ॥ धर्मराज अपणे दूतप्रति कहेहै ॥ हे दूत यिह स्थावरजंगमरूप सर्व जगत् तथा मैं वासुदेवरूपहैं ॥ सो वासुदेव सर्वते परेहै तथा पूरण हैं तथा परम ईश्वरहै औ एकहै ॥ इस प्रकारकी अचल मति हृदयदेशविषे स्थित परमात्म देवमें जिन पुरुषोंकीहैं ॥ हे दूत ऐसे सर्वत्र ब्रह्मदृष्टिवाले पुरुषोंके

समीप तुमने कदापि नहीं जाणा किंतु ऐसे तत्ववेत्ता पुरुषोंकों दूरते परित्याग करके तूं गमन करजाणा ॥ इस प्रकार उत्तम शरणरूपउपासना करनेवाले पुरुषोंके महात्मकों धर्मराजने कथन करा है ॥ इस तीन प्रकारकी शरणरूप उपासनाका फल क्या होवे है ॥ ऐसा पूछे तौ हे शिष्य श्रवणकर ॥ सो तीन प्रकारकी शरणरूपउपासना करनेवाले उपासक सकामी औ निष्कामी भेदते दो प्रकारकेहैं ॥ सकामी इस लोकके तथा परलोकके जिसजिस पदार्थकी कामना करतेहैं ॥ ताकों कामनाके अनुसार तिस तिस पदार्थकी प्राप्ति होवे है ❋ तात्पर्य यिह ॥ धर्म अर्थ काम मोक्ष यिह चार पदार्थ कामनाके अनुसार अंतर्यामी ईश्वर उपासकोंकों प्राप्त करे है ॥ स्व स्व वर्णाऽश्रमके अनुसार विहित जो कायिक वाचिक मानासिक कर्म हैं सो धर्म कहिये है औ सुवर्णादिक अर्थ कहिये है औ अपसुरादिक काम कहिये है औ सालोक्य सामीप्य सारूप्य सायुज्य भेदते मोक्ष

चार प्रकारकी हैं ॥ वैकुंठ लोककी जो प्राप्ति है सा सालोक्य मुक्ति कहिये है औ वैकुंठके अधिपति पास जो निवास करना है सा सामीप मुक्ति कहिये और चतुर्भुजादि अवयवोंसहित तथा कौस्तुभादि भूषणोंसहित जो होणा है ॥ सो सारूप्य मुक्ति कहिये है औ उत्पत्ति स्थिति संहारते विना होर ईश्वरकी सर्व सामर्थ्यकी जो प्राप्ति है ॥ सो सायुज्य मुक्ति कहिये है ॥ इस प्रकारके धर्म अर्थ काम मोक्ष चार पदार्थ सकामी उपासकोकों प्राप्त होवे है और निष्कामी उपासकोकों जो फल प्राप्त होवे है ॥ सोभी श्रवण कर ॥ निष्कामी उपासकोकों सर्व राजसी तामसी वृत्तियोंतेरहिततारूप जो अंतःकरणकी शुद्धि है ॥ ता शुद्धिद्वारा ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति होइ के कैवल्य मुक्तिकी प्राप्तिरूप फल होवे है ॥ इस प्रकारसें सर्व फलोंके देनेवाली ईश्वरकी यिह उपासना है ॥ यांते यिह तीन प्रकारकी उपासना सर्व उपासनाते उत्तम है ॥ ऐसी उत्तम उपा-

सनाका फल या कैवल्य मुक्ति है ताका द्वारभूत जो ब्रह्मज्ञान है ॥ तामें उपयोगी जीवके पंचको-
शोका तथा पंचकोशोते जिव साक्षीका व्यतिरेक तो पूर्व प्रथम अध्यायमें निरूपण करा ॥ अब
उपयोगीरूप ईश्वरके पंचकोशोंका तथा पंचकोशोते ईश्वर साक्षीका व्यतिरेक निरूपण करे
हैं ॥ समष्टि स्थूल रूप जो ब्रह्मांड है सो ईश्वरका अन्नमय कोश है ॥ काहेते विरोचन मतके
अनुसारी ब्रह्मांडकोंहि ईश्वर माने है औ केईक ताके एक देशी ब्रह्मांडके अवयवरूप अश्वत्थ
असि पषाण कुदालादिकोंको ईश्वर माने हैं ॥ यांते यिह ब्रह्मांड मुख्य ईश्वरका आछादक
होणेते कोश कहिये है ॥ ता ब्रह्मांडरूप अन्नमय कोशविषे अहंता अभिमान करके ॥ मुख्य
ईश्वरही स्थूलभोग भोक्ता हुया वैराट संज्ञाकों प्राप्त होवे है ॥ यिहही ईश्वरका अन्नमय
कोशविषे अन्वय है और समष्टि कर्म इन्द्रिय सहित समष्टि प्राण यिह ईश्वरका प्राणमय कोश

कहियेहै ॥ काहेते हैरण्य गर्भीये समष्टिकर्मइन्द्रियसहित समष्टि प्राणोंकोंहि ईश्वर माने है ॥यांते यिह समष्टि कर्म इन्द्रिय औ समष्टि प्राण ईश्वरका प्राणमय कोश कहिये है और समष्टि ज्ञानेंद्रिय सहित समष्टि मन ईश्वरका मनोमय कोश कहिये है ॥ काहेते केईक हैरण्यगर्भीयेके अनुसारी समष्टि ज्ञानेंद्रियसहित समष्टि मनकोंहि ईश्वर मानेहै ॥ यांते यिह समष्टि ज्ञानेंद्रियसहित समष्टि मन ईश्वरका मनोमय कोश कहिये है और समष्टि ज्ञानेंद्रिय सहित समष्टि बुद्धि ईश्वरका विज्ञानमय कोश कहिये है ॥ काहेते केईक समष्टि ज्ञानेंद्रियसहित समष्टि बुद्धिकोंहि ईश्वर माने हैं ॥ ❋तात्पर्ययिह ॥ समष्टि ज्ञानेंद्रिय सहित समष्टि निश्चयाकार बुद्धि ईश्वरका विज्ञानमय कोश कहिये है ॥ यिह तीन कोशरूप समष्टि सूक्ष्म सृष्टिमें अहंता अभिमान करके मुख्य ईश्वरही सूक्ष्मभोग भोक्ता हुया हिरण्यगर्भ संज्ञाकों प्राप्त होवे है ॥ यिहही ईश्वरका तीन कोशोंसाथ अन्वंय

है और सुखाकार समष्टी बुद्धिसहित माया ईश्वरका आनंदमय कोश है ॥ काहेतें केईक सुखाकार समष्टी बुद्धिसहित मायाकोंही ईश्वर माने है॥ यांते सुखाकार समष्टी बुद्धिसहित माया मुख्य ईश्वरका आच्छादक होणेते कोश कहिये है औ ता आनंदमय कोशविषे अहंता अभिमान करके मुख्य ईश्वरही मायाकी वृत्तिद्वारा मायाकर आछादित आनंदकों भोक्ता हुया अव्याकृत संज्ञाकों प्राप्त होवे है ॥ यिहही ईश्वरका आनंदमय कोशविषें अन्वय है ❋ तात्पर्य यिह ॥ समष्टि स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर औ माया।१।तथा क्रम ते इन तीनो करके उपहित वैश्वानर सूत्रात्मा ईश्वर।२। तथा तिन सर्वोंका अधिष्ठानरूप निरुपाधक अखंड चैतन्य।३।यिह तीनो तप्तलोह पिंडकी न्यांई एकरूप प्रतीत होवे हैं॥ यिहही ब्रह्मपदके लक्ष्यार्थरूप ईश्वर साक्षीका अन्वय है ॥ अब व्यतिरेककों श्रवण कर॥ पंचीकरणते पूर्व कालमें स्थूल ब्रह्मांडरूप अन्नमय कोशका अभाव है ॥ तैसे

सूक्ष्म भूतांकी उत्पत्तिते पूर्वकालमें ॥ प्राणमय मनोमय विज्ञानमय यिह तीन कोशोंका अभाव है औ शुद्धाऽवस्था कालमें ॥ सुखाकार समष्टी बुद्धिसहित मायारूप आनंदमय कोशका अभाव है ॥ यांते यिह पंच समष्टि कोश व्यभिचारी होणेते मिथ्याहैं॥ता मिथ्या पंच कोशनके भावाऽभावकों जो जाननेवालाहै ❋ तात्पर्ययिह ॥ पंचीकरणते पूर्वकालमें पंचकोशोंकों जो सत्तास्फूर्ति देवे है औ पंचिकरणते पूर्वकालमें ब्रह्मांडरूप अन्नमयकोशके अभावकों तथा प्राणमय मनोमय विज्ञानमय आनंदमय ॥इन चार कोशोंके भावकों जो चैतन्य सत्तास्फूर्ति देवे है औ सूक्ष्मभूतोकी उत्पत्तिते पूर्वकालविषे अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय ॥ इन चार कोशोंके अभावकों तथा आनंदमय कोशके भावकों जो चैतन्य सत्तास्फूर्ति देवे है औ शुद्धाऽवस्थाविषे पंचकोशोंके अभावकों जो चैतन्य सत्तास्फूर्ति देताहुया निरावरण आनंदकों आस्वादन करेहै ॥ सो

चैतन्य नित्य १ शुद्ध २ बुद्ध ३ मुक्त ४ सत्य ५ परमानंद ६ अद्वयस्वरूपहै ॥ काहेते नित्यादि विशेषण चैतन्यविषे प्रपंचके तादात्म्यकों निषेध करे हैं यद्यपि सो चैतन्यरूप ब्रह्मविषे वास्तव ते किंसी अनात्मवस्तुका तादात्म्य नहीं है तदापि भ्रांतिते ता ब्रह्मरूप चैतन्यविषे अनात्म-वस्तुका तादात्म्य प्रतीत होवेहै ॥ ता भ्रांतिसिद्ध तादात्म्यकों नित्यादि विशेषण निवृत्त करे हैं ॥ तहां कार्य प्रपंचके तादात्म्यकों नित्य विशेषण निवृत्त करेहै ॥ सो ब्रह्मरूप चैतन्यका नि-त्यपणा ❋आकाशवत्सर्वगतश्चनित्यः❋इत्यादि श्रुतिते सिद्ध है और ता कार्यरूप प्रपंचके धर्मोंके तादात्म्यकों सुद्ध यिह विशेषण निवृत्त करेहै ॥ तहां रागद्वेषादिक दोषोंका जो अभावहै ॥ सोई ता चैतन्यरूप ब्रह्मविषे शुद्धपणा है ❋अस्नाविरंशुद्धमपापविद्धं❋इत्यादिक श्रुतिकर सिद्धहै और कारणभूत अज्ञानके तादात्म्यकों बुद्ध यिह विशेषण दूर करे है ॥ तहां सर्वदा एकरस ज्ञानरूप-

ताका नाम बुद्धपणाहै ॥ सो ब्रह्मका बुद्धपणा ❋प्रज्ञानघनः❋ इत्यादि श्रुतिकर सिद्धहै और अ-ज्ञानकृत आवरणादिकोंके तादात्म्यकों मुक्त यिह विशेषण दूर करेहै ॥ तहां बन्धरहितपणेका नाम मुक्तपणाहै ॥ सो❋विमुक्तश्च विमुच्यते❋इत्यादि श्रुतिकर सिद्ध है और मिथ्यापणेकों सत्य यिह विशेषण निवृत्त करे है ॥ तहां तीनकालमें जाका बाध होवे नहीं सो सत्य कह्या जावे है॥ सो❋सत्यं ज्ञान मनंतं ब्रह्म❋इत्यादि श्रुतिकर सिद्ध है और आनंदयिह विशेषण ब्रह्मके पुरुषा-र्थपणेकों कथन करे है ॥ सो ब्रह्मकी आनंदरूपता ❋ आनंदोब्रह्मेतिव्यजानात् विज्ञानमा-नंदब्रह्म ❋ इत्यादि श्रुतिकर सिद्ध है और अद्वय यिह विशेषण ता चैतन्यरूप ब्रह्मकी अखंड एक रसताकों कथन करेहै ॥ तहां नहीं विद्यमानहै द्वैत जिसविषे ताका नाम अद्वयहै ॥ अर्थात् भेदवादियोंनें कल्पेजेपंच भेद हैं॥ तिन्होंते रहितका नाम अद्वय है ॥ सो अद्वय चैतन्याहि ब्रह्म

पदका लक्ष है औ सोई ईश्वरसाक्षी है हे शिष्य ऐसे तूं अपणे चितमें जान ॥ ३ ॥ सोरठा ॥
माया युत श्रीराम, सृष्टि कर्ता दुख हर्ता सदा ॥ ताहि हमार प्रणाम, स्व प्रकाश असंग विभो ॥
॥ ४ ॥ इति श्रीमदुदासीन वर्य्य विरक्त शिरोऽबतंस श्री ६ ब्रह्मकृष्ण पाद पथोज प्रैष्येण कुशल
दासेन कृता विचार रत्नावलिः ब्रह्म पद वाच्यलक्ष्याऽर्थनिरणयो नाम द्वितीयो निवासः ॥ ३ ॥
श्रीगणेशायनमः ॥ १ ऊँ सत्यगुरुप्रसाद ॥ गीयाछन्द ॥ श्री ज्ञान योग विराग गुण गण धर्म नेम
सुनूतनो ॥ पर पीर पेख असह्यमान मुमुक्षु दया दल सेवनो ॥ अस श्री कृपालु गुरु नानकंदु-
रन्त दर्श निकन्दनं ॥ हौ कुशलदास विराम मनसो करों बहु विध बन्दनं ॥ १ ॥ दोहा ॥ अचल
निरंजन एक रस, द्वैत रहित चिदरूप ॥ निसकर्तव्य नित मुक्त है, नानक सर्ब सरूप ॥ २ ॥ दोहा
॥ अस्मि पदका अर्थ तुहि कहो, अब सुन शिष्य सुजान ॥ विस्मृत भयि जो एकता, स्मरण

कर धर ध्यान ॥ ३ ॥ टीका ॥ हे शिष्य पूर्व अहं पदका तथा ब्रह्म पदका अर्थ तो निरूपण भ-
या ॥ अब अस्मिपदका अर्थ हे सुजान तेरेप्राति मै कथन कर्ता हूं ॥ तूं चित्तकूं एकाग्र कर श्रवण
कर ॥ अहं पदके अर्थकी तथा ब्रह्मपदके अर्थकी स्वतःसिद्ध जो एकता है ॥ सो स्वाऽश्रय र-
हिनेंवाली मायाके प्रभावसें तेरेकों चक्रवर्ती राजेवत विस्मरण भई है॥३॥ ❀शिष्यप्रश्नः॥दोहा
॥ चक्रवर्ति भूपकों प्रभो, कहो बृतांत सुनाय ॥ तुम सम और समर्थ नहिं, यांते कहो बनाय॥४॥
❀गुरुरुवाच॥ चौपाई॥ चक्रबर्तिभूपइकमीता ॥ तिसकों स्वप्न भयो इस रीता ॥ मैहूं राजा बहु-
विधि भारा ॥ कैसे सुत बिन होइ गुज़ारा ॥ ५ ॥ असचिंतन कर दया निरमया ॥ कोवद बुलाय
नृप पूछत पया ॥ ❀कोवदोवाच ॥इस निक्षत्रमें उत्पन्न होवै जोई ॥ मात पिता दुख देवै सोई
॥ ६ ॥ ताते इनकों करो सुत्यागा ॥ तुमरे जनमें सुत बड भागा ॥ ऐसे कोवद जब उच्चरया ॥

नृप प्रेरी बांधी तबहरया ॥ ७ ॥ प्रातेकाल फन्दक निहार्यो ॥ स्त्र पतनी गोदमें सुत धार्यो ॥ कछुक काल बीतेके बाद ॥ रुजकारकी बार्ता आईजाद ॥ ८ ॥ मैहूं रंक सु वहु विध भारा ॥ कैसे बैठयां होइ गुजारा ॥ तातेकुलकीजोहै रीत ॥ सीघ्र करन योग्य सुमम मीत ॥ ९ ॥ ऐसे विचार जाल पसारे ॥ पञ्छीपकर स्व पुरी सधारे ॥ ऐसे बहु बिध काल भयो जब ॥ ज्योतस कोवद निहारयो तब ॥ १० ॥ पञ्छी देख मन आई दया ॥ यिह नित घात करे नृ दया ॥ पास बुलाय जबे मुख देखा ॥ ताके मस्तक राजकि रेखा ॥ ११ ॥ पुन राजेकोंजाय सुनाई ॥ राजे मन अनुमोदन आई ॥ बहु बिध संसकार सुत कीनों ॥ तखत बिठाय तिलक सु दीनो ॥ १२ ॥ लैकर तिलक सुतसी जोई ॥ मात पिता सुख देवत सोई ॥ और वहु विध सम्बन्धी जेते ॥ सुख पावतभये वहु विध तेते ॥ १३ ॥ याविध विविध स्वप्ना सु आई ॥ जाग्यो जब तब रञ्च न र-

हाई ॥ तैसे माया युक्त तव मूल ॥ ताहि ग्राय हेतु बतायो ऽस्थूल ॥ १४ ॥ कछुक काल बीत्यो जबही ॥ चारो तरफ सुख भयो न तबही ॥ पुन सा सुखकों कारण जोई ॥ शब्द स्परसादि प-छाने सोई ॥ १५ ॥ ताकों कारण पुन तुम जाना ॥ धर्म्मादिक वहु विधहैं नाना ॥ ताको हेतु सुना चित लाई ॥ सुभाऽसुभ कृया बहु बिध गाई ॥ १६ ॥ ताको हेतु अनुकूलादि ज्ञान ॥ सो भेद ज्ञानते भयो भान ॥ ताको हेतु अज्ञान पछाना ॥ और न कारण मनमें माना ॥१७॥ वु अज्ञान सांत अनादि मीता ॥ यामें वेद प्रमाण सुनीता ॥ वु अज्ञान अहे इह सु जोई ॥ जन्म मरणकों देवे सोई ॥ १८ ॥ सो जन्मादिक वहु प्रकारा ॥ वहुभी लहे न आवत पारा ॥ ता निवृति अर्थ गुरु तुम भाला ॥ करणा कर दुख हर दयाला ॥ १९ ॥ ❋ गुरुरुवाच ॥ कवित्व ॥ सरु न्तिल मध्य तेल पुह मध्य सु फुलेल मैंद्दके माह रङ्ग भली भान्त आनीये ॥ पृथवीके तल

दक खीर मध्य पुन मख दार विषे पावक सु मन विषे मानीये । पुरुषार्थ ते बिना नहीं हाथ आवै भामें कोंटि आयू प्रयन्त तांकी स्थिति ठहरानीये ॥ तैसे सु समष्टि व्यष्टि कोशों मध्य आत्मदेव पूर रह्यों यतनसें बिना नहीं जानीये ॥ २० ॥ ❀ शिष्यप्रश्नः ॥ तोटकछन्द ॥ मम बारकहां तुम साम अनो ॥ करणा करके तिस आप भनो ॥ भव पास अहै रिद अन्तर-जो ॥ तुम हान करो मम भीतर सो ॥२१॥ ❀गुरुरुवाच ॥ भुजङ्गप्रयातछन्द ॥ सुनो अंग बानी कहों तोह सांची ॥ लखो तीन देहां भली भांत काची ॥ इने माहि जोई प्रकाशा बखानै ॥ ॥ वही रूपतेरो ब्रह्मो भांति जांनै ॥ २२ ॥ ❀ शिष्यप्रश्नः ॥ चौपाई ॥ ब्रह्म सर्वज्ञ हम किञ्चत जाना ॥ विरुध धर्म्म अस भासित नाना ॥ गुरो एकता कैसे होऊ ॥ यिह संशय भासत मन मोऊ ॥ २३ ॥❀ गुरुरुवाच ॥चौपाई॥ सुनो शिष्य अब एक विचारा॥ यांते शंका होइ प्रहारा॥

प्रथम साधारन लक्षण जानो ॥ शक्ति लक्षणा पुना पछानो ॥ २४ ॥ ❋ अर्थ स्पष्ट ॥ ❋ तात्पर्य यिह ❋ त्रय दोषशून्यत्त्वेसति असाधारण धर्म वत्त्वं लक्षणत्त्वं ❋ अर्थयिह ॥ अतिव्याप्ति अव्याप्ति असंभव इन त्रै दोषोंते रहित हुया जो असाधारण धर्म्मवाला होवे सो लक्षण कहिये है ॥ तहां ❋लक्ष्यवृत्तित्त्वेसति अलक्ष्यवृतित्त्वं अतिव्याप्तत्वं ❋ जैसे शृङ्गित्त्वं गोत्वं ऐसा लक्षण करणेते लक्ष्य गोमें लक्षण वर्तताहुया अलक्ष्य महषि आदिकोंमें लक्षण वर्तेहै॥यांतेअतिव्याप्ति है औ ❋लक्ष्यैक देशाऽवृतित्वंअव्याप्तित्वं❋ जैसे कपिलत्वं गोत्वं ऐसा लक्षण करणेते लक्ष्यके एक देशमें लक्षण नहीं वर्ते है यांते अव्याप्ति है औ ❋लक्ष्यमात्रेअवृत्तित्वं असंभवत्वं❋ जैसे एक शफत्वं गोत्वं ऐसा लक्षण करणेते लक्ष्यमात्रविषे लक्षण नहीं वर्ते है यांते असम्भवहै ॥ औ ❋गोत्व जातिमत्वं गोत्वं❋यिह त्रै दोषोंते रहित हुया असाधारण धर्म्मवाला लक्षणहै॥अब

शक्ति लक्षणा उभय वृत्तियोंका लक्षण करेहैं ॥ पदमें अपणे अर्थके बोधकी जो सामर्थ्य है सो पदमें शक्ति कहिये है ॥ ता शक्तिवाले पदका पदार्थमें शक्यता सम्बन्ध होवे है औ तांहीकों वाच्यता सम्बन्धभी कहे हैं औ तासम्बन्धके अनुयोगिरूप पदार्थमें सीत दाहादि स्व स्व कार्यकरनेकी जो सामर्थ्य है सो शक्ति कहिये है परन्तु पदार्थमें या सामर्थ्यरूपशक्तिहै ॥ सातो ज्ञात अज्ञात उभैरूप हुईही अपणा शीत दाहादि कार्य करे है औ पदमें जो सामर्थ्यरूप शक्ति है सोतो ज्ञात हुईही अपणा कार्य करेहै ॥ ऐसी सामर्थ्यवाला पद किसकों कहे है ऐसा पूछे तौ श्रवण कर ॥ *सुप्तिङ्न्तं पदं*ऐसे व्याकरणमें पदका लक्षण कऱ्या है । वा । अर्थवाला जो वर्ण । वा । वर्णोंका समुदाय सो पद कहिये है ॥ ऐसे पदोंमें । वा । पदोंके समुदायरूपवाक्यमें लक्षणा होवे है ॥ सा लक्षणा किसकों कहे हैं ऐसा पूछे तौ श्रवण कर ॥ 'वक्ताके तात्पर्यकी जो अनुपपत्ति है, सो

लक्षणाका बीज कहिये है औ ❋शक्य सम्बन्धो लक्षणा❋यिह लक्षणाका लक्षणहै॥सो लक्षणा लक्षितलक्षणा औ केवल लक्षणाभेदते दो प्रकारकीहैं॥❋शक्यका जो परंपरा सम्बन्ध है❋सो लक्षित लक्षणा कहियेहै॥जैसे 'द्विरेफो रौति' या वाक्यमें द्विरेफ पदकी भ्रमर पदद्वारा स्व शक्य अवयविता वाच्यता सम्बन्धरूप लक्षित लक्षणाहै॥ इस लक्षित लक्षणामें प्रश्न उत्तररूप वहुतही विचार है परन्तु मुमुक्षुजनोंकों अनुपयोगी होणेते लिख्या नहीं और'शक्य साक्षात् सम्बन्धो❋केवल लक्षणा❋ सो केवल लक्षणा जहति अजहति भाग त्याग भेदते तीन प्रकारकी हैं॥तहां❋शक्यार्थ परित्यागेण तत्सम्बध्यऽर्थांतरे वृत्तिःजहति लक्षणा ❋ अर्थ यिह ॥ पदके शक्यार्थरूप वाच्यार्थके सम्बन्धिविषे जो पदका सम्बन्ध है ॥ सो जहति लक्षणा है ॥ जैसे ' गंगायां ग्रामः दध्यानय, या वाक्यका गंगाके प्रवाहविषे ग्राम है ॥ तूं दधि लै आउ यिह शक्ति वृतिसें अर्थ है ॥ सो सम्भवे

नहीं ॥ काहेते गंगाके प्रवाहविषे तृणकाभी ठहरे नहीं ग्रामका ठहरनातो कैमुत्यकही है अर्थात्यिह निश्चतही है औ वक्ताके तात्पर्यकीभी अनुत्पत्ति है ॥ काहेते वक्ताका तात्पर्य गंगाके तीरमेंहै॥यांते गंगापदकी स्व शक्य संयोग सम्बन्धरूप जहति लक्षणा तीरमें है और ❋ शक्यार्थ परित्यागेण तत्सम्बध्यर्थान्तरे वृत्ति अजहति लक्षणा❋ अर्थ यिह ॥ पदके शक्यार्थकों ना परित्याग करके शक्यार्थके संबन्धिविषे जो संबन्ध है ॥ सो अजहति लक्षणा कहिये है ॥ जैसे श्रोणो धावति या वाक्यका लाल रंग धावन करे है यिह शक्ति वृति करके अर्थ है ॥ सो संभवे नहीं ॥ काहेते लाल रंगकों गुणरूप होणेते तामें धावणका असंभव है औ वक्ताका तात्पर्यभी लाल रंग धावणमें नहीं है ॥ काहेते वक्ताका तात्पर्य लालरंगसंयुक्त अश्व धावनमें है ॥ यांते श्रोणपदकी स्व शक्य तादात्म्य संबन्धरूप अजहति लक्षणा अश्वमें है और ❋ शक्यैक दे-

श परित्यागेणैक देशे वृत्तिः भागत्याग लक्षणा ❋ अर्थ यिह ॥ पदके शक्यार्थरूप वाच्यार्थके एक देशकों परित्याग करके एक देशमें जो संबन्ध है ॥ सो भाग त्याग लक्षणा कहिये है ॥ जैसे सोयं देवदत्तः या वाक्यमें कार्तिक काल औ अमृतसर देशविशिष्ट व्यक्ति यिह सकार पदका अर्थ है औ सकार उत्तर प्रथमाविभक्तिका अभेद अर्थ है ॥ माघ काल औ हृषिकेश देशविशिष्ट व्यक्ति यिह अयं पदका अर्थ है ॥ यकार उत्तर प्रथमा विभक्तिका अभेद अर्थ है ॥ देवदत्त पदका स्थूल शरीर अर्थ है ॥ देवदत्त पद उत्तर प्रथमा विभक्तिका एकत्व संख्या अर्थ है ॥ कार्तिक काल औ अमृतसर देश विशिष्ट व्यक्तिके अभेदवाली माघ काल औ हृषिकेश देशविशिष्ट व्यक्तिके अभेदवाला एक देवदत्त है ॥ यिह सोयं देवदत्तः इस वाक्य समुदायका अर्थ है ॥ सो संभवे नहीं ॥ काहेते कार्तिकके महीनेका तथा माघके महीनेका

॥१११॥

परस्पर विरोध है ॥ तैसे अमृतसर देशका तथा हृषिकेश देशका परस्पर विरोध हैं एकता संभवे नहीं औ वक्ताका तात्पर्यभी इनोंकी एकतामें नहीं हैं ॥ काहेते वक्ताका तात्पर्य व्यक्तिमात्रके अभेदमें है ॥ यांते विरोधि देश काल इतने भागकों त्याग कर व्यक्ति मात्रमें स्व शक्य तादात्म्य विशेषता संबन्धरूप भाग त्याग लक्षणा है यद्यपि दृष्टांतमें तो व्यक्तिरूप लक्ष्यकों अन्य प्रत्यक्ष प्रमाण करके अवगत होणेते लक्ष्यणा संभवे है ॥ तद्यपि द्राष्टांतमें चैतन्य कों ❀ तंत्वौपनिषदं ❀ इस श्रुतिसाथ विरोध आनेते प्रमाणांतर करतो अवगत कहना संभवे नहीं किंतु ❀ सत्यं ज्ञानमनंतंब्रह्म ❀ इत्यादि शब्द प्रमाण करही कहना होवेगा॥इसमेंभी यिह प्रष्टव्य है ॥ शक्ति वृत्तिसें अवगत है । वा । लक्षणा वृत्तिसें अवगत है॥ शक्तिसें कहे तो ❀ यतोवाचो निवर्तंते अप्राप्यमनसासह ❀ इस श्रुति साथ विरोध होवेगा ॥ लक्षणासें कहे तौ ल-

॥११२॥

क्षणाभी अवगतमें होवे है ॥ यांते शुद्ध पदसें अवगत कहना होवेगा॥शुद्ध पदसेंभी पूर्व उक्तश्रुतिसाथ विरोध आनेते शक्तिसें तो अवगत कहना संभवे नहीं ॥ किंतु लक्षणासेंही कहना होवेगा॥सो लक्षणा अवगतमें होणेते साक्षी पदसें अवगत कहना होवेगा॥इस प्रकारसें लक्षणा पक्षमें अनवस्था दोष आवे है॥ यांते जैसे उत्पन्नो घटः नष्टो घटः इन पदोंमें लक्षणासें विना ही शक्ति वृत्तिसें घटमात्रका बोध होवे है औ घटाकाशका बोध होवे नहीं॥ तैसे तत्वमस्यादि वाक्योंमें लक्षणासें विनाही शक्ति वृत्तिसें शुद्ध चैतन्यमात्रका बोध होवे है ॥ माया अविद्याका तथा माया अविद्याकृत धर्मोका बोध होवे नहीं ॥ इस प्रकारसें वेदांत परिभाषाकी टीकामें धर्मराजके पुत्र रामकृष्णने ॥ लक्षणाका खंडन करके शक्तिसें लक्ष्यार्थका बोध मान्या है॥ सो संभवे नहीं॥ काहेते जो शाक्त पदसें लक्षणा ते विनाही शक्यार्थसें न्यून । वा । अधिक अ-

॥११२॥

र्थका बोध होवे तौ प्रत्येक पदसें सर्व अर्थका बोध हुया चाहिये औ लक्षणा माननेमें जो दोष कह्या ताका यिह समाधान है ॥ सो अवगत वस्तु तीन रीतिसें होवे है ॥ एकतो प्रमाणसें होवे है ॥ औ द्वितीय दोषसें होवे है औ तृतीय स्वप्रकाशसें होवे है॥स्वप्रकाश स्फुरणरूपसें तत्पद्के लक्ष्यार्थरूप चेतनका अवगत प्रसिद्ध है ❀ अहमस्मि अहंभामि अहं अप्रियो न भवामि ❀ ऐसे त्वंपदके लक्ष्यार्थका अवगत प्रसिद्ध है ॥ यांते तत्त्वमस्यादि वाक्योंमें लक्षणा संभवे है (शंका) शक्यका शुद्धरूप लक्ष्यसें संबन्ध माननेंसें शुद्ध विकारी होवेगा औ संबन्धके न माननेसें शक्यसंबन्धरूप लक्षणा सिद्ध होवे नहीं (उत्तरः) हे शिष्य शक्यमें दो भाग है एक तो उपाधिरूप है औ द्वितीय उपहितरूप है ॥ उपाधि कल्पित होणेते उपाधिका अधिष्ठानता संबन्ध है ॥ जैसे कल्पित सर्पके अधिष्ठानता संबन्धसें रज्जु विकारी होवे नहीं ॥ तैसे

कल्पित उपाधिके अधिष्ठानता संबन्धसें शुद्ध विकारी होवे नहीं औ शुद्धका अपणेमें तादात्म्य है॥सोभी शुद्धकों विकारी करे नहीं॥काहेते आपका अपणेमें सारेही तादात्म्य सम्बन्ध होवे है(अन्य शंका)तत्त्वं पद अभेदरूप अखंडार्थक है ।वा। भेदरूप अखंडार्थक है ॥ प्रथम पक्ष कहें तौ पुनरुक्ति दोष आवे है औ द्वितिय पक्ष कहें तो अभेद सिद्ध होवे नहीं (समाधान) उपाधियों करके तो लक्ष्यार्थोंका भेद है यांते पुनरुक्ति नहीं औ उपाधियोंके अपसरणते लक्ष्यार्थोंका अभेद होणे ते तत्त्वमस्यादि' वाक्योंमें लक्षणा संभवे है॥ तत्पदका सर्वज्ञतादि धर्मोंसहित ईश्वर अर्थ है औ तत्पद उत्तर प्रथमाविभक्तिका अभेदार्थ है औ त्वंपदका अल्पज्ञतादि धर्मोंसहित जीव अर्थ है औ त्वपद उत्तर प्रथमा विभक्तिका एकत्व अर्थ है औ असिक्रियाका है अर्थ है॥ यांते सर्वज्ञतादि धर्मोंसहित ईश्वरके अभेदवाला अल्पज्ञतादि धर्मोंसहित तूं एक है॥ यिह ❀ तत्त्वमसि ❀ इस

महावाक्य समुदायका अर्थ है ॥ सो संभवे नहीं ॥ काहेते सर्वज्ञता अल्पज्ञतादि धर्मोंका विरोध है एकता बने नहीं औ वक्ताके तात्पर्यकीभी अनुपपत्ति है ॥ काहेते माया अविद्या तथा माया अविद्याकृत सर्वज्ञता औ अल्पज्ञताकों त्याग कर चेतनमात्रके अभेदमें वक्ताका तात्पर्य है ॥ यांते माया अविद्या तथा माया अविद्याकृत सर्वज्ञता अल्पज्ञता इतने भागकों त्यागकर ॥ चेतन मात्रमें स्व शक्य तादात्म्य अधिष्ठानता संबन्धरूप भाग त्याग लक्षणा है ॥ सोभी उभै पदोंमें है एकमें संभवे नहीं ॥ काहेते सुद्धका विसिष्टसें अभेद ना होणेते ❀ तात्पर्य यिह ॥ जैसे घट मठरूप उपाधिके अपसरणते घट मठ उपहित आकाशका उद्देश विधेयभावते विनाही महाकाशते अभेद होवे है ॥ तैसे हे शिष्य माया अविद्यारूप उपाधियोंके अपसरणते माया अविद्या उपहित चैतन्यमात्रका उद्देश विधेयभावते विनाही शुद्ध चैतन्यसें अभेद हो-

वे है ॥ यांते तत्पदके लक्षार्थके अभेदवाला त्वंपदका लक्ष्यार्थरूप तूं चैतन्य उद्देश विधेय-भावते विनाहीं शुद्धचैतन्यरूप हैं ॥ यिह ❋तत्त्वमसि❋ इस महावाक्यका अर्थ है ॥ ऐसे ही ❋ अहं ब्रह्मास्मि ❋अयमात्मा ब्रह्म❋ प्रज्ञान मानंद ब्रह्म ❋ इन वाक्योंका अर्थ है ॥२४॥ ❋ चौपाई ॥ तत्सदृश्य अर्थ सु यांको होऊ ॥ तामें शंका नहिं मम कोऊ ॥ तथापि उपाधि त्यागन रीता ॥ तामें शंका होवित चीता ॥ २५ ॥ करसें जष्टि त्यागित नर जैसे ॥ उपाधि त्यागन है किम्र तैसे ॥ किम्रवा कोऊ आन प्रकारा ॥ यिह शंका है मम उर आरा ॥ २६ ॥ शुद्धरूप पुना मोहि बखाना ॥ यांमें शंका होवित भाना ॥ व्यापक शुद्ध चित्त श्रुति गावे ॥ मम गत परिछिन्नता दिखावे ॥२७॥ कैसे होवित गुरो अभेदा ॥ अस शंकाका कीजे छेदा॥२८॥ ❋अर्थस्पष्ट ॥ ❋गुरुरुवाच । चौपाई । रज्जु सर्पका त्यागन जैसे ॥ उपाधिका त्यागन है तैसे ॥ दुसरका व सुन समाधाना ॥

श्वेतकेतुप्रति पिता बखाना ॥ २९ ॥ ❀ टीका ॥ हे शिष्य जैसे रज्जुसें सर्पका भेद ज्ञान करके मिथ्या निश्चय होवे है ॥ यिहही सर्पका त्यागन है ॥ तैसे हे शिष्य अद्वयानंद प्रत्यगूसें उपाधि-योंका भेद ज्ञान करके उपाधियोंका मिथ्या निश्चय होवे है ॥ यिहही उपाधिका त्यागन है औ दूसरी शङ्काका समाधान 'व' कहीये अब सुन जो शङ्का तैंने करी है ॥ सोई शङ्का उद्दालक ऋषिके पुत्र श्वेतकेतुने अपणे पिता उद्दालकपास करीसी ॥ ता शंकाका छान्दोग्य उपनिषत्के षष्टे अध्यायमें ॥ पिता उद्दालक अपणे पुत्र श्वेतकेतुप्रति जो उत्तर कथन करा है ॥ सोई उत्त-र तुमारी शंकाका मैं करता हूं ॥ तूं चित्तकों एकाग्र कर श्रवण कर ॥ हे शिष्य जबी पुरुष मृत्युकों प्राप्त होवे है ॥ तबी ता पुरुषके प्रथम नेत्रादि इंद्रिय वाक् आदि इंद्रियसहित मनमें लय होवे हैं औ मन प्राणमें लयहोवे है औ प्राण सूक्ष्म पञ्चभूतोंसहित जीवात्मामें लय होवे हैं

औ जीवात्मा मायाविशिष्ट ब्रह्ममें लय होवे है॥ यांते तुम ब्रह्महों और नित्यही सु-
षुप्ति अवस्थामें ता ब्रह्मसें अभेद भावकों प्राप्त होतेहों औ परिछिन्नतादिकभी केवल
शरीर उपाधि करके है वास्तवसें तूं शुद्ध ब्रह्मरूपही हैं ॥ यांते परिछिन्न देहादिकोंविषे
अभिमानकों त्याग कर अपणे शुद्धरूपकों स्मरण करो (शंका) हे भगवन् जबी सर्व
जीव सुषुप्ति अवस्थाविषे ब्रह्ममें एकताकों प्राप्त होवे हैं॥ तबी सर्व पुरुषोंने अनुभव करा
चाहिये॥ जो हम ब्रह्मके साथ अभिन्न भये हैं औ अभेद तो होवेहै परन्तु ज्ञान होवे नहीं
ऐसे कहों तौ यामें अनुकूल दृष्टान्त मेरेतांई आप निरूपण करो॥ ऐसे प्रश्नकों श्रवण करके
पिता द्वितीय अभ्यासकों कहे है॥ हे पुत्र जैसे नाना वृक्षोंके रसोंकों मक्षिका प्राप्ति करे है परन्तु
रसोंकों यिह ज्ञान होवे नहीं जु हम अमुक वृक्षोंके रस हैं और जैसे किसी पुरुषके गृहमेंही

सुवरणादि निधि मृत्तिकासें आवृत हुई होवे ॥ ता पुरुषकों निधिका ज्ञान होवे नहीं ॥ तैसेही तुम ब्रह्ममें नित्यही सुषुप्ति अवस्थाविषे एकताकों प्राप्त होतेहों परन्तु अज्ञानके सद्भावसें तुमारेकों हम ब्रह्मसें अभिन्न भये हैं यिह ज्ञान होवे नहीं तथा ज्ञानके साधन मनादिकोंके अभाव होनेतेभी सुषुप्तिमें ज्ञान होवै नहीं और अविद्या कर्म्म वासनाके अनुसार उठकर सिंह व्याघ्र बृक वराह कीट पतङ्ग दंशमशकादिक स्व स्व शरीरोंकों सर्व जीव प्राप्त होवे हैं ॥ यांते जा अपने ब्रह्मरूपकों न जानकर अनेक क्षुद्रयोनियोंकों पुरुष प्राप्त होवे है ॥ ऐसा शुद्ध ब्रह्म तुमारा स्वरूप है ताकों निश्चय करो (शंका) हे भगवन् सुषुप्तिमें तथा मरण अवस्थाविषे एकताकों तो जाना परन्तु जैसे पुरुष ग्रहसें वाहिर आवे है तथा ताकों यिह स्मरण होवे है हम गृहसें बाहिर आवे हैं तैसे सुषुप्ति अवस्थाविषे ब्रह्मके साथ हम अभिन्न भयेथे अब ता ब्र-

ह्मसेंही हमने आगमन करा है ॥ ऐसा जाग्रतमें स्मरण हुया चाहिये औ होवे नहीं यांते मैं ब्रह्म नहीं हूं ॥ या शंकाका समाधानरूप तृतीय अभ्यासकों पिता कहे है ॥ हे पुत्र जैसे प्राणियोंके कर्म्मों कर प्रेरेहुए मेघ समुद्रसें जलकों ग्रहण करके अन्य देशमें गेरे हैं ॥ सो जल नदीरूपसें सागरके सन्मुख गमन करे है ॥ ते नदीरूप जल अपणे वास्तव समुद्ररूपकों जाने नहीं ॥ तैसे तुमभी अद्वितीय ब्रह्मरूप हों केवल उपाधि कर परिछिन्न भावकों तुमने धारण कराहै॥यांते देहादि उपाधिके अभिमानकों त्याग कर ॥अपने शुद्धरूपकों निश्चय करो तुम शुद्ध निर्विरकारूपहों (शङ्का) हे भगवन्‌ नदीयोंके दृष्टान्तविषे मेरेकों यिह संशय है ॥ नदीयां समुद्रमें लय भावकों प्राप्त हुई यां नाशकों प्राप्त होवे हैं ॥ तैसे जीवभी नाश होवेगा ॥ता नाशी जीवकी ब्रह्मसें एकता संभवे नहीं और जो ब्रह्मसें उत्पत्तिताकों जीवके सत्यत्वमें हेतु अङ्गीकार करों तौ

॥११६॥

नामरूप प्रपञ्चभी सत्यरूप ब्रह्मसें उत्पन्न भया है सो प्रपञ्चभी सत्य हुया चाहिये ॥ या शङ्काका समाधानरूप चतुर्थअभ्यासकों पिता कहे है ।।हे श्वेतकेतो जैसे या वृक्षके मूल देशमें कुठारादिकोंके प्रहार करनेसें रस निकसे है तथा मध्यदेशमें प्रहार करनेसेंभी रस निकसे है तथा अग्रदेशमें प्रहार करनेसेंभी रस निकसे है ॥ यांते सो वृक्ष जीव सहित निश्चय होवे है तथा सो वृक्ष शरीरवाला जीव जबी एक शाखाका त्याग करे है ॥ तबी सा शाखा शुष्क होय जावेहे औ द्वितीय शाखाके त्याग करनेसें द्वितीय शाखा शुष्क होय जावे है और जबी सर्व वृक्ष शरीरका त्याग करेहै ॥ तबी सर्व वृक्ष शुष्क होय जावेहै ॥ तैसे यिह जीवात्मा मनुष्य देहादिकोकों त्यागता हुया द्वितीय देहोंकों ग्रहण करेहै कबीभी जीवात्माका नाश होवे नहीं ॥ केवल कर्म्मोंकर प्राप्त स्थूल शरीरकाही नाश होवेहे ॥ जैसे महाकाशकीही घटाकाश घटरूप उपाधितें संज्ञा होवे है औ घ-

टाकाश उत्पन्न होवे नहीं ॥ तैसे सुद्धब्रह्मकीही अविद्यारूप उपाधिते जीवसंज्ञा होवे है औ जीव उत्पन्न होवे नहीं ॥ यांते उत्पत्ति नाशते रहित यिह जीवात्मा ब्रह्मरूपहै औ ब्रह्मसें उत्पन्न भया जो नामरूप जगत् सो उत्पत्तिनाशवाला होणेते अनित्य है॥यांते रज्जुसर्पकी न्यांई मिथ्या होणेते सत्य नहीं॥तात्पर्ययिह॥जैसे रज्जुका विवर्त सर्प है तैसे ब्रह्मका विवर्त जगत् है ❀ अतात्विको अन्यथा भावो विवर्तः ❀ अर्थयिह ॥ सत्य अधिष्ठाननेंही मिथ्या नामरूपसें जो प्रतीत होना है सो विवर्त कहिये है ॥ इस प्रकारसें नामरूपजगत्कों ब्रह्मका विवर्त होनेते नामरूपात्मक जगत् मिथ्याहै और जो ब्रह्मका जगत् परिणामि होता तौ जगत् सत्यभी होता ॥ काहेते ❀ तात्विको अन्यथा भावः परिणामः❀अर्थयिह ॥ अधिष्ठाननेही वास्तवसें जो अन्यथास्वरूप होना है सो परिणाम कहिये है ॥ जैसे दुग्ध वास्तवसें दधिरूपताकों प्राप्त होवेहै ॥ ता दुग्धसें भिन्नही दधि

होवेहै ॥ तैसे निरवयव ब्रह्मका यिह जगत् परिणामि वने नहीं औ विवर्ततो निरवयव आका-
शमेंभी नीलरूप तथा कटाहाकाररूपसें होवेहै ॥ यांते जैसे रज्जुमें सर्प औ आकाशमें नीलता-
दिक मिथ्याही उत्पन्न हुए प्रतीत होवेहैं ॥ तैसे ब्रह्ममें यिह जगत् मिथ्याही उत्पन्न हुया प्रतीत
होवेहै ॥ यांते हे श्वेतकेतो तुम अपने अद्वितीय भावकों स्मरण करो (शंका) हे भगवन् या
सूक्ष्म ब्रह्मसें यिह स्थूल प्रपंच कैसे उत्पन्न होवे है अर्थात् तिसकी उत्पत्ति संभवे नहीं तथा
ब्रह्म या स्थूल प्रपंचका आधारभी कैसे है ॥ अर्थात् आधारभी बने नहीं ॥ काहेते स्थूल मृत्ति-
कासेंही घट उत्पन्न होवे है ॥ परमाणुसें घटकी उत्पत्ति देखनेमें आवे नहीं तथा सूक्ष्म परमाणु-
के आश्रित होयकर घटस्थितभी होवे नहीं किंतु स्थूल मृत्तिकामेंही स्थित होवेहै ॥ यांते सूक्ष्म
ब्रह्म जगत्का कारण तथा आश्रय वनेनहीं ॥ या शंकाका समाधानरूप पंचम अभ्यासकों पिता

कहेहै ॥ हे पुत्र या वृक्षसें एक फलकों लेआवो ॥ श्वेतकेतु लेआवत भया ॥ पिता कहेहै या फ-
लकों भेदन करो ॥ श्वेतकेतु कहे है हे भगवन् या फलको भेदन कराहै ॥ पिता कहे है या भेद न
करे फलमें तुम क्या देखतेहों ॥ पुत्र कहे है हे भगवन् सूक्ष्म बीज प्रतीत होवेहैं ॥ पिता कहे है
हेपुत्र इन बीजोंमेंसें एक बीजकों भेदन करो ॥ पुत्रने भेदनकरके कहा हे भगवन् बीज भेदन करा-
है ॥ पिता कहे है भेदन करे बीजमें तुम क्या देखते हों ॥ पुत्र कहे है हे भगवन् मेरेकों किंचित्भी
प्रतीत होवे नहीं ॥ पिता कहेहै हे पुत्र महान वट वृक्ष या सूक्ष्म वट बीजमें स्थितहै ॥ जबी ता
बीजमें वृक्षका अभाव माने तौ जैसे वंध्या पुत्रसें किंचित उत्पन्न होवे नहीं ॥ तैसे ता सूक्ष्म
बीजसेंभी वृक्ष उत्पन्न नहीं होवेगा ॥ यांते सूक्ष्म रूपसें महान् वृक्ष उत्पत्तिसें प्रथम ता बीज-
में स्थित हुया तासेंही उत्पन्न होवे है ॥ तैसे या सूक्ष्म ब्रह्मविषेभी यिह जगत सूक्ष्म रूपसें

स्थित हुया तासेंही उत्पन्न होवे है और हे पुत्र यिह हमारा समाधान तुमारी शंकाकों मान कर है॥वास्तवसें तो महान् आकाशादिकोंसेंभी ब्रह्म महान् है औ सत्तारूपसें घटादिरूप सर्व- जगत्में व्यापक है ॥ सूक्ष्मरूपसें यो श्रुतिमें कथन करा है ॥ सो केवल दुर्लक्ष्य अभिप्रायते करा है ॥ अल्प या कहनेमें श्रुतिका तात्पर्य नहीं ॥ जैसे सूक्ष्म वस्तुका दर्शन सावधान हुए विना होवेनहीं ॥ तैसे सावधान हुए विना ब्रह्मका प्रत्यग्रूपसें दर्शन होवे नहीं ॥ यांते तुम शुद्ध ब्रह्मरूपहों (शंका) हे भगवन् प्रत्यग् ब्रह्म जब सर्वत्र व्यापक है तौ सर्व जगत्में सर्वकों अपना आत्मारूपसें प्रतीत हुया चाहिये औ सूक्ष्म होणेसें दर्शनके अयोग्य कहों तौ ता ब्रह्मका साक्षात्कार किसीकोंभी न होनेसें॥संसार भ्रम किसीकाभी निवृत्त नहीं हुया चाहि- ये ॥ यांते मैं ब्रह्म कैसे हूं अर्थात् मैं ब्रह्म नहीं हूं या शंकाका समाधानरूप षष्टाअभ्यासकों पिता

कहेहै ॥ हे पुत्र या लवणकों रात्रिमें जलविषे गेर कर प्रातःकालमें मेरे पास तुमने प्राप्त हो-
ना ॥ श्वेतकेतुने तैसे करा ॥ पिता कहे हैं हे पुत्र जो लवण रात्रि विषे ॥ तुमने जलमें गेराथा
॥ ताकों निकास लेआवो ॥ श्वेतकेतुने जलमें हस्तकों पाय कर निकासने वास्ते बहुतही परिश्रम
करा परन्तु जलसें बाहिर लवण निकसा नहीं ॥ पुना पिता कहे है हे पुत्र जलके ऊपर देशसें
आचमन करो ॥ श्वेतकेतुने जबी अचमन करा तबी पिता पूछे है यामें क्या है ॥ पुत्र कहे है
भगवन् लवण है ॥ पिता कहेहै हे पुत्र या जलके मध्यदेशसें आचमन करो ॥ पुत्रने जबी
मध्य देशसें आचमन करा ॥ तबी पिता पूछे है पुत्र यामें क्या है ॥ श्वेतकेतु कहे है भगवन्
लवण है ॥ पिता कहे है हे पुत्र अब नीचे देशसें आचमन करो ॥ जबी पुत्रने नीचे देशसें आ-
चमन करा ॥ तबी पिता पूछे है हे पुत्र यामें क्या है ॥ पुत्र कहे है भगवन् लवण है ॥ पिता

कहें है हे पुत्र जैसे या जलमें लवण हैभी परन्तु तुमारेकों इन नेत्रोंकर प्रतीत होवे नहीं ॥ तैसे सर्वमें व्यापक ब्रह्मभी है परन्तु वहिर्मुख इन्द्रियोंकर प्रतीत होवे नहीं और जैसे लवणका रस-नाकरहि ज्ञान होवेहै ॥ तैसे शुद्ध बुद्धिकरकेहि आत्माका ज्ञान होवेहै ॥ यांते श्रद्धासहित शुद्ध बुद्धि करके ॥ अपने शुद्धस्वरूपकों निश्चयकरो ॥ ब्रह्मकों कहीं दूर नहीं जानो या शरीरमेंही सा-क्षीरूपसें स्थितहै॥जैसे जलसें भिन्नही लवण है॥तैसे देहादिकोंसें पृथक्ही प्रत्यगूब्रह्म है ॥ यांते देहादिकोंसें भिन्न शुद्ध ब्रह्मरूप तुम हो (शंका) हे भगवन् नेत्रादिकोंके अविषय स्वभाव ब्रह्म-रूप आत्माके प्रत्यक्षमें कोई उपाय कथन करो ॥ जा उपायसें मैं शीघ्रही ब्रह्मरूप आत्माकों जा-नकर कृतार्थ होवो॥या शंकाका समाधानरूप सप्तम अभ्यासकों पिता कहेहै ॥ हे पुत्र गंधारदेश-विषे रहनेहारे किसी पुरुषकों ॥ चौर पुरुष पकरकर वनमें लेआवते भये॥ता पुरुषके नेत्रोंको बा-

धके ता बनमें ताके भूषण वस्त्रोंकों उतारकर छोडते भये ॥ सो गंधारदेशका पुरुष ता बनविषे महान् दुःखकों प्राप्त हुया रुदन करेहै ॥ कबी पूर्व मुखकरके रुदन करेहै ॥ कबी उत्तर मुखकरके रुदन करेहै ॥ कबी नीचे मुखकरके रुदन करे है औ मुखसें यिह शब्द कहे है मै गंधारदेशमें रहणेवाले पुरुषकों चौरोंने नेत्रादिक बांधके तथा बस्त्र भूषण उतारकर या कठिन वनमें छोड दिया है ॥ या वनमें मेरेकों सिंह व्याघ्र सर्पादिक दुःख देवेहैं ॥ ऐसे ऊचे पुकारते पुरुषकों दुःखी देखकर कोई कृपालु पुरुष ॥ ताके नेत्रोंके बन्धन खोलकर यिह कहता भया ॥ हे पुरुष जा गन्धारदेशसें तूं आयाहै ॥ या मार्गसें तुम अपने गंधारदेशकों चले जावो ॥ या दिशामेंही गंधार है ॥ सो पुरुष ता दयालुके उपदेशकों श्रवणकर ॥ अपने गंधारदेशमें प्राप्त भया ॥ कैसाभी सो पुरुषथा जो उपदेशके ग्रहण करणेमें समर्थ तथा आप बुद्धिमान् था ॥ सो अपने देशकों प्राप्त हो

यके परम आनंदकों प्राप्त भया ॥ हे श्वेतकेतो ऐसेही तुमारेकों कामक्रोधादि चौरोंने ॥ शुद्धब्रह्म स्वरूप स्व देशसें लेआयके संसाररूपी बनमें प्राप्त कराहै ॥ तिन काम क्रोधादि चौरोंने तुमारे साक्षीरूप नेत्रोंकों बांधके महान् दुःखकों प्राप्त कराहै ॥ यांतेही तूं संसाररूपी बनमें दुःखकों प्राप्त भयाहै ॥ ब्रह्मवेत्ता गुरुके महावाक्य उपदेशरूप हस्त करके अज्ञानरूप दृढ़बंधनकी निवृत्ति कर ॥ तुमभी गंधारदेशकी न्यांई अपने ब्रह्मरूपदेशकों प्राप्त होवों ॥ गुरुका उपदेशही ब्रह्मप्राप्तिमें द्वारहै ॥ ताके सहकारी शिष्यकी बुद्धि तथा आत्मजिज्ञासा यिह दोनों हैं ॥ गुरुके उपदेशकों श्रवण करके आत्मनिश्चयवाला पुरुष ब्रह्मस्वरूपकों प्राप्तहोवेहै ॥ ता महात्मा ज्ञानीका तब पर्यन्त शरीर प्रतीत होवेहै ॥ जबपर्यन्त प्रारब्धहै ॥ भोगकर प्रारब्धके निवृत्त भये ॥ सो विद्वान् विदेह कैवल्यकों प्राप्त होवे है ॥ जा ब्रह्ममें विद्वान् अभिन्न होवेहै ॥ ऐसा शुद्ध ब्रह्म-

हीं तुमारा स्वरूप है (शंका) हे भगवन् सुषुप्तिकी न्यांई मरणकालविषे ॥ जैसे अज्ञानी ब्रह्मसें अ-भिन्न होवेहै ॥ तैसे विद्वान्‌भी बह्मसें अभिन्न होवे है ।वा। और किसी रीतिसें ब्रह्मके साथ अभिन्न होवेहै॥ या शंकाका समाधानरूप अष्टमअभ्यासकों पिता कहेहै॥ हे पुत्र मरणकालविषे अज्ञानी पुरुषके समीप आयकर संबन्धि पूछे हैं ॥ तुम मैं पुत्रकों जानतेहों औ मैं पिताकों जानतेहों ॥ सो पुरुष तब पर्यन्त जानता है ॥ जब पर्यन्त ताके वाग् आदिक इन्द्रिय मनमें लय भावकों न-ही प्राप्तभये तथा मन प्राणमें प्राण जीवमें जीव परमात्मामें लय भावकों नहीं प्राप्तभया ॥ जबी ताके वाग् आदिक सर्व लयभावकों प्राप्त होवेहैं ॥ तब किंचितभी जाने नहीं ॥ ब्रह्मप्राप्ति पर्य-न्ततो या क्रमसें ज्ञानी औ अज्ञानीकी समान गतिहै ॥ विलक्षणता यिह है जो अज्ञानी पुरुष है ॥ सो मरणकालमें सुषुप्तिकी न्यांई ब्रह्ममें लय भावकों प्राप्ततो होवे है परन्तु ज्ञानके अभाव

सें ताकी अविद्या निवृत्त होवे नहीं तथा कर्म वासनाभी सुषुप्तिकी न्यांई सूक्ष्मरूपसें स्थित होवे है ॥ यांते सो अज्ञानी पुरुष अविद्या काम कर्मके आधीन हुया पुनः जन्ममरणकों प्राप्त होवे है औ ज्ञानी पुरुषकी अविद्याका ब्रह्मज्ञानकर नाश होवे है ॥ अविद्याके नाश होणेते ता अविद्याके कार्य वासना कर्म संशय विपर्यादि सर्व निवृत्त होवे हैं तथा ता ज्ञानीके प्राणादिक परलोककों गमन करें नहीं ॥ किंतु ब्रह्ममें लयभावकों प्राप्त होवे हैं॥हे श्वेतकेतो ज्ञानी या शरीरकों त्यागके जा ब्रह्मसें अभिन्न होवेहै ॥ ऐसे शुद्ध ब्रह्मरूपकों प्राप्त होवों सोई तुमारा स्वरूप है (शंका) हे भगवन् जबी अज्ञानी पुरुषकों मृत्यु परलोकविषे प्राप्त करे हैं ॥ तबी ज्ञानीकोंभी किसवास्ते मृत्यु परलोकविषे नहीं लेजाता ॥ यामें मेरेतांई कारण कहों । वा । अज्ञानीभी मरणकालविषे ब्रह्मकों प्राप्त हुया परलोकमें सुख दुःखकों किसवास्ते प्राप्त होवेहै ॥ या शंकाका समाधानरूप अं-

त्यका नवम अभ्यासकों पिता कहेहै ॥ हे श्वेतकेतो जैसे एक पुरुष चौरथा दूसरा साधुथा ॥ तिन दोनोंकों राजाके किंकरोंने चौर जानके बलात्कारसें पकड़ लीया ॥ राजाके समीप प्राप्त करके किंकरोंनें कहा ॥ यिह दोनों चौर हैं इनोंनेही धनकी चोरी करी है ॥ चौर कहेहै मैंने चोरी नहीं करी ॥ साधु पुरुषभी कहे हे मैंने चोरी नहीं करी ॥ राजाके मंत्री कहे है जबी तुमोने चोरी नहीं करी तो या तप्तपरशुकों हस्तसें ग्रहण करो ॥ जबी तुम चोर नहीं होवोगे ॥ तव तुमारा हस्त दग्ध नहीं होवेगा ॥ प्रथम चौरने अपने कर्मकों प्रगट न करा औ मिथ्या संभाषण करके तप्तपरशुकों ग्रहण करा ॥ तबी ता चौरका हस्तदाहकों प्राप्त भया ॥ पुना राजाके भृत्योंने ताकों चौर जानकर अनेक प्रकारका दंड दीया ॥ साधु पुरुषकों तप्तपरशु ग्रहणवास्ते जबी कहा ॥ तबी ता साधुका हस्तदाह भया नहीं ॥ ताकालमें राजाने तथा राजाके भृत्योंने ता सा-

धुपुरुषसें क्षिमा कराई तथा अपना अपराध क्षिमा करायके ता साधुका बहु सन्मानसें पूजन करता भया ॥ तैसेही अज्ञानी पुरुष अपने शुद्धरूपकों न जानता हुया कहेहै ॥ मैं ब्रह्म नहीं हूं मैं सुखदुःख जन्ममरनवालाहूं ॥ यिहही चोरीरूप स्वकर्मका छिपाना है ॥ जैसे ता चौरके प्रथम हस्तका दाह भया पश्चात् राजाके भृत्योंने वाधके दुःख दिया ॥ तैसें यिह अज्ञानी प्रथम मृत्युसें पीडाकों प्राप्त होवेहै॥पश्चात चौरासी लक्ष योनिरूप बन्धनकों प्राप्त हुआ दुःखकों प्राप्त होवेहै ॥ जैसे साधु पुरुषकों किंचितभी दुःख होवे नहीं ॥ सर्वराजादिक ताका पूजनही करते भये॥ तैसे ज्ञानीपुरुषभी अपने शुद्ध स्वरूपमें निश्चयवाला हुया तथा सर्व विक्षेपसें रहित हुया ब्रह्मादिकों करकेभी पूज्य होवेहै ॥ यांते अज्ञानी पुरुष अपने शुद्धरूपकों न जानकर ॥ अपने अज्ञान करकेही पुनः पुनः जन्ममृत्युकों प्राप्त होवेहै औ ज्ञानीतो शुद्ध सच्चिदानंद ब्रह्मकों अ-

पना स्वरूप जानकर पुनः जन्ममृत्युकों प्राप्त होवे नहीं ॥ जा ब्रह्मस्वरूपकों ज्ञानी प्राप्त होवे है ॥ हे श्वेतकेतो ❋ तत्वमसि ❋ अर्थयिह ॥ सो तुमारा अपना स्वरूपहै ❋ तात्पर्ययिह ॥ इस 'तत्त्वमस्यादि महावाक्योंमें तताऽऽदिपद अपर्याय होणेते तथा समान भक्तिवाले होणेते तथा भाग त्याग लक्षणाते एक अर्थके बोधक होणेते ॥ 'तत्त्वमस्यादि महावाक्य अखंडार्थ-के बोधक हैं ॥ संसर्गरूप वा विशिष्टरूप अर्थके बोधक नहीं ॥ तथाच शिष्टोक्ति ❋संसर्गोवा वि-शिष्टोवा वाक्यार्थोंनात्रसंमतः ॥ अऽैक रसत्वेन वाक्यार्थोंविदुषांमतः ❋ इत्यादि प्रमाणते त-त्वमस्यादि महावाक्योंका संसर्गरूप वा विशिष्टरूप अर्थ नहीं किंतु अखंडार्थहै ॥ यांते हे श्वेतकेतो तूं अखंडरूप हैं ॥ ताकों विस्मरण हुयेकों स्मरणकर कृतकृत्य भावकों प्राप्त होवों ॥ हे शिष्य ऐसे उद्दालक पिताके उपदेशसें श्वेतकेतु पुत्र कृतकृत्य भावकों प्राप्त होता भया ॥ तैसे

तुमभी इस उपदेशकों ग्रहण करके कृतकृत्य भावकों प्राप्त होवों ॥ २९ ॥ दोहा ॥ चिदानंद विभूआत्मा जाह बखानत वेद ॥ नानकपदको लक्षसो नसै जाह पिख खेद ॥ ३० ॥ इति श्री मदुदासीन वर्य्य विरक्त शिरोऽवतंस श्री ६ ब्रह्म कृष्ण पाद पथोजप्रैष्येण कुशल दासेन कृता विचार रत्नावलिः अखंडार्थ निरणयो नाम तृतीयो निवासः ॥ ३ ॥

श्रीगणेशायनमः ॥ १ॐ सत्य गुरु प्रसाद ॥ सवैया ॥ कलि काल कराल भयो वहुधा जन दीन मलीन भये दुःख रासी ॥ यम नेम सुचार विचार मिटी समके मन आसुर सम्पत वासी ॥ निज दास उवारण हेतु प्रभू धर नानक नाम सदा अबिनासी॥ जन जान दयो उपदेश भुवी हरि नाम जपाय कटी यम फासी ॥१॥ सोरठा ॥ सर्बाऽऽगम गत सार, सर्ब वेद वेद्यो प्रभुः ॥ सर्वेह जगदाऽऽधार, जन हित गुरु नानक भयो ॥२॥ दोहा ॥ पूर्ब उक्त प्रकार शिष्य, कृतकृत्यता पाइ

कर ॥ जो अर्थ निश्चय कीआ, अग्र कहे मनाय कर ॥३॥ टीका ॥ पूर्व उक्त प्रकारसें शिष्य कृतकृत्य भावको प्राप्त होइकर ॥ कृतकृत्यताका हेतु गुरुके मुषार्विंदते ❋ प्रज्ञानं ब्रह्म ❋ अहं ब्रह्मास्मि ❋ अयमात्मा ब्रह्म ❋ तत्त्व मसि ❋ इन महावाक्योंका जो अर्थ निश्चय करा है ॥ ता अर्थको अपने संशयकी निवृत्यर्थ गुरुकी आज्ञासें गुरुके अग्रे कथनकरे है ॥ ऋग्वेदकी ऐतरेय उपनिषत् गत ❋ प्रज्ञानं ब्रह्म ❋ इस महावाक्यका अर्थ ॥ ❋ येनेक्ष्यते शृणोतीदं जिघ्रतिव्याकरोतिच ॥ स्वाद्वऽस्वादू विजानाति तत् प्रज्ञान मुदीरितं ॥१॥ ❋ अर्थ थिह ॥ जिस अन्तःकरण उपलक्षत चैतन्य करके देखने योग्य शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध इन पञ्च विषयोंको॥ श्रोत्र त्वचा नेत्र रसना घ्राणद्वारा संघातरूप पुरुष जानता है तथा जिस अन्तःकरण उपलक्षत चैतन्य करके गमनाऽगमनको संघातरूप पुरुष करता है तथा जिस अन्तःकरण उपलक्षत चै-

तन्य करके मलका त्याग संघातरूप पुरुष करता है तथा जिस अन्तःकरण उपलक्षत चैतन्य
करके क्षुधा पिपासाकों संघातरूपपुरुष जानता है तथा जिस अन्तःकरण उपलक्षत चैतन्य करके
भुक्त पीत अन्न जल पाचन हुएकों संघातरूप पुरुष जानता है तथा जिस अन्तःकरण उपल-
क्षत चैतन्य करके श्वासकी शीघ्रतादिकोंकों संघातरूप पुरुष जानता है तथा जिस अन्तःकरण
उप लक्षत चैतन्य करके संकल्प निश्चयादि बृत्तियोंकों संघातरूपपुरुष जानता है ॥ तिस अ-
न्तःकरण उपलक्षत चैतन्यका नाम ब्रह्मवेत्ता प्रज्ञान कहते हैं ॥ १ ॥ ❀ चतुर्मुखेंद्र देवेषु
मनुष्याश्व गवादिषु ॥ चैतन्य मेकं ब्रह्मातः प्रज्ञानं ब्रह्म मय्यपि ॥२॥ ❀ अर्थ यिह जो चैतन्य
ब्रह्माके रूपकों धार करके स्थित हुया है तथा जो चैतन्य इन्द्र तथा और देवत्योंके रूपकों धार-
के स्थित हुया है तथा जो चैतन्य मनुष्योंके रूपकों धार करके स्थित हुया है तथा जो चैतन्य

तते रहित है॥सो लक्षणावृत्तिसें तत् पद करके कथन करा है॥५॥❋श्रोतुर्देहेंद्रियाऽतीतं वस्त्वत्र-
त्वं पदेरितम् ॥ एकताग्राह्यतेऽसीति तदैक्यमनुभूय ताम् ॥ ६ ॥ ❋ अर्थ यिह ॥ जो चैतन्यमा-
त्र वस्तु श्रोताके स्थूल देहरूप अन्नमय कोशते रहित है औ कर्म इन्द्रिय सहित पंचप्राण इ-
स प्राणमय कोशते रहित है औ ज्ञान इन्द्रिय सहित मन इस मनोमय कोशते रहित है औ
ज्ञान इन्द्रिय सहित बुद्धि इस विज्ञानमय कोशते रहित है औ सुखाकार वृतिप्रयुक्त अज्ञान
रूप आनंदमय कोशते रहित है॥ सो चैतन्यमात्र वस्तु अत्रनाम इस ❋ तत्त्वमसि ❋ महा
वाक्यमें त्वं पद करके कथन करा है ॥ असि इस पद कर तत् औ त्वं इन पदनके समानाधिक-
रण्यसें प्राप्त जो दोनूं पदन का अर्थ ब्रह्म औ आत्माकी एकता है ॥ सो मुमुक्षुजनोंके तांई
अनुभव कराईये है औ मुमुक्षुजनोंने एकताका अनुभव करीये है (ननु) समानाऽधिकरण्य

किसकों कहे हैं ॥ (उत्तरः) अपर्याय पदनकी समान विभक्तिके बलसें एक अर्थविषे जो प्रवृत्ति है ॥ सो समानाऽधिकरण्य कहिये है ❀ अहं ब्रह्मास्मि ❀ इस महावाक्यविषे अहंपद औ ब्रह्मपदकी ॥ प्रथमा समान विभक्तिके बलसें ॥ लक्षणासें एकरस अखंडार्थ विषे प्रवृत्ति है ॥ यांते ब्रह्मात्माकी एकता सिद्ध होणेते एकताका अस्मिपद स्मरण करवानेहाराहै ॥ अन्य अर्थका बोधक अस्मि पद नहीं है ॥ ६ ॥ और अथर्वण वेदकी मांडूक्योपनिषत् गत ❀ अय मात्माब्रह्म ❀ इस महावाक्यका अर्थ ❀ स्वप्रकाशाऽपरोक्षत्व मयमित्युक्तितो मतं ॥ अहंकारादि देहांतात्प्रत्यगात्मेतिगीयते ॥ ७ ॥ ❀ अर्थयिह ॥ जो प्रत्यक्षादि प्रमाणोंकी प्रकाशणेरूपविषयताते विनाही ॥ अपणे प्रकाशते अपरोक्ष स्वरूप है ॥ सो अयं इस शब्द करके कथन करा है इह हमारा निश्चय है (ननु) देह आदिकोंविषेभी आत्मशब्दकी योजनाके देखनेते ॥

इस महावाक्यविषे आत्म शब्द कर क्या कहनेकों उचतहै (उत्तरः) अंतःकरणते आदि लेकर देह प्रयंत इन सर्वके अन्तर आकाशवत् जो असंग होयके व्यापकहै ॥ सो लक्षणा वृत्तिसें आत्मा इस शब्द करके कथन कराहै ॥ ७ ॥ ❀ दृश्य मानस्य सर्वस्य जगतस्तत्व मीर्यते ॥ ब्रह्म शब्देन तद्ब्रह्म स्वप्रकाशात्म रूपकम् ॥ ८ ॥ ❀ अर्थयिह ॥ जो परमात्म देव दृश्यरूप जगत्की उत्पत्तिसें प्रथम ॥ सजातीय स्वगत विजातीय इन त्रैभेदोंते रहित हुया नामरूप आत्मक जगत्ते रहित है ॥ सोई चैतन्य परमात्मदेव अब दृश्यरूप जगतकी उत्पत्ति होयाभी ॥ सजातीय स्वगत विजातीय इन त्रैभेदोंते रहित हुया नाम रूपात्मक जगत्ते रहित है ॥ इह अर्थपूर्व ❀ तत्त्वमसि ❀ इस महावाक्यमें जो तत्पद करके कथन कराहै ॥ सोई अर्थ ❀ अयमात्माब्रह्म ❀ इस महावाक्यमें लक्षणा वृत्तिसें ब्रह्म पद करके

कथन करा है ॥ सो स्वप्रकाश ब्रह्म मेरा आत्मा रूप है ॥ ऐसे मेरे स्वरूपमें जन्म मरन शोक मो-
हादि सर्व अनर्थ नर खर श्रृङ्ग समान हैं ॥ ३ ॥ ❀ गुरुरुवाच ॥ दोहा ॥ यिह अर्थ महा वाक्य
को, जो तुम निश्चय कीन । यांमें दृढ विश्वास कर, आन अर्थ नहिं चीन ॥ ४ ॥ ❀ त्रैपादका
❀अर्थ स्पष्ट ॥चतुर्थपादका❀अर्थ यिह ॥ हे शिष्य अभेदरूप जो महावाक्योंका अर्थ तुमने नि-
श्चय करा है ॥ ता अभेदरूप अर्थते आन नाम होर उपास्योपासक संबन्ध रूप अर्थ ॥ १ ॥
वा कार्य कारण संबन्धरूप अर्थ ॥२॥ वा॥ अंश अंशी संबन्धरूपअर्थ ॥३॥ वा । विकार विकारी
संबन्धरूप अर्थ ॥४॥ वा । स्तोतव्य स्तावक संबन्धरूप अर्थ ॥५॥ वा । गुण गुणी संबन्धरूप-
अर्थ ॥ ६ ॥ वा । जाति व्यक्ति संबन्धरूप अर्थ ॥ ७ ॥ वा । समता संबन्धरूप अर्थ ॥८॥ वा ।
उपचार्य उपचारक संबन्धरूपअर्थ ॥ ९ ॥ महावाक्यरूप शब्द प्रमाणका नहीं है ॥ काहेते हे

शिष्य जो वाक्य उपासना परयण होवे है ॥ ता वाक्यमें विधायक शब्द होवे है॥ जैसे ❀ वाचं धेनु मुपासीत ❀ इत्यादि श्रुतिमें विधायक शब्दहै ॥ तैसे महा वाक्योंमें विधायक शब्द ना होणेते ॥ महावाक्योंका उपास्यो पासक संबन्धरूप अर्थ संभवे नहीं और कार्य कारण संबन्धकों महावाक्य कहे हैं केईक ऐसे कहे हैं परन्तु तिन्होंसे यिह प्रष्टव्य है ॥ शुद्ध ब्रह्म कारण है । वा। उपाधि उपहित ब्रह्म कारण है ॥ जो शुद्ध कहे तो ❀ नतस्य कार्यं करणंच विद्यते ❀ इत्यादिक ब्रह्मकों अकारणता प्रतिपादय श्रुति साथ विरोध होवेगा तथा अनिर्मोक्ष प्रसङ्गादिक दोषन-कीभी प्राप्ति होवेगी ॥ काहेते जो ज्ञानी पुरुष शरीर पातते अनन्तर शुद्ध ब्रह्मरूपते स्थित होवे है ॥ सो ज्ञानी पुरुषही मुक्त कहिये है ॥ सो शुद्ध ब्रह्मकों संसारका कारण मानने ते ॥ संसा-रूपताकी प्राप्ति होवे है ॥ यांते शुद्ध ब्रह्मरूप मुक्त पुरुषभी संसारकों प्राप्त होवेगा ॥ सो श्रु-

तिस्मृतिसें विरुद्ध है ॥ यांतै शुद्ध ब्रह्म कारण है यिह पक्ष असंगत है औ उपाधि उपहित ब्रह्म कारण है यिह द्वितीय पक्ष कहै तौ एकांशतै ब्रह्मको कारणता है ।१। सकल ब्रह्मकों कारणता है यिह प्रष्टव्य है ॥ प्रथम पक्ष कहै तौ ❀ निर्वद्यं निरंजनं निष्कलं निष्कृयं शांतं ❀ इत्यादिक कलरूप अंशतेरहित ब्रह्मप्रतिपादक श्रुतियों साथ विरोध आनेते तथा विकारत्वादि दोषन की प्राप्तिते संभवे नहीं औ सकल ब्रह्म कारण है यिह कहै तौ अन्तर्यामी ईश्वरका अभाव होनेते सकल मर्यादाका लोप होवेगा ॥ यांतै कारण कार्यरूप अर्थ महावाक्योंका संभवे नहीं और शांतत मन्त्रका यिह सिद्धांत है ॥ जीवात्मा अणुरूप है औ ज्ञान ताकी अंश है ॥ ताकर सर्व शरीरमें सुख दुःख अनुभवकरे है ॥ तैसे परमेश्वर अंशी है औ जीव ताकी अंश हैं ॥ ताके अंश अंशी संबन्धकों महावाक्य कहे हैं ॥ यिह ताका कहनाभी संभवे नहीं ॥ काहेते जैसे जीव अं-

शी ज्ञानरूप अंशों करके सुखदुःख भोगे है ॥ तैसे ईश्वर अंशीभी जीवरूप अंशों करके सुख-
दुःख भोगेगा ॥ यांते जीवकी न्यांई ईश्वर मेंभी बंधमोक्षादि अनर्थकी प्राप्ति होवेगी ॥ किंवा ॥ जो
सांश पदार्थ होवे है सो अंशोंका कार्य होवे है ॥ यांते ईश्वरभी सांश होणेते जीवरूप अंशोंका
कार्य होवेगा ॥ जो कार्य होवे है सो चीर समान विनाशी होवे है ॥ यांते ईश्वरभी अंशोंका कार्य
होणेते विनाशी होवेगा॥किंवा॥ईश्वररूपअंशी जीवांरूप अंशोंते भिन्न है । वा । अभिन्न है ॥ प्रथम
पक्ष अंगीकार करें तौ जैसे जीवरूप अंशोंते घट भिन्न है ॥ सो जीवरूप अंशोंका अंशी नहीं होवे
है ॥ तैसे ईश्वरभी अंशी नहीं होवेगा ॥ द्वितीय पक्ष कहें तौ जीवरूप अंशही शेष रहेगी ईश्वर
का लोप होवेगा यद्यपि गीताके पंचदशमें अध्यायके सप्तमे श्लोक विषे॥भगवान्ने ईश्वरको अंशी
जीवकों अंश निरूपण करा है तथापि भगवान्का तात्पर्य तुमने लख्या नहीं॥काहेते भगवान्का

तात्पर्य अंश अंशी भावमें नहीं है किंतु अंश अंशीवत्में भगवान्का तात्पर्यहै ॥ जैसे सूर्य भग-
वान्का अंशवत् अंश प्रतिबिंब होवे है और जैसे महाकाशका अंशवत् अंश घटाकाश होवे है॥सो
उपाधिके अपसरणते सूर्य और महाकाशरूप होवे है॥तैसे ईश्वरका अंशवत् अंश जीव॥अन्तः
करणादिक उपाधिके अपसरणते ईश्वररूप होवेहै ॥ यिह भगवान्का तात्पर्य है ॥ सो भाष्यकारने
विस्तारसें निरूपण कराहै ॥ यांते अंश अंशी सम्बन्धरूपअर्थ महावाक्योंका सम्भवे नहीं और
जैसे अग्निका विस्फुलिंग विकार होवेहैं॥तैसे ईश्वरकाभी जीव विकारहै ऐसे श्रुतिमें निरूपण होणे-
ते॥महावाक्यभी विकार विकारी सम्बन्धकों कहेहैं॥केईक ऐसे महावाक्योंका अर्थ करे हैं तिन्होंका
कहनाभी सम्भवे नहीं॥ काहेते श्रुतिका तात्पर्य तिन्होंने जान्या नहीं॥जैसे महत् उपाधि वाली
अग्नि प्रकाशरूप है औ अल्प उपाधिवाला विस्फुलिङ्ग प्रकाशरूप है ॥ तैसे महत् उपाधिवाला

ईश्वर औ अल्प उपाधिवाला जीव प्रकाशरूप है॥ यिह श्रुतिका तात्पर्य है॥ अन्यथा ❋ निर्वद्यं निरंजनं निष्कलं निष्कृयं शांतं ❋ इत्यादिक श्रुतियों साथ विरोध होवेगा तथा दोषयुक्त होणेते तांके वचनोंमें विश्वासकाभी अभाव होवेगा॥ इत्यादिक दोष आनेते विकार विकारी सम्बन्धरूप अर्थ महावाक्योंका सम्भवे नहीं और जैसे कोई किसीकी स्तुति करे तूं इन्द्र तूं करण है॥ यिह वाक्य जैसे स्तोतव्यस्तावक सम्बन्धकों कहे हैं॥ तैसे महावाक्यभी स्तोतव्यस्तावक सम्बन्धकों कहे हैं॥ केईक ऐसे महावाक्योंका अर्थ करे हैं॥ तिन्होंका कहनाभी सम्भवे नहीं॥ काहेते स्तुति ताकी ताकर होवे है॥जाका जामें भेद होवे है॥दृष्टान्तमें तो इन्द्र औ करणते पुरुषका भेद होनेते॥ पुरुषकी स्तुति संभवे है परन्तु द्राष्टांतमेंतो ❋ सदेव सौम्येदमग्र आसीत् एक मेवा द्वितीयं ❋ ऐसे छांदोग्यके षष्टे अध्यायके आरम्भविषे॥ अद्वितीय ब्रह्मका प्रति

॥१३०॥

पादन किया है औ ❋ ऐतदात्म्य मिदं सर्वं ❋ ऐसे अंतमें अद्वितीय ब्रह्मका प्रतिपादन किया-
है ॥ यांते जीव ब्रह्म एकरूप होणेते स्तोतव्य स्तावक संबन्धरूप अर्थ महावाक्योंका संभवे
नहीं और गुण गुणी सम्बन्धकों महावाक्य कहे हैं केईक ऐसे महावाक्योंका अर्थ करे हैं ॥
तिन्होंका कहनाभी सम्भवे नहीं ॥ काहेते ऐसे अर्थ करनेवालेकों यिह प्रष्टव्यहै ॥ ईश्वरका
जीव गुण है । वा । जीवका ईश्वर गुण है ॥ प्रथम पक्ष कहे तौ ईश्वररूप गुणीमें जीवरूप गुणका
अभेद होनेते जीवमें संसारीपनेका अभाव होवेगा ॥ द्वितीय पक्ष कहे तौ जीवरूप गुणीमें ई-
श्वररूप गुणका अभेद होनेते ईश्वरपनेका अभाव होवेगा ॥ तथा ❋ साक्षी चेताः केवलो नि-
र्गुणश्च ❋ इत्यादिक निर्गुण प्रतिपादक श्रुतिसाथभी विरोध होवेगा ॥ यांते गुणगुणी संबन्धरूप
अर्थ महावाक्योंका संभवे नहीं और सो ब्रह्म तुमारी जातिहै केईक ऐसे महावाक्योंका अर्थ

करे हैं तिन्होंका कहनाभी सम्भवे नहीं ॥ काहेते जो जाति होवे सो जड होवेहै ॥ यांते ईश्वर-
भी जाति होणेते जडही होवेगा ॥ जो जड होवेहै सो सर्वज्ञ होवे नहीं ॥ यांते ईश्वरमेंभी सर्वज्ञ-
ताका अभाव होणेते ❋ यः सर्वज्ञाः सर्ववित् ❋ इत्यादिक श्रुतिसाथ विरोध होवेगा ॥ यांते
जाति व्यक्ति संबन्धरूप अर्थ महावाक्योंका संभवे नहीं और ब्रह्मके तूं समहै अर्थात् ॥ सह-
शहैं केईक ऐसे महावाक्योंका अर्थ करेहैं ❋ निरंजनः परमसाम्यमुपैति और मुक्तो शिव समो
भवेत् ❋ इत्यादिक श्रुति स्मृति प्रमाण कहे हैं ॥ तिन्होंका कहणाभी संभवे नहीं ॥ काहेते जा-
के गुण क्रिया अवयव जाके सम होवे ॥ ताकी तामें समता होवे है ॥ ब्रह्ममें गुण क्रिया अव-
यव है नहीं औ अभेद होनेते जीवमेंभी गुण क्रिया अवयवहै नहीं ॥ यांते तिन्होंकी समता
बने नहीं औ श्रुति स्मृतिमें जो सम पद है ॥ सो अभेदाऽर्थक है साहशाऽर्थक नहीं ॥ काहेते स-

मपदका सादृशही अर्थ होवे है यिह नियम नहीं किंतु समपदके औरभी अर्थ होवेहैं ॥ जैसे सम तीर्थमें दोनो वासी औ सम उदरमें भए निवासी ॥ इन दोनोंकी सम है जात ॥ सम गोत्र सम कुल विक्षात् ॥ इत्यादिक स्थानमें जैसे समपदका अभेद अर्थहै ॥ तैसे श्रुति स्मृतिमेंभी समपदका अभेद अर्थ है ॥ यांते महावाक्योंका अभेद अर्थ है समतारूप अर्थ सम्भवे नहीं और जैसे राजाके पुरुषकों राजा कहे हैं परन्तु सो राजा होवे नहीं ॥ तैसे * तत्त्वमसि * इत्यादि महावाक्य जीवकों ब्रह्मरूप कहे हैं परन्तु जीव ब्रह्मरूप नहीं ॥ केईक ऐसे कथनमात्र महावाक्योंका अर्थ करे हैं ॥ तिन्होंका कहणाभी संभवे नहीं ॥ काहेते जोकथन मात्रही महावाक्योंका अर्थ होवे तो उद्दालक ऋषिने अपने पुत्र श्वेतकेतु प्रति जो महावाक्यका नव वार उपदेश किया है सो सर्वही निष्फल होवेगा ॥ सो नव वार उपदेशका प्रकार पूर्व निरूपण किया है ॥

यांते महावाक्यरूप शब्द प्रमाणका उपचार्य उपचारक संबन्धरूप अर्थ संभवे नहीं ॥ ४ ॥ (ननु) ❀ चौपाई ॥ भगवन् प्रमाण भाष्यो जोही ॥ ताको अर्थ सुणावो मोही (उत्तरं) अज्ञात ज्ञापक है प्रमाना ॥ ताका विषय ब्रह्म बखाना ॥ ५ ॥ ❀ अर्थ यिह ॥ हे प्रिय जो अज्ञात पदार्थका ज्ञापक नाम प्रकाशक होवे सो प्रमाण कहिये है ॥ तहां अनात्म पदार्थकों जडस्वरूप होनेते ॥ तामें अज्ञानकी विषयतारूप अज्ञातता संभवती नहीं ॥ किन्तु स्वप्रकाश ब्रह्ममेंही अज्ञानकी विषयतारूप अज्ञातता सम्भवे है ॥ यांते ब्रह्महीं ता प्रमाणका विषय है ॥ अनात्म पदार्थ प्रमाणका विषय नहीं ॥ ऐसे हे शिष्य तूं अपने चितमें धारन कर यद्यपि अज्ञातोघटःइत्यादि प्रतीतिते ब्रह्मकी न्यांई घटादिकोंमेंभी अज्ञानकी विषयतारूप अज्ञातता प्रतीत होवेहै तथापि घटादि अवछिन्न ब्रह्ममें कल्पित अज्ञानकी अधिष्ठानताका अवछेदक घटादिक है ॥

यांते अवच्छेदकता सम्बन्धते अज्ञानकी विषयतारूप अज्ञातता घटादिक अनात्मामें प्रतीत होवेहै ॥ साक्षात् अज्ञानकी विषयतारूप अज्ञातता घटादिक अनात्मामें नहीं है ॥ किंतु साक्षात् अज्ञानकी विषयतारूप अज्ञातता घटादि अनात्मावच्छिन्न ब्रह्म चेतनमें है ॥ यांते ब्रह्ममेंही प्रमाणकी विषयता है ॥ ५ ॥ ❋ चौपाई ॥ सुन प्रमाण प्रमा अनुसार ॥ हे शिष्य षट् प्रकार निर्धार ॥ प्रथम प्रत्यक्ष पुनः अनुमान ॥ शब्द तीसरो पुना उपमान ॥ ६ ॥ पञ्चम अर्थापत्ति स्वरूपा ॥ षष्ठाअनुप लब्धि मुनि भूपा ॥ भाषित षट् प्रमाण यिह नीके ॥ खण्ड अपरमत भट्टमतीके ॥ ७ ॥ ज्ञानेंद्रियपंचकहे जोऊ ॥ प्रत्यक्ष प्रमाण है सोऊ ॥ संबन्धविषय करणका जोऊ ॥ नाम व्यापार जानो सोऊ ॥८॥ रूपादिकका जो है ज्ञान ॥ सो प्रत्यक्ष प्रमा शिष्य वखान ॥ ❋ अर्थ स्पष्ट ॥ ❋ तात्पर्ययिह ॥ स्वसंयुक्त अधिष्ठानता औ स्वसंयुक्त तादात्म्यअधिष्ठानता औ

स्वसंयुक्त तादात्म्यवत् तादात्म्य अधिष्ठानतादि संबन्धसें ॥ असत्वाऽऽपादक अभानाऽऽपादक शक्ति विशिष्ट अज्ञानकी निवृत्तिरूप घटादि अवच्छिन्न ब्रह्म चेतनमें प्रत्यक्ष प्रमाणकी विषयता है इत्यर्थः॥८॥ ❀ चौपाई ॥ व्याप्तिका जो अनुभव ज्ञाना ॥ सोई ज्ञान शिष्य अनुमाना॥९॥स्मरणादिक व्याप्तिका जोऊ ॥ शिष्य व्यापार जानो सोऊ ॥ साध्य ज्ञान जो ता कर जाता ॥ सो अनुमिति प्रमा प्रख्याता॥१०॥ ❀ टीका ॥ हे शिष्य एक पक्ष होवे है औ द्वितीय सपक्ष होवे है औ तृतीय विपक्ष होवे है ॥ तहां जहां साध्यका संशय होवे सो पक्ष कहिये है ❀ जैसे प्रत्यग् आत्मा ' परमार्थिक सत्यः ' ' सर्वथा अबाध्यत्वात् ' यः परमार्थिक सत्यःन स सर्वथा अबाध्यः न यथा स्वप्नप्रपंचः ❀ इस अनुमानमें परमार्थिक सत्यत्वरूप साध्यके संशयवाला प्रत्यग्आत्मा पक्ष है और जो निश्चित साध्यवाला होवे सो सपक्ष कहिये है ॥ जैसे उक्त अनुमानमेंही निश्चित

परमार्थिक सत्यत्वरूप साध्यवाला सपक्ष ब्रह्म है और जो निश्चित साध्याऽभाववाला होवे सो विपक्ष कहिये है ॥ जैसे उक्त अनुमानमेंही निश्चित साध्याऽभाववाला स्वप्नप्रपंच विपक्षहै और अविनाभावसंबन्ध व्याप्तिहोवेहै॥तहां जाविना जो होवेनहीं ताका तामें अविनाभावसंबन्ध कहियेहै ॥ जैसे उक्त अनुमानमेंही 'जा विना' कहिये परमार्थिक सत्यत्व तेविना 'जो होवे नहीं' कहिये सर्वथा अवाध्यत्व होवेनहीं 'ताका' कहिये परमार्थिक सत्यत्वरूप साध्यका अविनाभाव संबन्ध 'तामें' कहिये सर्वथा अबाध्यत्वरूप हेतुमें है ॥ सोई परमार्थिक सत्यत्वरूप साध्यकी सर्वथा अबाध्यत्वरूप हेतुमें व्याप्ति है ॥ ता व्याप्तिका जो अनुभवहै सो अनुमान प्रमाण हे शिष्य तूं अपने हृदयमें निश्चय कर और व्याप्तिकी जो स्मृतिआदिक है सो तूं अपने हृदयमें व्यापार जान ॥ तहां संस्कार मात्र जन्य जो ज्ञान सो स्मृति-

कहिये है ॥ संस्कारजन्य ज्ञानं स्मृति इतनाहीं कहिये तौ प्रत्यभिज्ञा ज्ञानभी संस्कार
जन्य है परंतु प्रत्यभिज्ञा ज्ञानेंद्रिय संयुक्त संस्कार जन्य है ॥ यांते संस्कार मात्र कहिणेसें प्रत्य
भिज्ञा ज्ञानमें लक्षण जावे नहीं औ संस्कार मात्र जन्य इतनाहीं कहिये तौ अपणें प्रतियो-
गिमें ध्वंसकी कारणता होणेते ॥ संस्कार मात्र जन्य तो संस्कारका ध्वंसभी है परंतु संस्कारका
ध्वंसज्ञान नहीं ॥ यांतेज्ञानपद कहिणेसें संस्कारजन्य ध्वंसमें लक्षण जावे नहीं और 'तज्जन्यत्वे-
सति तज्जन्य जनको व्यापारः' ताहां जैसे उक्त अनुमानमेंही 'तज्जन्यत्वेसति' कहिये व्या-
प्तिके अनुभवरूप प्रमाणसें व्याप्तिकी स्मृति उत्पन्न हुई ॥ 'तत्' कहिये व्याप्तिके अनुभवरूप
प्रमाणसें 'जन्य' कहिये उत्पन्न भया जो परमार्थिक सत्यत्वरूप साध्यका प्रमा ज्ञान ॥ ताका
'जनकः' कहिये कारण जो व्याप्तिकी स्मृति सो व्यापार कहियेहै औ ता व्यापारसें उत्पन्न भया

जो परमार्थिक सत्यत्वरूप साध्यका ज्ञान सो अनुमिति प्रमा है शिष्य तूं जान ॥ ता अनुमिति प्रमाका जो करणरूप अनुमान प्रमाण सो सिद्धांतमें प्रतिज्ञा । १ । हेतु । २ । उदाहरण । ३ । इनत्रै अवयवोंसहित उत्पन्न होवे है ॥ तहां *साध्य संयुक्त पक्षबोधक वचनं प्रतिज्ञा॥ जैसे उक्त अनुमानमेंही प्रत्यग्आत्मा परमार्थिक सत्यः और *पंचम्यान्तं तृतीयान्तं वा लिंगबोधक वचनं हेतुः ॥ जैसे उक्त अनुमानमेंही सर्वथा अबाध्यत्वात् और *व्याप्ति संयुक्त दृष्टांत बोधक वचनं उदाहरणं ॥ जैसे उक्त अनुमानमेंही यः परमार्थिक सत्यःन स सर्वथा अबाध्यःन यथा स्वप्न प्रपंचः ॥ इस रीतिसें व्याप्तिका अनुभवरूप अनुमान प्रमाण त्रै अवयवोंसहित उत्पन्न होवेहै परन्तु सो अनुमान केवलान्वयि ।१। केवलाव्यतिरेकि । २ । अन्वयव्यतिरेकि । ३ । भेदते त्रै प्रकारका है॥ *साध्याऽभाव वदऽवृत्यत्वंहेतोःकेवलान्वयिं॥ जैसे संपूरणं 'ब्रह्माऽव्यतिरिक्त स-

तावत्' 'ब्रह्मभिन्न सत्ताऽसंभवत्त्वात्' ' यत्र ब्रह्म भिन्न सत्ताऽसंभवत्त्वं तत्र ब्रह्माऽव्यतिरिक्त सत्तावत्त्वं यथा ब्रह्मणि॥इस अनुमानमें यत्र ब्रह्माऽव्यतिरिक्त सत्तावत्त्वं न तत्र ब्रह्म भिन्न सत्ता-ऽसंभवत्त्वंन ऐसी व्यतिरेक व्याप्ति नहीं है ॥ काहेते विश्वकों ब्रह्म साथ बाध्य समानाऽधिकरणेन अभेद होणेते तथा प्रत्यगूआत्माकों मुख्य समानाऽधिकरणेन अभेद होणेते और*साध्याऽभाव व्यापकीभूत साधनाऽभाव प्रतियोगित्वं हेतोः केवल व्यतिरेकि॥जैसे द्वैतं परमार्थाऽसत्यं अना-त्मत्त्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथा आत्मा॥इस अनुमानमें अन्वय व्याप्ति नहींहै ।काहेते द्वैतमात्रकों प-क्षरूप होणेते तथाआत्मामें परमार्थाऽसत्यत्वरूप साध्यका औ अनात्मत्त्वरूप हेतुका अभाव हो-णेते और*साध्याऽभाववदऽवृत्ति साध्याऽभावव्यापिकीभूत साधनाऽभावप्रतियोगी लिंगं अन्वय व्यतिरेकि*जैसे प्रत्यगूआत्मा 'ब्रह्माऽभिन्नासच्चिदानंदरूपत्त्वात् ॥ इस अनुमानमें अन्वयव्या

प्तिका उदाहरण ब्रह्म है औ व्यतिरेक व्याप्तिका उदाहरण घटादिक है ॥ इस रीतिसें तीन प्रकारका अनुमान है परन्तु स्वविषयनिरूपक तादात्म्य ।वा। अधिष्ठानता संबन्धसें असत्वाऽऽपादकशक्ति विशिष्टअज्ञानकी निवृत्तिरूप विषयता अनुमानप्रमाणकी चैतन्यरूप ब्रह्ममेंहै॥स्वकहिये व्याप्ति-का अनुभव औ ताकी विषयता व्याप्तिमें है औ ता व्याप्तिका निरूपकता साध्यमेंहै औ ता साध्य-का तादात्म्य । वा । अधिष्ठानता संवन्ध ब्रह्ममेंहै ॥ तहां प्रत्यगूआत्माका औ ब्रह्मका जहां अभेद साध्यहै ॥ तहां तो तादात्म्यसंबन्ध ब्रह्ममें है औ जहां अनात्मा साध्य है तहां अधिष्ठानता संबन्ध ब्रह्ममेंहै इत्यर्थः ॥ १० ॥ ❋ चौपाई ॥ वृत्ति वशिष्ठ जो पद ज्ञान ॥ शब्द प्रमाण सु ताको जान ॥ अविवहित पदार्थ स्मरण जोउ ॥ लख व्यापार शिष्य है सोउ ॥ ११ ॥ जो है केवल संबन्ध ज्ञान ॥ शाब्दीप्रमा सो करी वखान ॥ सम्बन्ध वसिष्ठ पदार्थ ज्ञान ॥ शाब्दीप्रमा

व तांकों जान ॥ १२ ॥ ❋ अर्थ स्पष्ट ॥ ❋ तात्पर्य यिह ॥ स्वविषय शक्य । वा । लक्ष वृत्ति प्रतियोगता निरूपक अधिष्ठानता सम्बन्धसें । वा । स्वविषय शक्य । वा । लक्षवृतिप्रतियोगता निरूपक तादात्म्य अधिष्ठानता सम्बन्धसें असत्वाऽऽपादक शक्तिविशिष्ट अज्ञानकी निवृत्तिरूप विषयता शब्द प्रमाणकी ब्रह्ममें है ॥ स्व कहिये शक्तिरूप । वा । लक्षणारूप वृत्ति सहित पदोंका प्रत्यक्ष ज्ञानरूप शब्द प्रमाण औ ता प्रमाणका शक्ति । वा । लक्षणा वृत्तिसहित पदोंमें विषयता सम्बन्ध है औ ता पदोंका पदार्थनमें शक्ति । वा । लक्षणारूप सम्बन्ध है औ ता पदार्थोंका प्रति योग्यतामें अधेयता सम्बन्ध है औ ता प्रत्ति योगताका पदार्थोंके सम्बन्धमें निरूपकता सम्बन्ध है औ ता सम्बन्धका अपने अधिष्ठान चेतनमें अधिष्ठानता सम्बन्ध है औ द्वितीय पक्षमें पदार्थके सम्बन्ध पर्यंतती पूर्व उक्तही सम्बन्ध है औ पदार्थोंकेसम्बन्धका पदार्थोंमें

तादात्म्य संबंध है औ ता संबंध विशिष्ट पदार्थोंका अपने अधिष्ठान चेतनमें अधिष्ठानता सम्बन्ध है इस रीतिसें मत भेदसें संसर्गरूप अर्थके । वा । संसर्ग विशिष्ठ पदार्थके बोधक वचनोंकाभी विषय ब्रह्म है तौ*संसर्गोवा विशिष्टोवा वाक्यार्थों नात्र संमतः॥अखंडैक रसत्वेन वाक्याऽर्थो विदुषां मतः*इत्यादि विद्वानोंकेवचनोंसें सिद्ध जो*अपर्य्यायाऽनेक शब्द प्रकाश्यत्वेसति अविशिष्टत्वं अखण्डत्वं*ऐसा अखंडाऽर्थहै ॥ ताके बोधक जो'तत्वमस्यादि'महावाक्य हैं ॥ तावाक्योंका विषय ब्रह्महै यामें तो कैमुत्यकही है अर्थात् यिह निश्चतहींहै इत्यर्थः ॥१२॥ * चौपाई ॥ दृष्टवस्तुमें सादृश्य भान ॥ ताकोंजानोशिष्य उपमान ॥ तज्जन्यजोसादृश्य ज्ञाना ॥ अदृष्टविषे उपमितिवखाना ॥१३॥ *टीका ॥ जैसे दृष्ट वस्तुमें कहिये आकाश वस्तुमें अदृष्टरूप ब्रह्मकी सादृश्यताका जो ज्ञान है॥सो उपमानप्रमाण हे शिष्य तूं जान औ तत् कहिये ब्रह्मकी सादृश्यता

व तांकों जान ॥ १२ ॥ ❋ अर्थ स्पष्ट ॥ ❋ तात्पर्य यिह ॥ स्वविषय शक्य । वा । लक्ष वृत्ति प्रतियोगता निरूपक अधिष्ठानता सम्बन्धसें । वा । स्वविषय शक्य । वा । लक्षवृतिप्रतियोगता निरूपक तादात्म्य अधिष्ठानता सम्बन्धसें असत्वाऽऽपादक शक्तिविशिष्ट अज्ञानकी निवृत्तिरूप विषयता शब्द प्रमाणकी ब्रह्ममें है ॥ स्व कहिये शक्तिरूप । वा । लक्षणारूप वृत्ति सहित पदोंका प्रत्यक्ष ज्ञानरूप शब्द प्रमाण औ ता प्रमाणका शक्ति । वा । लक्षणा वृत्तिसहित पदोंमें विषयता सम्बन्ध है औ ता पदोंका पदार्थनमें शक्ति । वा । लक्षणारूप सम्बन्ध है औ ता पदार्थोंका प्रति योग्यतामें अधेयता सम्बन्ध है औ ता प्रत्ति योगताका पदार्थोंके सम्बन्धमें निरूपकता सम्बन्ध है औ ता सम्बन्धका अपने अधिष्ठान चेतनमें अधिष्ठानता सम्बन्ध है औ द्वितीय पक्षमें पदार्थके सम्बन्ध पर्यंततो पूर्व उक्तही सम्बन्ध है औ पदार्थोंकेसम्बन्धका पदार्थोंमें

तादात्म्य संबंध है औ ता संबंध विशिष्ट पदार्थोंका अपने अधिष्ठान चेतनमें अधिष्ठानता सम्बन्ध है इस रीतिसें मत भेदसें संसर्गरूप अर्थके । वा । संसर्ग विशिष्ठ पदार्थके बोधक वचनोंकाभी विषय ब्रह्म है तौ॥संसर्गोवा विशिष्टोवा वाक्यार्थो नात्र संमतः॥अखंडैक रसत्वेन वाक्याऽर्थो विदुषां मतः॥इत्यादि विद्वानोंकेवचनोंसें सिद्ध जो॥अपर्य्यायाऽनेक शब्द प्रकाश्यत्वेसति अविशिष्टत्वं अखण्डत्वं॥ऐसा अखंडाऽर्थहै॥ताके बोधक जो'तत्वमस्यादि'महावाक्य हैं॥तावाक्योंका विषय ब्रह्महै यामें तो कैमुत्यकही है अर्थात् यिह निश्चतहीहै इत्यर्थः॥१२॥ ॥ चौपाई॥दृष्टवस्तुमें सादृश्य भान॥ताकोंजानोशिष्य उपमान॥तज्जन्यजोसादृश्य ज्ञाना॥अदृष्टविषे उपमितिवखाना॥१३॥ ॥टीका॥जैसे दृष्ट वस्तुमें कहिये आकाश वस्तुमें अदृष्टरूप ब्रह्मकी सादृश्यताका जो ज्ञान है॥सो उपमानप्रमाण हे शिष्य तूं जान औ तत् कहिये ब्रह्मकी सादृश्यता

विशिष्ट आकाशके ज्ञानरूप प्रमाणसें॥उत्पन्न भया जो अदृष्टरूप ब्रह्ममें आकाशकी सादृश्यता का ज्ञान है ॥ सो हे शिष्य उपमिति प्रमा कहिये है ❀ तात्पर्य यिह ॥ स्वविषय तादात्म्य वृति प्रतियोगिता निरूपक तादात्म्य संबन्धसें असत्वाऽऽपादक शक्ति विशिष्ट अज्ञानकी निवृत्तिरूप विषयता उपमान प्रमाणकी ब्रह्ममें है ॥ स्वकहिये ब्रह्मकी सादृश्यताविशिष्ट आकाशका ज्ञान-रूप उपमान प्रमाण ॥ ताका विषयता ब्रह्मकी सादृश्यताविशिष्ट आकाशमें है औ ता आकाश वृत्ति सादृश्यताका आकाशमें तादात्म्य है औ ता आकाशकी ब्रह्ममें सादृश्यता रहे है ॥ यांते ता सादृश्यताकी प्रति योगिता आकाशमें है औ ता आकाशका प्रतियोगितामें अधेता है औ ता प्रति योगिताका आकाशकी जो ब्रह्ममें सादृश्यता है ॥ तामें निरूपकता संबन्ध है औ ता सादृश्यताका ब्रह्ममें तादात्म्य संबंध है इत्यर्थः ॥ १३ ॥❀चौपाई॥ अनुपपन्न संपाद्य ज्ञाना

॥ अर्थापत्ति प्रमाण वखाना ॥ संपादक कल्पनाहै जोऊ ॥ अर्थापत्तिप्रमा लखसोऊ ॥ १४ ॥
* टीका ॥ जैसे जीव ईश्वरके औपाधिक भेदरूप संपादकतेबिना जीव ईश्वरके परमार्थिक अ-
भेदरूप संपाद्यकी अनुपपत्तिका जो ज्ञान है ॥ सो हे शिष्य अर्थापत्ति प्रमाण तूं जान औ
जीव ईश्वरके औपाधिक भेदरूप संपादककी जो कल्पना है ॥ सो हे शिष्य अर्थापत्ति प्रमा नि-
श्चय कर * तात्पर्य यिह ॥ स्वविषय प्रतियोगि संपादिक अधिष्ठानता संबन्धसें असत्वाऽऽपा-
दक शक्तिविशिष्ट अज्ञानकी निवृतिरूप विषयता अर्थापत्ति प्रमाणकी औपाधिक भेदाऽवच्छिन्न
चैतन्यरूप ब्रह्ममें है ॥ स्व कहिये औपाधिक भेदते बिना परमार्थिक अभेदके अभावका ज्ञा-
नरूप अर्थापत्ति प्रमाण औ ता ज्ञानरूप प्रमाणका विषयता अभेदके अभावमें है औ ता अ-
भावका प्रतियोगिता अभेदमें है औ ता अभेदका सम्पादकता औपाधिक भेदमें है औ ता औ

वि०

॥१३८॥

पाधिक भेदका अपने अधिष्ठान भेदाऽवछिन्न चैतन्यरूपब्रह्ममें अधिष्ठानता संबन्ध है इत्यर्थः ॥१४॥❀ चौपाई ॥ अप्रतीति पदार्थकी जोऊ ॥ अनुपलब्धि प्रमान लख सोऊ ॥ पदार्थाऽभाव ज्ञान सु जोई ॥ अभाव प्रमा शिष्य लख सोई ॥ १५ ॥ ❀ अर्थ स्पष्ट ॥ ❀ तात्पर्ययिह ॥ स्वजन्य विषय अधिष्ठानता सबन्धसें असत्त्वाऽऽभानाऽपादक शक्तिविशिष्ट अज्ञानकी निवृत्तिरूप विषयता अनुपलब्धि प्रमाणकी प्रपंचरूप पदार्थके अभावाऽवच्छिन्न चैतन्यरूप ब्रह्ममें है यद्यपि अन्य ग्रंथकारोने चैतन्यरूप ब्रह्ममें सकल प्रमाणोंकी विषयता निषेध करि है ॥ तथाच ॥ ❀ मानेन मेयाऽवगतिश्च युक्ताधर्मस्यजाड्याद्धिधिनिष्ठ कांडे ॥ मेयेन मानाऽवगतिस्तु युक्ता वेदांत वाक्येष्वजडंहिमेयं ❀ अर्थयिह ॥ पूर्व मिमांसाविषे धर्मादिरूप प्रमेय जड है ॥ यांते ता प्रमेयकी सिद्धि प्रमाणसें युक्त है औ वेदांतशास्त्रविषे ब्रह्मरूप प्रमेय चेतन है ॥ यांते

॥१३८॥

ता ब्रह्मरूप प्रमेयकी सिद्धि प्रमाणसें युक्त नहीं ॥ प्रत्युत ता ब्रह्मरूप प्रमेयसेंही जड प्रमाणकी सिद्धि युक्त है ॥ इस रीतिसें ब्रह्ममें प्रमाणकी विषयताका निषेध किया है ॥ यांते आपके वचनोंका अन्यग्रंथकारोसें विरोध है तदापि अन्यग्रंथकारोंनें उत्पत्तिरूप । वा । प्रकाशणेरूप प्रमाणोंकी ब्रह्ममें विषयता निषेध करी है ॥ यांते अज्ञान निवृत्तिरूप प्रमाणोंकी ब्रह्ममें विषयता होणेते प्रपंचाऽभावाऽवच्छिन्न चैतन्यरूप ब्रह्ममें अनुपलब्धि प्रमाणकी विषयता संभवेहै इत्यर्थः ॥१५॥ ❋ चौपाई ॥ षट् प्रमाणजु भगवन् माना ॥ तत् विषय अविषय ब्रह्म जाना ॥ तथापि अभाव वखाना जोही ॥ ताका रूप न भाषयो मोही ॥ १६ ॥ ❋ अर्थ स्पष्ट ॥ ❋ तात्पर्ययिह ॥ भगवन् अभावका समान लक्षण तथा विशेष लक्षण आप मेरे तांई श्रवण करवावों ॥ ऐसी जिज्ञासाके भया संक्षेपते अभावका निरूपण करेहैं ❋ संबन्ध सादृश्य भिन्न-

त्वेसति प्रतियोगि सापेक्ष प्रतीति विषयत्वं अभावत्वं ❀ सा अभाव अंन्योऽन्याऽभाव औ संसर्गाऽभाव भेदते दो प्रकारका है ॥अत्यंताऽभावते भिन्न हुया जो अनादि अनंताऽभाव है॥ सो अंन्योऽन्याऽभाव कहिये है ॥ अनादि अनंताऽभाव इतनाहीं कहिये तौ ऐसा अत्यंताऽभावभी है॥यांते अत्यन्ताऽभावते भिन्न कह्या॥अत्यंताऽभावतेभिन्न अनन्ताऽभाव इतनाहीं कहिये तौ ऐसा प्रध्वन्साऽभावभीहै ॥ यांते अनादि कह्या ॥अत्यन्ताऽभावतेभिन्न अनादिअभाव इतनाहीं कहिये तौ ऐसा प्रागाऽभावभी है ॥ यांते अनन्त कह्या ॥ अत्यंताऽभावते भिन्न अनादि अनन्त इतनाहीं कहिये तौ ऐसा ब्रह्मभी है ॥ यांते अभाव कह्या ॥ सो अन्योऽन्याभाव कपालो न घटःऐसी प्रतीतिका विषय है और कोईभी अभाव ऐसी प्रतीतिका विषय नहीं औ दूसरा संसर्गाऽभाव प्राग्गाऽभाव प्रध्वन्साऽभाव सामयिकाऽभाव अत्यंताऽभाव भेदते

चार प्रकारका है ॥ जो अनादि सांत अभाव सो प्राग्भाऽभाव कहिये है ॥ सांत अभाव इतनाहीं कहिये तौ ऐसा सामयिकाऽभावभी है ॥ यांते अनादि कह्या ॥ अनादि अभाव इतनाहीं कहिये तौ ऐसा अत्यंताऽभावभी है यांते सांत कह्या ॥ अनादि सांत इतनाहीं कहियेतौ ऐसी मायाभी है यांते अभाव कह्या ॥ सो अभाव घटकी उत्पत्तिकालते पूर्वकालविषे ॥ घटोनास्ति ऐसी प्रतीतिका विषय है और कोईभी अभाव ऐसी प्रतीतिका विषय नहीं और जो सादि-अनन्ताऽभाव सो प्रध्वन्साऽभाव कहिये है ॥ अनन्ताऽभाव इतनाहीं कहिये तौ ऐसाअ-त्यन्ताऽभावभी है ॥ यांते सादि कह्या ॥ सादि अभाव इतनाहीं कहिये तौ ऐसासामयिकाऽभाव भीहै ॥ यांते अनन्त कह्या ॥ सादि अनन्त इतनाहीं कहिये तौ ऐसी मोक्षभीहै ॥ यांते अभाव कह्या ॥ सो अभाव घट नाशते अनन्तर कपाले घटोनास्ति ऐसी प्रतीतिका विषय

है और कोईभी अभाव ऐसी प्रतीतिका विषय नहीं और जो सादि सांत अभाव है सो सामयिकाऽभाव कहिये है ॥ सांताऽभाव इतनाहीं कहिये तौ ऐसा प्राग् अभावभी है ॥ यांते सादि कह्या ॥ सादिअभाव इतनाहीं कहिये तौ ऐसा प्रध्वन्साऽभावभी है ॥ यांते सांत कह्या ॥ सादि सांत इतनाहीं कहिये तौ ऐसा घटभी है ॥ यांते अभाव कह्या ॥ सो अभाव भूतले घटोनास्ति ऐसी प्रतीतिका विषय है और कोई भी अभाव ऐसी प्रतीतिका विषय नहीं और जो अन्योऽन्याऽभावते भिन्नहुया अनादि अनन्ताऽभाव है सो अत्यंताऽभाव कहिये है ॥ अनादि अनन्त अभाव इतनाहीं कहियेतौ ऐसाअन्नयोऽन्याऽभावभी है ॥ यांते अन्नयोऽन्याऽभावते भिन्न कह्या ॥ अन्नयोऽन्याऽभावते भिन्न अनंताऽभाव इतनाहीं कहिये तौ ऐसा प्रध्वन्साऽभावभी है ॥ यांते अनादि कह्या ॥ अन्नयोऽन्याऽभावते भिन्न अनादिअभाव इतनाहीं

कहिये तौ ऐसा प्राग् अभावभी है।यांते अनन्त कह्या॥ अन्योऽन्याऽभावते भिन्न अनादि अ-
नन्त इतनाहीं कहियेतौ ऐसा ब्रह्मभी है॥यांते अभाव कह्या॥सोअभाव❋इदं सर्वंयदयमात्मा।
आत्मै वेदं सर्वं । ब्रह्मै वेदं सर्वं । पुरुष एवेदं विश्वं।वासु देवः सर्वं । नारायणः सर्वमिदं पुराणः ।
सर्वं खल्विदंब्रह्म ॥ एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म नेहनानास्ति किंचनः ❋ इत्यादि श्रुति प्रमाणते ब्रह्मते
भिन्न द्वैतमें ❋ धर्माऽवच्छिन्न अनवच्छिन्न प्रति योगिताक स्वात्यंताभावत्वं मिथ्यात्वं ❋ ऐसा मि
थ्यात्वरूप अत्यन्ताऽभाव है।सो मिथ्यात्वरूप अत्यंताऽभाव समानाऽधिकरण्य धर्माऽवच्छिन्न
प्रतियोगिताक अत्यंताऽभाव औ व्यधिकरण्यधर्माऽवच्छिन्न प्रतियोगिताक अत्यंताऽभाव भे-
दते दो प्रकारका है।तहां जा अधिकरण्यमें प्रतियोगिता होवे ता अधिकरण्यमेंही प्रति योगिताऽ
वच्छेदक धर्म होवे ॥ ता धर्म सहित प्रतियोगिताहै जाकी ऐसा जो अत्यन्ताऽभाव ॥ सो समा-

नाऽधिकरण्य धर्माऽवच्छिन्न प्रतियोगिताक अत्यंताऽभाव कहिये है॥ जैसे 'वायौ रूपं नास्ति' ईहा रूप अत्यन्ताऽभावकी प्रतियोगिता रूपमें रहे है औ प्रतियोगिताऽवछेदक रूपत्व धर्म-भी रूपमें रहे है ॥ ता रूपत्व धर्मसहित प्रतियोगिता है जाकी ॥ ऐसा जो वायौमें रूप अत्यन्ताऽभाव ॥ सो समानाऽधिकरण्य धर्माऽवच्छिन्न प्रतियोगिताक अत्यन्ताऽभाव कहिये है ॥ तैसे 'ब्रह्मणि प्रपंचो नास्ति' इहां प्रपंच अत्यंताऽभावकी प्रतियोगिता प्रपंचमें रहे है औ प्रतियोगिताऽवछेदक अपरमार्थिकत्व धर्मभी प्रपंचमें रहेहै ॥ ता अपरमार्थिकत्व धर्मसहित प्रतियोगिताहै जाकी॥ऐसा जो ब्रह्ममें प्रपंचका अत्यंताऽभावहै॥सो समानाऽधिकरण्य धर्माऽवच्छिन्न प्रतियोगिताक अत्यंताऽभावहै और एकअधिकरण्यमें तो प्रतियोगिता होवे औ दूसरे अधिकरण्यमें प्रतियोगिताऽवछेदक धर्म होवे॥ ता धर्मसहित प्रतियोगिताहै जाकी ऐसा जो अत्यन्ताऽ

भाव ॥ सो व्यधिकरण्य धर्माऽवच्छिन्न प्रतियोगिताक अत्यन्ताऽभाव कहिये है ॥ जैसे ' वायौरूपत्वेन स्पर्शनास्ति' इहां स्पर्शके अत्यंताऽभावकी प्रतियोगिता तो स्पर्शमें रहे है औ प्रतियोगिताऽवच्छेदक रूपत्व धर्मरूपमें रहे है ॥ ता रूपत्व धर्मसहित प्रतियोगिता है जाकी ॥ ऐसा जो वायौमें स्पर्शका अत्यंताऽभाव है ॥ सो व्यधिकरण्य धर्माऽवच्छिन्न प्रति योगिताक अत्यंताऽभाव कहिये है ॥ तैसे 'ब्रह्मणि प्रपंचो नास्ति' इहां प्रतियोगिता तो प्रपंचमें रहे है औ प्रतियोगिताऽवच्छेदक परमार्थिकत्वधर्म ब्रह्ममें रहेहै॥ता धर्म अनवच्छिन्न प्रतियोगिताहै जाकी॥ ऐसा जो प्रपंचका ब्रह्ममें अत्यन्ताऽभावहै ॥ सो व्यधिकरण्य धर्माऽवच्छिन्न अत्यंताऽभाव कहियेहै औ अन्यग्रन्थकारोनें तो❋स्वाऽऽश्रयत्वेनाऽभिमत यावन्निष्ठाऽत्यंताऽभावप्रतियोगित्वं मिथ्यात्वं ❋ ऐसा मिथ्यात्वरूप अत्यन्ताऽभाव कह्या है ॥ तहां जैसे कल्पित सर्पका आश्रयरूप

करके स्वीकार जो रज्जु ॥ तामें सर्पादि भ्रमका स्थित जो अत्यन्ताऽभाव॥ ता अत्यंताऽभावकी सर्पादि भ्रमकों जो प्रतियोगिता है॥ सो मिथ्यात्व कहिये है ॥ तैसे कल्पित प्रपंचका आश्रयरूप करके स्वीकार जो चैतन्यरूप ब्रह्म ॥ ता चैतन्यरूप ब्रह्ममें स्थित जो प्रपंचका अत्यन्ताऽभाव ता अत्यान्ताऽभावकी जो प्रपंचकों प्रतियोगिता है॥सो मिथ्यात्व कहिये है॥ऐसा मिथ्यात्वरूप अत्यन्ताऽभावही 'ब्रह्मणिप्रपंचो नास्ति' ऐसी प्रतीतिका विषयहै और कोईभी अभाव ऐसी प्रतीतिका विषय नहीं ॥ १६ ॥ ❀ शिष्यप्रश्नः ॥ चौपाई ॥ बध्य ज्ञानी औ ज्ञानी जोई ॥ऐसे समान कथ्य हैं दोई॥ बध्य ज्ञानीके चिन्ह कहिये॥पुन मम ज्ञानी चिन्ह लखीये ॥ १७ ॥ ❀ गुरुरुवाच॥ ❀ चौपाई॥ बध्य सुज्ञानी हईयेजोई ॥ ताके चिन्ह वखानोतोई॥ कपोलसें इकाऽह्नित्याऽऽलापे ॥ परकांता कंचन मन धापे॥१८॥स्व सुत दारा ग्रह धन माही॥ अति खचतव्हैसं

शयनाहीं ॥ ताकों नीच जान करतजीये ॥ यिह सिद्धांत विशिष्टकों भजीये ॥ १९ ॥ ज्ञानी चि-
न्ह सु द्वैविध जानो ॥ स्व पर कर संवेद्य पछानो ॥ इच्छा द्वेषाऽभाव सुजोई ॥ स्वसं वेद्य जानीए
सोई ॥२०॥ परसं वेद्य अब चिन्ह वखानो ॥ चित एकाग्र कर मन मानो ॥ उदासीनवत् सदा-
सुरहे ॥ विषय रागसो कबी न गहे॥२१॥विना रागसें जु प्रवृत्ति होई॥इन्द्रिय धर्म जान है सो-
ई ॥ आत्म धर्म सु कदा नहिं जाने॥ सुख दुःखभी पर धर्म पछाने॥२२॥ निज स्वरूपमें सु स्थि-
त सद रहे ॥ सहन सीलता सद अति गहे ॥ कंचन माटी एकसमाना ॥ तुल प्रिये अप्रिये सम
जाना ॥ २३ ॥ निर यत्न विषय जु प्राप्ति होई ॥ तौभी धीरज धारे सोई॥स्व स्तवन निंदा निज
सुन करही ॥ हर्ष शोक कदा नहिं धरही ॥ २४॥ मानाऽपमान करे जु कोई ॥ तौभी हर्ष शोक
नहिं जोई ॥ पुन शत्रु मित्र देखके मीता ॥ समान रहे मुख दुत चीता ॥ २५ ॥ अति कृपालू कपट

नहिंराई ॥ मृदुल वचन कथे सुख दाई ॥ परसं वेद्य चिन्ह यिह गायो ॥ श्रीकृष्ण अर्जुन भ्रम मिटायो ॥२६॥ ❀ शिष्य अनुभव ॥ भुजंग प्रयात छन्द ॥ हमे साम आए न कोई पछाने ॥ कऱ्यो आप दर्शों मने सांत आने॥हुती मोहपासी कटी तोहवाच्यै॥ लह्यो रूप सोई कहै वेद साच्यै ॥ २७ ॥ अहो आज मेरे बडे भाग जागे ॥ भयो तूल दृष्टी तजै द्वैष रागै ॥ महा अन्ध जोई अज्ञाना बखानै ॥ करचो नास ताकों ब्रह्मानंद मानै ॥ २८ ॥ कवित्व ॥ बंध्याको सुत जैसे बैठके गगन बीच मारू भ्रम नीर सींच धाम नभ कीनो है ॥ कीरी पय पान कर बन्धया सुत सूर भयो शश शृङ्ग छेद कियो धनुष नवीनो है ॥ काट केश कूरम सु हाथ दृढ़ फास लिये गगन प्रसून मधु पीय मद भीनो है ॥ एसो ही प्रपंच यिह सत्यको अभाव जामें बहुधा विचार कर भली भांत चीनो है ॥ २९॥ दोहा ॥ निज स्वरूपमें विश्व सभ, नर खर शृङ्ग समान॥

॥१४३॥

चिद् घन एक अखण्ड अज, निज स्वरूप पहिचान ॥ ३० ॥ बन्ध्या पूत अवस्था जिम, किनेहूं न देखी नैन ॥ जीवेश्वर पुन जगतकों, लष्यो आपकी सैन ॥३१॥ बोधरूप सु आत्म बिषे, बंध मोक्ष कछु नाहिं ॥ स्वप्रकाश सूर्य बिषे निस बासर जिम नाहिं ॥ ३२ ॥ ❀ किंवा ॥ सवैया ॥ आतमदेव भयो बहु भातन भूत परेत पिशाच पतङ्गा ॥ ब्याल तिडाल बिहंगम जंगम केहर कीर कपोत कुरङ्गा ॥ किंकर कोवद् कीस कुकारक किंनर कामक क्रूर अनङ्गा ॥ ज्ञान बिना भ्रमसों यिह भासत ज्ञानभये यिह एक असङ्गा ॥ ३३ ॥ कवित्व ॥ फल फूल पत्र शाख शाखीसों न भिन्न तात दामनी दमक सभ दामनी हि भानीये ॥ घटाकाश जोई महाकाशसें न-भिन्न सोई रविको प्रकाश हीये रवि रूप आनीये ॥ हीरकी चमक हीररूप नहिं भेद कछु इन्दु को प्रकाश इन्दुरूप पहिचानीये ॥ तैसे भावाऽभाव नाम रूप जो प्रपञ्च यिह कहित कुशल

कुशलरूप मन मानीये ॥ ३४ ॥ दोहा ॥ ब्रह्मरूपयिहसर्वहि, चिदानन्द विभु एक ॥ गुरुशिष्य निर्गुण सगुण, दीषत भांत अनेक ॥३५॥ ❋ गुरुरुवाच ॥ चौपाई ॥ असब्रह्मज्ञानि योई मीता ब्रह्माऽभ्यास करे इक चीता ॥ ताकी रीती सुनो सुजानो ॥ स्वचित एकाग्र कर मन मानो ॥ ॥ ३६ ॥ एको की सो बैठे जब ही ॥ तत्व चिंतन करे ततज्ञ तबही ॥ जब कोई श्रद्धालू आ- वे ॥ तत्वही ताह ततज्ञ सुणावे ॥ ३७ ॥ अपणे सदृश्य मिलयजब कोई ॥ तत्व सुणें तत्व सु- णावे ओई ॥ जब अधिक की संगती पावे ॥ तत्व सुणे तत्व नाहिं सुणावे ॥ ३८ ॥ जब कोई पांबर मिल जाही ॥ उदासीनता धारे तांही ॥ ऐसे एक पृता जो होई ॥ ब्रह्माऽभ्यास ताहिको जोई ॥३९॥ ❋ यिह भ्रम मात्र जगत् सु हईये ॥ सर्गके आदिही न पईये॥ताकों अधिष्ठान मम सुअहें ॥ मम सदा सर्बाऽतीत अति रहें ॥ ४० ॥ ऐसा निरन्तर चिन्तन जोई ॥ बुधाऽभ्यास

तुम जानो सोई॥❀योगसें त्रिपुटी नासजु करना॥यिह मन नासाऽभ्यास सुधरना॥४१॥❀ दृश्या-
ऽसंभव बोध सु करके॥ रागाद्याऽभाव रति जु अधिके॥ यिह वासना क्षयाऽभ्यास जानो॥ इन
सर्बके भय सर्ब दुख हानो॥४२॥ अस जीवन मुक्त ज्ञानी जोई॥ताको इच्छा रहे न कोई॥तद्यपि
दैव योगके अनुसार॥ कबी जा नावे सुरसरी धारा॥४३॥कबी कर्म नास सु मज्जन करही॥ पुण्य
नासभै चित ना धरही॥कबी उत्तमदेशछेज सवारे॥कबी समसान सून अगारे॥४४॥कबी बहुबिध
विंजन खावे॥कबी भूखो ही रहि जावे॥ या विध ज्ञानी बहु विवहारा॥ जानत सु आत्म चमतकारा
॥४५॥दोहा॥शिरोमणि अपार प्रभु, ऊन न कतहुं ठाइ॥स श्री गुरु नानकं सदा नमो करों मन ला-
इ॥४६॥इति श्रीमदुदासीनवर्य्य विरक्तशिरोऽवतंस श्री६ब्रह्म कृष्ण पाद पथोज प्रैष्येण कुशलदा-
सेन कृता विचाररत्नावलिः अनेकाऽर्थसंग्रह पूर्बक जीवन्मुक्ति निरणयोनाम चतुर्थोनिवासः॥४॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ १ ॐसत्यगुरुप्रसाद ॥ घनाक्षरीछन्द ॥ पाप तम छाई नीच पेचक प्रसन्न भये, राग द्वेष प्रगटे निशाचर चरणको ॥ मार मोह पञ्चसो प्रपञ्च कर हार्यो राय, ध्यैर्य्य धर्म्म कञ्ज सकुचियों परणको ॥ चक्र वाल गुरु शिष्य मेलकी प्रथान गई, भई भूरकारी कुह सकय वरणको ॥ ऐसो काल चीन दीन विपता हरण हार, हंस अवतार गुरुनानक चरणको ॥ १ ॥ दोहा ॥ वेद बखानत जासमें, नेतिनेति घर चीत ॥ निजानंद वहु नानकं, सर्बसु द्वैतअतीत ॥ २ ॥ ❀चौपाई ॥ तद्यपि लेसाऽविद्या जोई ॥ ता कर सकल विवहार होई ॥ स लेसाऽविद्या निरूपण करों ॥ तुमरे संशय सकल मैं हरों ॥३॥ अज्ञानकी द्वय शक्ति जानो ॥ आवरण औ विक्षेप पछानो ॥ ज्ञान आवरण सु शक्ति निवारे ॥ विक्षेपासों विरोध न धारे ॥४॥ ऐसी विषपा शक्ती जोई ॥ लेसाऽविद्या जानो सोई ॥ अथवा दग्ध वस्त्र जो पईये ॥ ता सम दग्ध शरीर जु हईये ॥ ५ ॥

ताकों लेसाऽविद्या जानो ॥ अब तीसर पक्ष करों बखानो ॥ जिउ वासनकों लसन कर भरीये ॥ कालान्तर लसन सु सभ हरीये ॥ ६ ॥ तद नंतर वासना जु मीता ॥ ता सम लेसाऽविद्या ग्र चीता ॥ सा लेसाऽविद्या तब लग रहे ॥ जब लग प्रारब्ध नास न अहे ॥ ७ ॥ सा प्रारब्ध नास व्है जबही ॥ लेसाऽविद्या रहे न तबही ॥ स लेसाऽविद्या नास भ्यो जबी ॥ होइ विदेह मुक्त ज्ञानी तबी ॥८ ॥ यद्यपि भाव द्वैतसी जेती ॥ नष्ट भई है सर्ब सु तेती ॥ तद्यपि अभाव द्वैत न नास्यो ॥ ताकर द्वैत ब्रह्ममें भास्यो ॥९॥ ❁गुरुरुवाच ॥ कबित्व ॥ न्याय मकरंद ग्रन्थ ताके कर्ता बोधानंद ताने अधिष्ठान भिन्नहि निवृत्ति आखी है ॥ननु ग्रन्थकर्ता जेते तिनहूंके मत केते तौ भी कल्पित निवृत्ति अधिष्ठान भाखी है॥सुनो सहत सुप्रीत शंका हरो तुम चीत रजत निवृत्ति सीप तैसे द्वैत राखीहै॥भावाऽभाव द्वैत जोई तबही स्वरूप सोई वेद गुरू ग्रन्थ सर्व यामें चिद साखीहै

॥१०॥ टीका ॥ न्याय मकरंद ग्रन्थका कर्ता जो बोधानंद है ॥ताने अधिष्ठानते भिन्नही कल्पित पदार्थकी निवृत्ति अङ्गीकार करीहै ॥ काहेते जो कल्पित निवृत्तिकों अधिष्ठानरूप अङ्गीकार करिये तौ अधिष्ठान ब्रह्मकों नित्य प्राप्त होणेते ॥ कल्पित प्रपंचकी निवृत्तिभी ब्रह्मरूप होणेते नित्यही प्राप्त होवेगी ॥ यांते श्रवणादिक साधन निष्फल होवेंगे औ कल्पित प्रपंचकी निवृत्तिमें ब्रह्मका अन्तर्भाव कहिये तौ आश्रयके अभाव होणे ते संसार भ्रम अनुत्पन्न होवेगा। औ अनुभव सिद्ध संसारका लोप ना होणेते संसार सत्य होवेगा ॥ ता सत्य संसारकी निवृत्ति ना होणेते श्रवणादि निष्फल होवेंगे ॥ किंवा ॥ ब्रह्म सदा विद्यमान होणेते अनादि है औ संसार निवृत्ति ज्ञानाऽनंतर होणेते सादिहै ॥ यांते सादिमें अनादि ब्रह्मका अभेद संभवे नहीं ॥ इसरीतिसें परस्पर अन्तर्भाव किसीका किसीमें बने नहीं यद्यपि ज्ञानते पूर्व अधि-

ष्ठानकी अज्ञात अवस्था होवे है औ ज्ञान ते अनन्तर ज्ञात अवस्था होवें है ॥ ता ज्ञात अवस्थारूपही कल्पित प्रपंचकी निवृत्ति है ॥ काहेते ज्ञात अवस्था सादि है औ कल्पित प्रपंचकी निवृत्तिभी सादि है तथा श्रवणादिकभी निष्फल नहिं ॥ काहेते ब्रह्मकी ज्ञातअवस्था ही श्रवणादिकोंका फलहै ॥ तद्यपि अज्ञातताकी न्यांई ज्ञातताकाभी अभाव होणेते संसारका पुना उपजीवन हुया चाहिये ॥ काहेते अज्ञानके विषयकों अज्ञातता कहिये है ॥ तहां अज्ञानकृत आवरणही अज्ञानकी विषयताहै औ ज्ञानके विषयकों ज्ञातता कहिये है ॥तहां ज्ञान कर अज्ञानकृत आवरणकी निवृत्तिही ज्ञानकी विषयता है ॥ ता विषयतारूप ज्ञातताके होयां अज्ञातताका अभाव होवे है औ विदेहदशामें ज्ञातताकाभी अभाव होणेते संसारका पुना उपजीवन हुया चाहिये ॥ यांते कल्पित संसारकी निवृत्ति अधिष्ठानते भिन्न है ॥ ता भिन्न

निवृत्तिमेंभी यिह चिंतनीय है ॥ ब्रह्मते भिन्न निवृत्ति सत्य है । वा । असत्य है । वा । सत्य असत्य उभैरूप है । वा । अनिर्वचनी है ॥ ४ ॥ प्रथम पक्ष कहिये तौ यामेंभी यिह चिंतनीय है ॥ परमार्थिक सत्य है । वा । व्यावहारिक सत्य है ॥ परमार्थिक सत्य कहिये तौ ❀ एक मेवा द्वितीयं ❀ इत्यादि श्रुतिसाथ विरोध होवैगा ॥ व्यावहारिक सत्य कहिये तौ ब्रह्मज्ञानते अनन्तर व्यवहारक सत्य रहे नहीं ॥ काहेते ब्रह्मज्ञानते प्रथम याका बाध होवे नहीं औ ब्रह्मज्ञानते अनन्तर जाकी सत्ता रहे नहीं सो व्यावहारिक सत्य कहिये है औ कल्पित निवृत्तिकों असत्य कहिये तौ असत्य शब्दका अर्थ तुच्छरूप है । वा । अनिर्वचनीय है ॥ यिह चिंतन करणे योग्य है ॥ तुच्छरूप कहिये तौ संसार निवृत्तिमें पुरुषार्थता नहीं होवेंगी तथा ज्ञानकों कल्पित निवृत्तिकी साधनताकाभी अभाव होवेगा औ अनिर्वच-

नींय कहिये तौ अनादि अनिर्वचनीय है । वा। सादि अनिर्वचनीय है यिह चिंतन करणे योग्य है ॥ अनादि अनिर्वचनीय कहिये तौ कल्पित निवृत्ति ज्ञानजन्य न होणेते ज्ञानजन्य निवृत्ति प्रतिपादक शास्त्र अचर्तार्थ होवेगे ॥ सादि अनिर्वचनीय कहिये तौ ज्ञानसें अज्ञानरूप उपादानके अभावते कल्पित निवृत्तिकाभी अभाव होवेगा ॥ किंवा ॥ कल्पित निवृत्ति अनिर्वचनीय कहिये तौ अनिर्वचनीय माया औ ताका कार्यहै ॥ यांते कल्पित निवृत्ति माया औ ताके कार्यरूप ही कहनी होवेगी ॥ कहों इष्ट हैं तौ घट निवृत्ति घटरूप है इसकी न्यांइ हासीकी विषयता होवेगी ॥ किंवा ॥ ब्रह्मज्ञानते अज्ञानसहित प्रपंचकी निवृत्ति होणेते तदनंतर साधन सामग्री कोई रहे नहीं ॥ कल्पित निवृत्ति माया औ ताके कार्यरूप होवे तौ ताका निवृत्यक कोई रह्या नहीं ॥ यांते मोक्ष दशामेंभी माया औ ताके कार्यके सद्भावते निर्विशेष ब्र-

त्मकी प्राप्तिरूप मोक्षका अभाव होवेगा ॥ यांते कल्पित निवृत्ति अनिर्वचनीय नहीं और सद्-
ऽसद् उभैरूप कल्पित निवृत्तिकों कहिये तौ पूर्व उक्त सत्यपक्षके तथा असत्य पक्षके दोष प्राप्त
होवेगे ॥ तथा विरोधी धर्मोंका एक पदार्थमें समावेश होवेगा सो दृष्ट विरुद्ध है यद्यपि कल्पित
निवृत्ति सत्य कहिये व्यावहारिक सत्ताका आश्रय है औ असत् कहिये परमार्थिक सत्ताते भिन्न
है ॥ यांते सत्यत्व असत्यत्वका विरोध नहीं तथापि प्रथम विकल्पमें व्यावहारिक सत्य कथन-
में जो दोष कह्याहै ॥ ताके समावेशते यिह कथनभी असंगत है ॥ यांते सदऽसद् उभै रूपभी
कल्पित निवृत्ति संभवे नहीं और अनिर्वचनीय रूप कहिये तौ द्वितीय विकल्पमें असत् शब्दके
अनिर्वचनीय अर्थमें जो दोष कहेहै ॥ ता दोषोंके समावेशते असंगत है ॥ इस रीतिसें अज्ञा
न तत्कार्यकी निवृत्ति सत्यरूप नहीं ॥ यांते सत्य पक्षके दोष आवे नहीं औ असत्रूप नहीं

यांते असत पक्षके दोष आवे नहीं औ सदऽसद उभैरूप नहीं यांते उभैपक्षके दोष आवे नहीं औ अनिर्वचनीय नहीं यांते अनिर्वचनीय पक्षके दोष आवे नहीं ॥ इन चतुर विकल्पोंते विलक्षण पंचम प्रकार है ॥ जैसे सदऽसद् विलक्षणकों सिद्धांतमें अनिर्वचनीय कहेहैं ॥ तैसे चतुर प्रकारते विलक्षणकों पंचम प्रकार कहे हैं ॥ यिह बोधानंदका मत है सो संभवे नहीं ॥ काहेते व्यावहारिक आकाशादिक औ इन्द्रजालकृत प्रातिभासिक पदार्थ तो लोकमें प्रसिद्ध हैं औ परमार्थिक ब्रह्म वेदमें औ ज्ञानीयोंके अनुभव सिद्ध है ॥ इन सर्वते विलक्षण कोई पदार्थ लोक शास्त्रमें प्रसिद्ध नहीं ॥ यांते अप्रसिद्ध अज्ञान तत्कार्यकी निवृत्तिरूप पंचम प्रकार माने तौ पुरुषार्थताका अभाव होवेगा ॥ काहेते पुरुषकी अभिलाषाका विषय पुरुषार्थ कहिये है ॥ सो अ अत्यंन्त अप्रसिद्धमें पुरुषकी अभिलाषा होवे नहीं किंतु प्रसिद्धमेंही अभिलाषा होवे

है ॥ यांते कल्पित निवृत्ति पंचम प्रकार संभवे नहीं यद्यपि अज्ञान तत्कार्यकी निवृत्ति ब्र-
ह्मरूपभी मुमुक्षुजनोंकों प्रसिद्ध नहीं तथापि पूर्व अनुभूतमें अभिलाषा होवे है यिह नियम
नहीं ॥ किंतु अनुभूत सजातीयमेंभी अभिलाषा होवे है ॥ जैसे भयरूप अनर्थ हेतु सर्पकी
निवृत्ति रज्जु रूप है ॥ तैसे जन्म मरणादिरूप अनर्थ हेतु संसार निवृत्ति ब्रह्मरूप है ॥ इस
रीतिसें अधिष्ठानत्व धर्मसें ब्रह्मरूप संसारकी निवृत्ति ॥ अनुभूतके सजातीय होणेते पुरुषकी
अभिलाषा संभवे है औ पंचम प्रकारवादिके मतमें अनुभूत सजातीय ना होनेते अभिलाषा
संभवे नहीं और अधिष्ठानते कल्पित निवृत्ति भिन्न माने तौ भाष्यकारके वचनोंसेंभी विरोध हो
वेगा॥काहेते भाष्यकारनें अनिर्वचनीय अज्ञान तत्कार्यकी निवृत्तिभी॥अनिर्वचनीयरूप मानके
द्वितीयादि क्षणमें ब्रह्मरूप मानी है (ननु) ग्रन्थ कर्ता जितनेकहैं तिन्होंके मत नाना प्रकारके हैं॥

तिन्नोंकाभी भाष्यकारके बचनोंसें विरोध होवेगा (उत्तरः) हे वादि अधिष्ठान वस्तुविषे अध्यस्त वस्तुका आरोपरूप जो अध्यारोप है।।तामेंतो ग्रन्थकारोंका मतभेद है।।सो मतभेदभी अद्वैतबोधा-ऽर्थ है।।काहेते किसी मुमुक्षुकी बुद्धि किसी मतकों ग्रहण करके अद्वैत नेष्ठावाली होवे है औ किसी मुमुक्षुकी बुद्धि किसी मतकों ग्रहण करके अद्वैत नेष्टा वाली होवे है ॥ यांते अध्यारोपमें मतभेद सर्व मुमुक्षु जनोंके बोधाऽर्थ है और अधिष्ठानते अध्यस्तकों भिन्न कन्या अध्यस्तका अ-भाव निश्चयरूप जो अपवाद है।।तामें किसीभी ग्रन्थ कारका मतभेद नहीं किंतु सर्व मतमें अध्य-स्तका अभाव आधिष्ठानरूप है ॥ अब प्रीतिसहित चित्तकों एकाग्रकर दृष्टांत श्रवण करके अपणें चित्तकी शंका दूर कर ॥ जैसे अध्यस्त रजतका अभाव आधिष्ठान शुक्तिरूप है ॥ तैसे अव्यस्त अज्ञान तत्कार्यकी निवृत्तीका अधिष्ठान ब्रह्म सर्वही ग्रन्थकारोने अंगीकार किया है ॥

यांते अभावरूप अध्यस्त द्वैतब्रह्मरूप है और जो ज्ञात ब्रह्मरूप माननेंमें दोष कह्या ॥ विदेह दशामें ज्ञातत्वके अभावते कल्पित निवृत्तिका अभाव होनेतें॥ पुनः संसारका उपजीवन हुया चाहिये॥ ताका यिह समाधान है॥ ज्ञातत्व विशिष्ट । वा । ज्ञातत्व उपहित ब्रह्म विदेहदशामें नहीं है ॥ किंतु ज्ञातत्व उपलक्षित विदेहदशामें ब्रह्म है॥ यांते ज्ञातत्वके अभाव होयांभी उपलक्षित व्यवहार बन्या रहे है ॥ काहेते विशेषण तथा उपाधितो व्यावर्तनीय के जा देश तथा जा कालमें होवे है॥ ता देश तथा ता कालमेंही विशिष्ट व्यवहार तथा उपहित व्यवहार होवे है औ उपलक्षणमें वर्तमान देश तथा वर्तमानकालकी अपेक्षा नहीं ॥ काहेते जैसे देवदत्त गृहका काक उपलक्षण है॥ सो देवदत्त गृहके सर्व देशमें होवे नहीं किंतु एक देशमें होवे है औ देवदत्त गृहसें चलया जावे तौभी उपलक्षित व्यवहार देवदत्त गृहमें होवे है॥

तैसे ब्रह्मके सर्व देशमें ज्ञातत्व नहीं किंतु अंतःकरण देशमें ज्ञानत्व है औ विदेहदशामें ज्ञातत्वके अभावतेभी उपलक्षित व्यवहार ब्रह्ममें बन्या रहे है यद्यपि जामें कदाचित् ज्ञातत्व होवे ॥ तामें ज्ञातत्वके अभाव होयांभी ज्ञातत्व उपलक्षित माने तौ ज्ञातत्वसें पूर्वकालमेंभी भावी ज्ञातत्वकों मानके ज्ञातत्वोपलक्षित कह्या चाहिये ॥ कहें इष्ट है तौ संसार दशामेंभी ज्ञातत्वोपलक्षित अधिष्ठानरूप संसार निवृत्ति होनेते अनायासतेही पुरुषार्थकी प्राप्ति होवेगी तथापि उपलक्षण संबन्धते अनन्तर उपलक्षित व्यवहार होवेहै ॥ पूर्वकालमें उपलक्षित व्यवहार होवे नहीं ॥ जैसे काक संबन्धसें उत्तर कालविषे देवदत्त गृहमें काकोपलक्षित व्यवहार होवेहै ॥ यांते ज्ञातत्वकी उत्पत्तिसें पूर्व संसार दशामें ज्ञातत्वोपलक्षित ब्रह्मरूप अधिष्ठान नहीं किंतु ज्ञातत्वकी उत्पत्तिसें उतर कालमें ज्ञातत्वके अभाव होयांभी ज्ञातत्वोपलक्षित ब्रह्मरूप अधि-

ष्ठान है ॥ यांते हे चिद् संपूरण द्वैतका अभावरूप जो अद्वैतहै ॥ सो ज्ञातत्वोपलक्षित अधिष्ठा-
न तूं है ॥ यामें तत्त्वमस्यादि वेद ॥ १ डेंा सत्यइत्यादि गुरुग्रन्थसाहब और गीतादि सर्व शास्त्र
साक्षी कहिये प्रमाण हैं ॥ १० ॥ सवैया । सूक्षमते बहु सूक्षमहै लघुते लघु आह महान महा-
ना ॥ दूरहते बहु दूर दयानिधि नेरहते जनकों नियराना ॥ सुन्दर यावत सुन्दरते अर मान्यजि
ते तिनमे वर माना ॥ कोमलसें अतिकोमल पीवर पीवर दासकुशाल पछाना ॥ ११ ॥ जङ्गम
भूत परेत पिशाच पुकारित है नर केतकभूले ॥ पाहिन पूजत पीपरपादप पाद पखार गवावत
सूले ॥ कानन केहर संग निवास विवास रहें वरबारहि कूले ॥ दास कुशाल कुशाल भये हम
हारदके सुखमें सद झूले ॥ १२ ॥ अज्ञकहे ममरोख न होवत तज्ञ कहे कछु नाह हुलासा ॥ राव
कहे कछु रीझु न मे रिप रंक कहे कछु नाहि जिलासा ॥ ज्ञान प्रकाश कियो दशहू दिश रोकलि-

यों जनधातु किलासा॥खेद तनो मम कूर गिरा खल तोइ तनोदल तीर सिलासा॥१३॥ दोहा॥
विविध प्रक्रिया यांहिमें, विविध मुमुक्षु जान॥ भ्रमोछेद व्है जासते, सोई लखो प्रधान॥१४॥
टीका॥ इस ग्रंन्थमें नाना प्रकारकी प्रक्रिया जो लिखी है सो उत्तम मध्यम कनिष्ठ भेदसें नाना प्रकारके मुमुक्षु जानकर लिखी है परन्तु भ्रम निवृत्ति जिस प्रक्रियासें होवे सो प्रक्रिया प्रधान है॥ यांते जिस प्रक्रिया विषे रुचि होवे तिसप्रक्रियाकी रीतिसें॥ विवेक वैराग्यआदि च्यार साधन संयुक्त हुये मुमुक्षु जनोंने॥ वेदान्त शास्त्र औ ब्रह्मनिष्ठ गुरुके मुखारबिंद द्वारा॥ वाच्यार्थ औ लक्ष्यार्थकों विचारकर यथार्थजानके॥ श्रवण मननादि द्वारा संशय विपर्ययकों निवारणकर॥ दृढ़ अपरोक्ष निष्ठासें अज्ञान औ तत्कार्यरूप अनर्थकी निवृत्ति औ परमानन्दकी प्राप्तिरूप॥जीवनमुक्ति औ विदेह मुक्तिका अनुभव करना॥ १५॥ दोहा। गुण ग्राहिक गण सुजनकों, मम

बारकके बैन ॥ पूत गिरा तोतर सुने, मात पिता सुख दैन ॥ १६ ॥ नीच निन्द हैं ईश रव मम गिनती किन बीच ॥ दुग्ध छोर गो रुधरकों, चीचर पीवत नीच ॥ १७ ॥ दोहा ॥ जै गुरु नानक नती गुरु, पुननिरीह सभसंत ॥ जासमयातें विघन सभ, प्रतिहत भये अनंत॥१८॥ सोरठा ॥ श्रेयस्कर भव हार' पाद पद्म श्रीचन्हके ॥ सदा सविनय जुहार, कण्टक बिन नीरज नहीं ॥ १९ ॥ श्रीगुरु चरण निहार, प्रारम्भ्यो चुहणी पुरे ॥ प्रिय जन मन उपहार, सुधा सरोवर इति भयो ॥ २० ॥ दोहा । सम्बत् विक्रमभूपको, लोक ७ वेद ४ ग्रह ९ सोम १। कार्तिक शुक्क त्रयोदशी, इति सुग्रन्थ स्तोम ॥२१॥ इति श्रीमदुदासीनवर्य्य विरक्त शिरोऽवतंस श्री६ ब्रह्मकृष्ण पादपथोज प्रैष्येण कुशलदासेन कृता विचाररत्नावलिः विदेहमुक्ति निरणयोनाम पंचमोनिवासः ५

श्रीगणेशायनमः ॥ १ॐ सत्यगुरु प्रसाद् ॥ अथ प्रत्यक् अनुभव प्रारम्भः ॥ दोहा ॥ प्रत्यक् अनुभव ब्रह्माऽऽत्मा, जामें जगतोऽसार॥नानक पदको लक्षसो, सोऽहंरूप अपार॥१॥कवित्त॥ भक्तनके हिताहित आगे पीछे राम फिरे बामे दाहनेमें किल रामको पसारो है ॥ खान पान आन जान निशा दिन साथ जान वास्तव विचार किये रामते न न्यारो है ॥ देखे सुने ग-न्ध लेत राम पुन वहुही सर्ब सरूप मेरे मनमें भरोसो भारो है ॥ रामकी शरण गहो भाल न कलंक लहो चरण शरण दुरायते रुख कारो है ॥ २ ॥ ❋सवैया ॥ प्रार्थना पुना शिष्यकी प्रभुजी तुम मम भव साग्रते कढलीजे ॥ दीन दयाल कृपाल कृपानिधि दान अभै पदको मम दी-जे ॥ और सभै भ्रम दूर करो इक संशय विपर्ययते रहित सुकीजे ॥ जिह प्रकार लखूं निज आतम सोई उपाइ कहो भ्रम छीजे ॥ ३ ॥ ❋॥गुरुरुवाच॥कवित्व ॥ प्रत्यक्षादि लौकिक प्रमाणते

सुजाकी सिद्धि होत होत उत्पन्न पुन नाश ताको नीत है ॥ भौतिक प्रणामी द्रव्य अंशवत परि-
छिन्न परस्पर भिन्न पासे मिथ्या यिह रीति है॥ऐसोही प्रपञ्च तरु तासके आरोप विषे कोवद कलेश
सहे केवल अनीत है॥जैसे नर नीत निज हाथनसें भलीभान्त डीडकों निकार मेटे कैसी विपरीति
है ॥ ४ ॥ पदजो अलौकिक सो लोकमें प्रसिद्ध नाहिं निजानन्दरूप है ब्रह्माण्ड पिण्डते परे ॥
अपरिणाम निर्वयव गुण क्रिया जाति सून सर्व कल्पना विहीन वाक्य विषय न करे ॥ अव्यक्त
निराकार निरालम्ब तर्क बिन तेज पुञ्ज पूर्ण ध्यान कौन विधको धरे ॥ ऐसो निरुपाध तामें मा-
याकों आरोप धीर शिष्य हित विधि औ निषेध वाक्य द्वय ररे॥५॥सुत वित्त भार्या समाज गज
बाज रथ ग्राम धाम गड सैना प्रजा जांके बासते॥देह इन्द्रिय प्राण मन बुद्धिसु अज्ञानाऽऽदि कार्य
कारण बर्ग भासे जा प्रकाशते ॥ लौकक वैदिक मत शुभाऽशुभ यावत हैं सिद्ध किये सिद्ध होह

असिद्ध होवे जासते ॥ ऐसो स्व प्रकाश परम प्रेमका है आस्पद परमानन्द निज सुख चाहे फूस घासते ॥ ६ ॥ कोऊ तो कहित यिह स्थूल वपु आत्मा है कोऊ इन्द्रिय प्राण कोऊ मन पङ्कमें धसे ॥ कोऊ कहे बुद्धि कोऊ कारण शरीर कहे शून्य कोऊ शब्दाऽऽकाशमें फसे ॥ कूए भांग परी सभी पीयके सु बौरा भये करत प्रलाप एक मोह ग्राहके ग्रसे ॥ जिनके विचार सोई आत्माकी जाने सार सार बिन बके सोतो मोह ब्यारके डसे ॥७॥ तेरी तो न देहहै न तूं है देहरूप पुन देहसों सनेह कर क्यों हैरान होत हैं ॥ भूतनकी देहहैं असत्य जड़ दुःख ऐसे अधमसों प्रीत जोड़ क्यों बड़ाई खोत हैं ॥ दृश्यमान यिह तन आत्म न सहितमन तासो तद्रूप व्हैके वृथा यौंही रोत हैं ॥ आपकों संभार कहां तुझमें संसार तूंतो निरामयाऽछिद्र बैकुण्ठ परम जोत हैं ॥ ८ ॥ तूंतोहैं अचाहि देव तोंमें कहा चाह पड़ी चाह आदि वृति अन्तःकरणकों

धर्महै ॥ तूंतो हैं अखण्ड खण्ड अङ्ग हाथ पाव आदि सोतो असत्य जड़ दुःख रोम चर्म हैं ॥ तूंतो हैं अकर्ता जामें क्रियाकी लेश नाहि धावनसें आदि सोतो प्राननको धर्महैं ॥ सर्वको जो साक्षी जाकों कहे वेद अविनाशी बहु तब रूप निश्चय जान यिही मर्म है ॥ ९ ॥ शस्त्र नहीं छेद सके पावक न जार सके वायुसों न शोष होइ नीरसों न गरे है ॥ क्षुधा औ पिपाशा हर्ष शोक वृद्धि स्थिति नाह क्षीयते प्रणाम पुना जायते न मरेहै ॥ तीनो देश तीनो कालतीन ना अवस्था जामें सजातीय विजातीय सुगतते जु परे है ॥ निर्विकार निराकार निरामय निराधार निर्विशेष रूप जो सो तुही वेद ररे है ॥ १० ॥ रज्जुकों विवर्त उरग रज्जुसों न भिन्न कछु शुक्तिको विवर्त र-जत शुक्ति स्वरूप है ॥ मृत्यकामें भांजन सो मृत्यकासें न्यारे नाहिं थंब माहि पूतरी अनेक एको जूपहै ॥ जलके तरङ्ग बहु जलसें न जुदे कछु घाम माहि नीर वैतो शुद्ध एको धूप है ॥ तैसे यिह

प्रपञ्च सभी तेरोही विवर्त तुझते पृथक् नाको रंक नाको भूप है ॥ ११ ॥ शब्द स्पर्श नाहि रूप रस गन्ध नाहिं भूत तोय तेज नाहिं वायु नाहिं व्योम है ॥ त्रिगुण हंकार नाहिं महतत्त्व माया नाहिं विद्दत न तारागण सूर नाह सोमहै॥देव दैत्य जक्ष नर किन्नर गन्धर्व नाहिं आश्रम वर्ण न अनुलोम न प्रतिलोमहै॥ परं ब्रह्म देव जो सापेक्षक शब्दशून्य सोऽहं स्वरूप जामें भेद कदेनाहिं रोम है ॥ १ २॥ ब्रह्मा विष्णु रुद्र इन्द्र चन्द्र कुबेर यम मारुत गणेश जहां भानु न भवानीहै ॥ भौम बुध बृहस्पति शुक्र राहु केतु मध्यमा वसंती परा बैखरी न वानीहै ॥ मतबादिवेष धारीदर्शन पाखण्डलिङ्ग गुरु शिष्य पक्षपात तहां फानी है ॥ कबी कोवद वाचाल काहूंकी न गले दाल सो स्वरूप मेरो जामें ज्ञानी न अज्ञानी है ॥ १३ ॥ पीरनकी पीरी औ फकीरी फकीरनकी मीर-नकी मीरी जामें रंच न ठरातहै ॥ योगकला योगिनकी भोगकला भोगिनकी क्रोधिनको क्रोध

जामें वह्यो चल्यो जात है ॥ सिद्धनकी सिद्धाई औ कविअनकी कबिताई पुन पण्डताई पण्ड-
तनकी जामें न दखातहै ॥ ऐसो जो असंग जामें काहूंको न चड़े रंग सो स्वरूप मेरो सर्ब जा
पलात है ॥ १४ ॥ राग रु द्वैष मानाऽपमानहू न जामें काम क्रोध लोभ मोह पुण्यहू न पाप-
है ॥ वैराग्यविवेक शम दम यम नेम क्षिमा औ संतोष जामें जाप नआजाप है ॥ ब्योमवत पूर
रह्यो ऊरन न काहू ठौर ताहीके साक्षात् भये मिटे त्रय ताप है ॥ देवनको देव महादेव बहु चै-
तन्य घन सर्बको प्रकाश करे सुसंवेद आप है ॥ १५ ॥ संचत सुक्रिया जाल जामें नाहिं ती-
नो काल नाल और सर्ब सहकारी तामें नाश है ॥ कायक बाचस मानसी निमित्त नित्य प्राश्चित्त
कामुक निषिध क्रिया जासमें उदास है ॥ प्रारब्ध लेश जामें न्यून औ विशेष नाहिं इच्छत
अनिच्छत परेच्छत अवकाश है ॥ ऐसो निष्कर्म सिद्ध अक्रिय निर्बन्ध मुक्त साध सो अतीत

सोऽहं आप आपे स्वप्रकाश है ॥१६॥ अद्वैत मुद्गर लीन जब निज कर सु पुद्गल चूर कीनो और सर्व जैन धर्मको ॥ बुद्ध सिर तोडयो सुचारवाक माथा फोडयो शैवीविदार उदैकीनो वृत्ति चर्मको ॥ पोलमती मार समावादीले पछाड दलयो सांख योग न्याय मीमांसक कर्मको ॥ रह्यो अद्वितीय अखण्ड निसकंट प्रचण्ड पक्षपात सून सुद्ध मूल भ्रमको ॥ १७ ॥ न्यारे-न्यारे वेष न्यारे न्यारे उपदेश मंत्र न्यारे न्यारे इष्ट देव न्यारी ही उपासना ॥ न्यारे न्यारे चिंतन न्यारी न्यारी धर्म मर्यादा न्यारे न्यारे कर्म न्यारी न्यारी गुरु शासना ॥ न्यारे न्यारे खान पान न्यारे न्यारे पहिरान न्यारे न्यारे लोक न्यारी न्यारी मोक्ष वासना॥जेते नाना मत सभी तत्वसो अतत्व धीर कौनको निषेध करे काकी करे थापना ॥ १८ ॥ मतनके भेद कर भेद नहीं आत्मामें मत नाना दीसें सोतो बुद्धिकी है कल्पिना ॥ बुद्धि आप कल्पित है बुद्धि कल्पये मत जो जो कल्पि-

ताऽध्यस्त सोतो बानीकी है जल्पना ॥ बुद्धि जहां नहीं तहां मतकी न रहे झाई सुषुप्तिमें देष मत परको न अपना ॥ याहीते विबेकी कहे आत्मा अद्वितीय ब्रह्म मत पुना मती दोऊ मिथ्या भ्रम स्वुपना ॥ १९ ॥ परचय शिष्यी पुना दम्भकी सु पूजा ललोपतोकी मित्राई शुश्रूषा पहिचानकी ॥ जगमें व्यवहार एतो देखीये प्रसिद्ध यामें एती करामात पहिरान खान पानकी ॥ चारो नहीं जहां अन्न पट तोय मिले तहां ताते इह बात तजीये सगली तुफानकी ॥ इकोऽहं अद्वयाऽहं शिवोऽहं परं ब्रह्म द्रिड निश्चय धार वृत्ति यही सु ज्ञान वानकी ॥ २० ॥ बकाय मारे पण्डत खुलाय मारे प्रेमी रुवावे बित वांम ग्रह भ्रमावे बुत प्रसती ॥ जेते मतवादी जग चलेहेमें डुवाइ मारे दलदलमें धसयो निकस्त न हसती ॥ ताते विद्वान इन सबते उदास रहे विचरे स्वतन्त्र उजाड तथा बसती ॥ काहूंसो न राखे काम चाहे नहीं मान दान मस्त रहे आठो जाम

आत्माकी मसती ॥ २१ ॥ भोजन सु छादनके हित या संसार बीच नर नाना बिधहूंकी रच-
नाकों रचे हैं ॥ कृषी बणज करें जूप खेले बांस चड़े ज्योतस चकित्सा काव्य कोसनमें पचे हैं ॥
मिथ्या बोले बाट मारे प्राण विप्रके निकारे ठगी हिंसा चोरी बदकर्मनमें खचे हैं ॥ इत्यादि
क्रियाकर अज्ञ नर तन पेट पोषे ज्ञानी उदर काज ऐसो नाहिं नचे हैं ॥ २२ ॥ रूखी सूखी ची
कनी मधुर सीली ताती जैसी कैसी ले मधूकरी निवारे क्षुधा प्राणकी ॥ अद्वैय तत्व विना आन
चरचा नहिं ठाने नातो वारता चलावे राज द्वार खान पानकी ॥ पक्षपात बिन गिर गुहा बन प-
तनमें विचरे सुतन्त्र चाह गलत करे मानकी ॥ ऐसो ब्रह्म वितजोई जीवनमुक्तसोई बासना
न ताके कोई मजब दुकानकी॥२३॥जीरणसी खिंथा घर तूंबरी पुरानी कर पनीआ बिहीन जित कित
डोले धरमें ॥सिरनाहिं चोटी पुन कटमें लिङ्गोटी नाहिं यज्ञोपवीत चिन्न दीसत न गरमें॥ शून्य

मंदरमें बसे गिरि कंदरमें जाइ धसे नदीके किनारे कहूं रहे तरु तर में ॥ ऐसी वृत्ति जाके रागद्वेष-नहीं तांके ज्ञानी त्रिसना विहीन भीष मांगे दर दरमें ॥ २४ ॥ कहूं भूम सौना कहूं खाट औ-बिछौना कहूं वाफता उढौना कहूं नागोही फिरत है ॥ कहूं मान पावै कहूं अपमान आवै कहूं विंजन सु भुक्त कहूं भूखोही रहतहै॥कहूं मोन धारे कहूं ऊर्चास्नुसो पुकारे कहूं क्रोध साथ ताडे कहूं धीरज धरतहै ॥ ज्ञानी देह धर्म जाने माया कल्पित बखाने आप निर्विकल्प माने शोक न लहत है ॥ २५ ॥ कोऊतो कहित यिह बावरो दिवानो मूढ कोऊतो कहित यिह चतुर प्रवीनहै ॥ कोऊ तो कहित वीतरागहै उदार वन्त कोऊतो कहित इन्द्रिय लोलप वृत्ति दीन है॥ कोऊतो कहित यिह निर्मल स्पटिकवत् कोऊतो कहित मति मन्द ये मलीनहै ॥ रागद्वेष हीन धीर परम गम्भीर रहे हर्ष शोकते अतीत एक आत्मामें लीनहै ॥ २६ ॥ सवैया ॥ कोइक निन्दत कोइक बन्दत

कोइक आदर को त्रिसकारै॥ कोइ कहै यिह साधु बड़ो पुन कोइक वञ्चक भाव निहारै॥ कोइक साजन भाव धरे पुन कोइक मूढ़ सु जान धिकारै॥ज्ञानि सभै सिर देहकि डारत राग रु द्वेष रिदे नहिं धारै॥ २७॥ बालनके मध बाल सु दीसत तारनके मध तार बिलासी॥ बृधनके मध बृध क्रिया सब शोकन शोक हुलास हुलासी॥ पण्डितनके मध पण्डित भासत मूकन मूक हुलास हुलासी॥ जीवन मुक्त सदा निर दुंद सु राग रु द्वैषकि बृति बिनासी॥ २८॥ खावत है नहिं खावत भोजन पीवत है नाहिं पीवत नीरा॥ सूंघत है नहिं सूंघत गंधह ओढत है नहिं ओढत चीरा॥ भोगतहै नहिं भोगत जोखहि जोबतहै नहिं जोवत पीरा॥और कुऊ नहिं जान सकै इक धीरनकी गति जानत धीरा॥ २९॥ शत्रु मित्र विषे समता पुन कंचन काचन एकही जानै॥ दुहिता पतनी जिह तूल हलाहल अमृतमें नहिं अंत्राऽऽनै॥ विप्र ढ़ेड अभेद पिखे नहिं

धेन स्वान विषे भिंद पच्छानै ॥ इह भात भई जिह बृत्ति तिसे बुद्धि वेद त तज्ञह बखानै॥३०॥ फाटि कुपीन कसी कटमें पुन फूट सराव धऱ्यो कर माही ॥ स्वापचने विप्रने बिथने भिक्षाऽर्थ सु द्वारन द्वार डुलाही ॥ काहु ग्रि कन्दर बास करै कहु सौधनके मध केल कराही॥जीवन मुक्त सदा निरद्वंद सु राग रु द्वैष रिदे कछु नाहीं ॥ ३१ ॥ सम्यक ज्ञान भयो जिनके घट भींत्र सुभ्रां-त गई तिन सारी ॥ आश्रम ब्रानकि धूड़ उड़ी पुन फूट गई तिन मोहकि झारी ॥ प्रबृति निबृ-ति दोन उखारि निर्मूल भई कुलहा पग धारी ॥ एक निजाऽऽत्म देव सर्वत्र पिख्यो बन सैल गुफा नग रारी ॥ ३२ ॥ सागरकों तर पार भयो गुकि खोर विषे कब मोहकु पावै ॥ मेर कियो करसो जिन चूरन फूलनकु तोड़त क्यो सुक चावै ॥ नाहर मार करे जिन भछन मूसकु देख कि नाहिं पलावै ॥ त्यों तम जालकु तोड़तजोभिसतंतर भेखसु ना उर झावै ॥ ३३ ॥ कबित्व ॥

निजज्ञानके प्रताप सांत भये तीनों ताप कौन जपे ईश जाप भूली सुद्ध तनुकी ॥ जान्यो अवि-
नाशी रिदे समता प्रकाशी सभ चंचलता नाशी मन और इन्द्रिय गणकी ॥ भई बृत्ति ब्रह्माकार
उड़ी वासनाकी छार कछु रही न सम्भार लोक लाज पुत्र धनकी॥अवस्था ज्ञानीकी भाखी जामें
नाहिं साक्ष साक्षी अब कहतहौं कछु सुन अज्ञनके मनकी ॥ ३४ ॥ मनके अधीन ऋषि
मुनि सर्व तापसी हैं मनके अधीन योगी जति ब्रह्मचारी हैं ॥ मनकि अधीन सूर कायर बली
अबली मनके अधीन राव रंक नर नारी हैं ॥ मनके अधीन पीर मीर खान सुलतान म-
नके अधीन पैकम्बर चार जारी हैं ॥ सकल संसार और मनके अधीन ब्रतै ज्ञानीकी तार कछु
मनते सु न्यारी है ॥ ३५ ॥ मन कसपाती बाह्य मुख धावे दिन राती विषय जन्य सुख चाहे
नीत्त बद चालीआ ॥ घेरेसों न घिरे और फेरेसों न फिरे रञ्ज जैसे बिमुहार उठर सुचण्ड विक-

रालीआ ॥ ऐसोहै छकारी सर्व घाटको खलारी कोऊ बड़ोहै पकारी नट खट तेरां तालीआ॥ जा-
के चीत्तहै सुज्ञान ताकी यिह माने आन औरकों भ्रमावे सूत्र धार जिम जालीआ ॥ ३६ ॥
कोऊ बूडे वर्ण बीच कोऊ आश्रम सुकीच कोऊ जन्म मृत्यु भीत सर्तामें वहित है॥ कोऊ
बूडे मत कूप कोऊ बाज भूप जूप कोऊ रूपाऽरूप चक्रमें बहु भ्रमित हैं ॥ कोऊ बूडे क-
रांमात कोऊ बूडे योग खात कोऊ ऊच नीच जाति बाधे लटिकत है ॥ कोऊ बूडे ब्रसराप
कोऊ बूडे कलकलाप बिनाआतमबोध त्रैतापमें बहितहै ॥ ३७ ॥ कोऊ मूढ़कों मुड़ावे कोऊ
केसकों बढावे कोऊ मेडरा कटावे कोऊ कानलै छदावई॥ कोऊ स्वेतंब्र नीलंब्र पीतंब्र कखाय
पट करें सु कोऊ कुलालै पुन पंहिरावई ॥ देवदत्त यगदत्त चैत्रमैत्र आदि नाम स्थूल पञ्च भूत
कार्य शरीरके कहावई ॥ मिथ्या उरज्ञाने मूढ़ आपकों न लखै गूड़ बिना तत्वबोध भव भ्रम

न मिटावई ॥ ३८ ॥ सवैया ॥ शीस जटा मुख मोन धरे जुग उर्ध भुजा गल आसम लावै॥
अम्बर त्याग चितम्बर ओढत लै कदली बकला कट छावै॥ ग्रामकि भीतर पाव न देवत जं-
गलमें फल फूल चबावे॥एक निजाऽऽत्म बोध बिना भव सागरको भ्रम नाहिं मिटावै ॥३९॥
गोपकु चन्दन भाल लगावत लै तुलसी मनियां गलबांधै ॥ द्वारवती भुज छाप छपावत मूंजकि जे-
वडसों कट बांधै॥शाल ग्राम सिला कर पूजन ऐठ जनेउकु डारत कांधे ॥एक निजाऽऽत्म बोध बि-
ना भव सागरके मध बूडत आंधै ॥४०॥ तीर्थन कोट सनान करे रवि अन्त उदे पुहमी फिर आवै ॥
पाठ करै सगरी सु विद्या पुन चारह वेद मुखागर गावे ॥ पावक पांच तपै ऋतु ग्रीखम हेम ऋतु
जलसैन करावै ॥ एक निजाऽऽत्म बोध बिना भव सागरको भ्रम नाहिं मिटावै ॥ ४१ ॥ जो
करनो सुतु नाहिं करे सठ औरकु औरही स्वांग बनावे ॥ आसन साधत आखन मीलत श्रोत्र

सु छिद्रन जन्त्र चलावै ॥ एक सु बोध बिहीन मती सठ पौरष साध अरंनमि धावै ॥ वस्तु समीप न बूझत अंध फिरे इतको उत क्योंकर धावै ॥ ४२ ॥ सूर्य भेदन औ उजली पुन सीत-करा लख सीतलहईये ॥ भीसतकार भरामर साहित सोमित मूरछ आठ लखीये ॥ प्राणकु खैचन रोकन फैकन कुम्भकु सावत औघ बतीये॥एक निजाऽऽत्म बोध बिना भव सागरको भ्रम नाहिं मटीये ॥ ४३ ॥ हैतु प्रतक्ष न सूझत आक्ष सु मारत झाक्ष फिरै कहु अंधै ॥ बैठ करै हठ योग लग्यो भ्रम रोग मिटे न पडै गल फंधै ॥ भेख बनाइकि होइ सु सेख न चीन अलेख धरे सिर धंधै ॥ लाइकि धूड करै कच भूर लखे नहिं गूड हठाग्रह बंधै ॥ ४४ ॥ जीव रहे गि-रि ऊपर ज्यो सु पिआस मरे तर गंगाकि धारा ॥ घाट बिना जल हाथ न आवत प्रावत खोद-नमें पच हारा ॥ त्यों सु परमेश्वर है निज देह विषे मिलतो न बिना गुरु द्वारा ॥ आसन और

सु नेम जमो पुन कुंभक साधत मूढ गवारा ॥ ४५ ॥ दाडि सु मूछ मुडाइकि सीस भयो नखलौ सिख घोटम घोटा ॥ खोल कुपीन दई कटसों पुन डार दयो करसों डंड लोटा ॥ धांतकु नाहिं सम्रास करे बिचरे भव मण्डलमें बिन ओटा ॥ एक निजाऽऽतम बोध बिना इउ ज्यों अरणो बनको पसु झोटा ॥ ४६ ॥ अन्तरजामी त्रिकालको बेता पुन बानीको सिद्ध रसाइनी हाटक ॥ सांख पतंजल न्याय मिमांस विशेसक औ विदान्तको पाठक ॥ ज्योतस नीत व्याकरणमें गत काव्य कथ्या रु पठया बहु नाटक ॥ आतम बोध वैराग्य बिना इउ जिउ नटुआ बकैचारनी भाटक ॥ ४७ ॥ चारों वेद पढया षट् शास्त्र खूब कडया ब्याकरण बीच हडया पुरान कथा ठांन है ॥ मोहनी उचाट मरना उनमाद बसी करना लोपांजन धन हरना इन्द्रजालजानहै ॥ वैदकमें ऐसों अस्वनीकुमार जैसों रोगहोइ कैसों दृगदेख भानहै ॥ ऐसों तो प्रबीन एक आतुम-

बोध हीन ताकों जान दुखी दीन वैतो जनमोंकी खान है ॥ ४८ ॥ भारत रामायण भागवत-लौ पुराण सुने छुटीनाहिं हन्ता ना मिटी बाह्य ममता ॥ झांझकों बजाइ रहे ऊचे स्वर गाय रहे शिलालौ पुजाय रहे नाशी नाहिं तमता ॥ प्राणायाम साध रहे अजपा अराध रहे सुन रहे अनाहद न आई मन समता ॥ त्रिविध ईक्षणा निवारे बिन राग द्वैष जारे बिन मार मारे बिन कैसे पावे रमता ॥ ४९ ॥ कहावे दासरामका गुलाम दाम चामका जैसे स्वान ग्रामका डोले घर घरमें ॥कण्ठी कण्ठ धारे पै कुबुद्ध न निवारे भारी काम रोग लाग्यो बृत्ति दसो दिस भरमें॥ सालग्राम करै पूजा मिटयो नहीं भाउ दूजा आंख नाहिंसूझा भेद दृष्टि हरी हरमें ॥ विष्णुके जो भक्त सर्व जगत्सों विरक्त नाहिं विषयमें असक्त ब्रह्म बुद्धी मित्र अरमें ॥ ५० ॥ रागी मन्द भागी बोध शून्य भ्रम दागी जांके हृदे आग लागी सुप्रचंड भीम कामकी ॥ खुदसों विमुख वि-

षय जन्य चाहे सुख बोवे दुखनके रुख अन्तर त्रिसना है बांमकी ॥ कपटी कठोर चौर पातकी निकोर घोर राखे सदा लोड हाड चाम दाम तामकी ॥ लंपट विषयी जोष चाहे नई नई तांकी मत मारी गई सुद्ध नाहिं चिद रामकी ॥ ५१ ॥ नर नार वृद्ध बार ग्रामी नगर वासी ऊच नीच नर जावत पद काव्यके अलावते॥स्व रचित अन्य रचित वार्तक श्लोकबन्द शब्द साखी सोरठा चौपाई सु सुनावते ॥ संस्कृत प्राकृत औ आर्बि अङ्गरेजी पसतो फारसी मरहटी तलंगी बांगाली गावते ॥ बर्णनकों जोड़ जोड़ कथनीतो बहुत करें नौ रसमें रस जाको ताको नहीं पावते ॥ ५२ ॥ बड़े चित्तके उदार राजनीतमें खबरदार समे अनुसार बानी बोलते लपेट की ॥ करै पावक आहार फोडे नखसों पहाड़ जलकी वहावै धार जगमाहि बड़े चेटकी ॥ योगकलामें प्रपक्व यांमें कछु नाहिं छक्य सिद्ध वर हक्य जानलेत परपेटकी ॥ ऐसो प्रतापी ब्रह्म

बोध बिना पापी तांकी यावत है कथा सोतो सभी अलसेटकी ॥ ५३ ॥ ठाकुर कहावे ज्यों हजाम ग्राम लोगनमें जाइ राजद्वारमें तौ नाऔ कहि बुलाईए ॥ पण्डित कहावत घुंमार निज ज्ञाति माहि ब्राह्मणोंकी पंक्तिमें कुलालही अलाईए ॥ तैसे परपंथीयोंने मोक्ष जोजो थापि सो-सो बन्धन कहीजे जौ विवेकीयोंमें जाईए ॥ बिना तत्वबोध शंका शोककों निरोध नाहिं दी-नता न छुटे विष्णु लोकते गिराईए ॥ ५४ ॥ बिछूको न मंत्र पास उरग बिल डारै हाथ तर्यो चाहै सागरकों बूडत गोखुरमें ॥ गांठमें छिदाम नाहिं जगमें धनेश बाजे भोजनकी शंका रहै अन्न दाता पुरीमें ॥ वाक्य को न ज्ञान पद वरनकी पछांन नाहिं वाच लक्ष अर्थ उभै कहै बोध उरमें ॥ ऐसे मूढ जीवनकों कासों उपमे करें धर्म अनात्माके मानत अफुरमें ॥५५॥ यथायज्ञ तथा बली जैसी मैया तैसी लली भौडी भौडी भली तन सादृश्य आहारहै ॥ तंतु

सम चीर द्रव्य अनुसार जंजीर अब्यक्त शत्रु बांधवेकों शस्त्र निराकार है ॥ बोध बुधिके आधार बुधि कर्मानुसार कारण अध्यस्त ताकों कार्य असार है ॥ जेतो कोऊ लादे माल तेतीही जगात भरै जितनी प्रवृत्ति करै तितनोहि ष्वार है ॥ ५६ ॥ दुर्गा और गणेश गौरां भैरवी महेस गङ्गा शालग्राम पूजे अन्धरो जानै नाहिं आपछे ॥ आन आन देवकों मनावत फिरत सठ तिसकों न बूझै इह जिसकों प्रतापछे ॥ ईहां पुन ऊहां दसों दिसमें भ्रमत डोलै तपै मूड ताप पुना जपै नाना जापछे ॥ चीनत न नैक तत्व सूझत न शिवपद क्रियाके पंक पडै करत प्रलापछै ॥ ५७ ॥ है तो आप ब्रह्म पुनः कहै हम निश्चय जीव ताके समझायवेको ब्रह्माभी अशक्य है ॥ वेदकी न मानै एक हठकी न छाडै टेक पेचक न सूझै ज्यो मध्यानको अरक्य है ॥ अट पटा भ्रांतिको कुपेच परयो हीयेमांहि सूझत न रंच अविवेकमें गरक्य है ॥ ऐसो जो

असाध्य रोग ताकों उपचार कौन संशय विपर्यय ग्रन्थि द्रिड पर पक्य है ॥ १८ ॥ ओलूयों-की सभा मांहि रविको अभाव कहै नियामक जो बूझै चमगादड़ी बतावतै ॥ तैसे मूड़ बुद्धि कहैं ब्रह्म तीनो काल नाहिं विक्षिप्तनके वाक्यनकी संमत्ता लियावतै ॥ जैसे निद्रा वान नर ऊचे गुल करै मम सीस काटले गयो को ऐसे बिल लावतै ॥ तैसे अपने अज्ञान बस करत प्रलाप अहं पाप पापकर्म सुआत्मा अलावतै ॥ ५८ ॥ अच्युत निरञ्जन अचल शुद्ध ब्रह्म ऐसे चिदमें निगम नेति नेति कर गायो है ॥ व्यापक अछेद्य परि पूरण सुब्योंमवत ज्ञान घन रूप घट घटमें समायो है ॥ अज अविनाशी परिछेद शून्य सुख राशी अटल अनन्त कहूं गयो नहीं आयो है ॥ ऐसो परम ब्रह्म सो अनात्म अध्यास बश दीन छीन भयो आप आ-पे भूत लायो है ॥ ६० ॥ आप भयो बोध अरहंत ऋषभ कपलदेव व्यास औ विसिष्ठ राम

कृष्ण सर्व मूल है ॥ आप भयो पर्वत पषाण नदी सिन्धु लोक दीप खंड त्रिण पादप आपि फल फूल है ॥ आप भयो देव यक्ष किन्नर गन्धर्व नर भूत प्रेत पसु पंखी सूक्षम अस्थूल है ॥ सर्व रूप आप होई जानत सभहीको एक आपकों न लखै यिही अपनी भूल है ॥ ६१ ॥ गिरिसों गिर परै जाइ हिमाले बीच गरै गङ्गा धार बूड मरै हठ क्रियामें प्रधान है ॥ देस नि-रञ्जन रहै सरप सिंह करी गहै सीत उषण ससि सहै बडो मान पान है ॥ हलाहल चबावै देह आगमें जलावै तेग मुह मुह खावै फेर रहै सावधान है ॥ कठन कर्म करै जम चोटी जाइ धरै आत्म विद्या सन्मुख होत मानो जात प्राण हैं ॥६२॥ सवैया ॥ या प्रकार संसारके भीत्र ब्रह्म बोध विना मन नाच नचावै ॥ जिउ कोऊ विप्र राह ग्रसे वहु राह अवेसते ढ़ेड कहावै ॥ तिउ अज्ञान पिसाच लगयो चितसो उलटो बकवाद करावै ॥ ज्ञान चपेट लगे गुरुकी भ्रम भूत भगे

निजकी सुद्ध आवै ॥६३॥ जन्म अनेकके संचत पुन उदे जिहकाल परपक्य उतङ्ग॥शोक विरोग वियोग मिटयो अरु भूल गयो चितसों सभ हंगा ॥ आस घटी पुन चिंत हटी त्रिश्ना सम अन्त्रकी भई भङ्गा ॥ होइ अतीत तजे विषय प्रीत करै सुभ रीति लहै सत सङ्गा ॥ ६४ ॥ असाशिष्य पुन्यके प्रेरे हुए सु अचानक आइ गए गुरु देव स्वामी ॥ त्रिगुन अतीत अभीत अशोक अदम्भ अमोह सु अन्त्र जामी ॥ गुरु ब्रह्म श्रोत्रि अद्वयनेष्ठी पूरण काम सदा सु सुख धामी॥परावर ज्ञान स्वरूपमें राजत वाक उदार परमानन्द गामी ॥६५॥❀॥ साधन सिद्ध मुमुक्षु जोई तिसने गुरुकों निज नैन निहारयो ॥ दण्ड समान प्रणाम कियो पुन सन्मुख बैठके प्रश्न उचारयो ॥ भगवन् यिह संसार जो दीसत चित्र बिचित्र अनेक प्रकारयो ॥ ताकों स्वरूप कहो प्रभुजी बहुरो मम रूप कहो निर धारयो ॥६६॥ ❀ गुररुवाच॥शाबस शाबस शाबस रे शि-

ष्य ऐसे कहयो गुरु दीन दयाला ॥ बहुतही मान दीयो शिष्यकों गुरु करणा कर परम कृपाला ॥ बहुरो कह्यो शिष्य होह सवाधान इकाग्र करो मन वृत्ति जाला ॥ दूर करो मन को उदबेग सुनो जोई पुछयों कहो तत काला ॥ ६७ ॥ तूशको तंदल ईटको आमख वारूसनेह औतोइ नवनीता ॥ बंधयाको पूत तथा शशकोश्शृङ्ग कूंरम रोम आकाशकी भीता ॥ यिह जिम अष्ट अत्यन्त अभाव तियो तुम जानो प्रपंचकी रीता ॥ आतममें जग होयो न है नहिं होहि है असत जड दुःख विप्रीता ॥ ६८ ॥ ❋ ॥ शिष्य प्रश्नः ॥ स्वामन जे तुम अष्टकहे सोऊ त्रिते काल कोऊ नाहिं द्रष्टावै ॥ प्रपंचको ठाठ प्रतक्षही भासत नाम औ रूप सभी कोऊ गावै ॥ नाना प्रकारको है प्रपंच इहु शूक्षम स्थूल असंख कहावै ॥ इसकों मिथ्या तुम कैसे कह्यों हमरे सु मनमें प्रतीत न आवै ॥६९॥❋॥ गुरुरुवाच॥जगहै मिथ्या शिष्य लै सिष्या भ्रमसों भासतहै रज्जु सरप जै-

सो ॥ नभ नील जिवै मृग नीर तिवै शुक्तिगत रजत प्रपंच है ऐसो ॥ ठूठ चौर जथा संख पीत तथा स्वपनेकी सृष्टि प्रपंच है वैसो ॥ गुरु देव कहै दृश्य झूठ अहै जिम बासव जाल कहो सत्य कैसो ॥ ७० ॥ बास्तवते जग नाहिं भयो कछु हैतो सभी यिह आतम भाई ॥ स्वपनेकी सृष्टि संकल्पको नगर अनुभवते वित्रेक न राई ॥ तिउ जो कथिए सुनिए चितीए मन बुद्धिकी दौड़ जहांतक जाई॥ब्रह्मसें इत्र सु भयो नहीं रञ्चक यद्यपि देत नानत्व दखाई॥ ७१॥ ❀ ॥शिष्यप्रश्नः॥हे प्रभु जी तुमरे प्रतापते जान लीयो यिह जगत् असारा॥दृस्य सभै जड़ दुःख अनात्म आगम पाई असत संसारा ॥ सो कृपा करके कहिये गुरु देव जो वास्तव रूप हमारा ॥ ऐसे कही शिष्यने जबही तबही गुरु अर्थ अखण्ड उचारा ॥ ७२ ॥ ❀ ॥ गुरुरुवाच ॥ भो शिष्य वेदको सार कहौं पुन गीताको तत्व सिद्धांत सुनीजे ॥ दसो दिसते मन वृत्तिकों रोककै श्रवण द्वार अ-

मीरस पीजै ॥ स्वैतज येर्ज अंडज उतभुजके मध्य चेतन एक लखीजै ॥ सो चिद अपनो आप लखो यिह धार हदे भवको दुःख छीजै ॥ ७३ ॥ चारोही वेद षठोही शास्त्र दस अष्ट पुराणको तत्व कहे गुर ॥ प्रत्यक जोत सनातन निरालंब ब्रह्म अव्यक्त बिगत ज्वर ॥ सो आप आपने माहि आरोपके देखत आप नानांपुर ॥ सोहं सो तूं सो यिह जगत पुन सोई व्यापक व्याप्य अजर अफुर ॥ ७४ ॥ तेरे चुकाए बिना झगरा यिह कल्प करोड प्रयन्त न चूकै ॥ दूसर और उपाइ नहीं इक तुंही मुकावै तौ तबी यिह मूकै ॥ शस्त्र न छेद सकै जिसकों पुन आग जलावै नहिं पौनसो सूकै ॥ तिस अपने आपमें होइके स्थित फाडके डार संसारके रूकै ॥ ७५ ॥ यिह पृथ्यातिष्टन पृथ्यांत्रो प्रेरे अयंपृथ्वी नहीं वेद कदा सुन ॥ या पृथ्याशरीरं यथा तथा या पृथ्याशरीरं अन्त्रो परेस्त है पुन ॥ इसीते आतमा अन्तर जामी चिदानन्द ब्रह्म परमात्म निर्गुन ॥ सोतो

तुही तुझसें नहीं आन को अपने आपकों आप लखो मुन ॥ ७६ ॥ एक ही देव निरञ्जन पूरन नभ जियों ब्यापक सभ घट बासी ॥ जलमें थलमें पुरमें बनमें तनमें मनमें सभ ठौर प्रकासी ॥ जार्‍यो जरे नहीं मारयो मरे नहीं टारयो टरे नहीं हैअबिनासी ॥ आपही द्रष्टा द्रश्न दृश्य व्है ठाठ रचयो चिद प्रभु ऐसो बलासी ॥ ७७ ॥ अभिन्न भिन्न जियों दीसत है जल भिन्न स्वरूप नहीं कछु गारा॥ सुभ्र वरतल सीतल कठन लगे तन चोट जियोंईट प्रहारा॥तियोंही प्रपंच द्वैत जो भासत थावर जंगम रूप अपारा॥ हैइक ब्रह्म सोईब्रह्म हैंतूं शिष्य भूपत वेदको बाजै नगारा॥७८॥❋॥ शिष्यप्रश्नः ॥ ईश्वर सर्बग्य सिंधु समान है जीव यथा लब है जलकी॥ ईश्वरकों है नित्य ज्ञान सु जीवकों ज्ञात नहीं भगवन् कलकी ॥ ईश्वर है गिरि मेरके साहस्य अर जीव जथा घुंघुंची ललकी ॥ तुम कैसे अभेद कहों जुगको क्यों एकता होइ अचल चलकी

॥ ७९ ॥ गुरुरुवाच ॥ ❀तेल रहयो सरसों तिल भीतर गो रसमें नवनीत रहाई ॥ दारके अन्तर पावक जियो पुहमी घट भीत्र बाहर समाई ॥ है मुकता मणी सिंधुके भीतर जतन कीये बिन हाथ न आई ॥ तियो चिद आतम है रस एक बिना लक्षणा लखयो नहिं जाई ॥ ८० ॥ तत्वमसि महावाक्य जोऊ इत्यादि लै शिष्य उर अंत्रधारो ॥ भागत्याग करो लक्षणा सोयं देवदत्त अयं देवदत्त निहारो ॥ चेतन चेतन तत्व मिलाइके समष्टि व्यष्टि उपाधि निवारो ॥ ईश्वर साक्षी जीव अभिन्न पिखो इह ज्ञान भए अज्ञान बिदारो ॥८१॥ यिह नहीं यिह नहीं यिह नहीं यिह नहीं यिह नहीं यिह नहीं यिह नहीं होई ॥ या परे या परे या परे या परे या परे या परे या परे सुसोई ॥ जो इह जो इह जो इह जो इह जो इह जो इह जो इह जोई सो तुही सो तुही सो तुही सो तुही सो तुही सो तुही सो तुही अवर न कोई ॥ ८२ ॥ तीन

वि०

शरीर अवस्था त्रिते कर्मत्रैकालत्रैजवित्रैविख्याता ॥ त्रैअस्थान त्रैभोग त्रैमात्रा त्रैशक्ती त्रै-फल त्रैही फलब्रदाता ॥ ज्ञातादि त्रिते ध्यातादि त्रिते अध्यात्मादित्रिते देह प्राण संघाता ॥ ये त्रिगुण मूल सभे त्रिपटी निसगुन जोई ब्रह्म सो तूंही ताता ॥ ८३ ॥ कारन सूक्ष्म थूल शरीर विषे अतिसें कर होइ रही हन्ता ॥ घन धाम विषे सुत बांम विषे पसू ग्राम विषे दृढ है ममता ॥ जीवकों जगत् प्रसिद्ध यही जिनसों अर्ध उरध फिरे भ्रमाता ॥त्याग करे अपनो जबही प्रपञ्च तबी सुखरूप लहै समता ॥८४॥ जो नित्यही मन बुद्धि चित्त अहंकार देहा-दिक इन्द्रिय प्राणकों द्रष्टा ॥ प्रत्यक् चेतन बोध स्वरूप प्रकाशक सर्वकों साक्षी सपष्टा॥ ताकों कहै श्रुतिनित्य परमात्मऔर अनित्य अनात्म सर्व सुनष्टा ॥ सो पर ब्रह्म प्रत्यक्ष तुही सुन जास नि-मित्त करें वहु कष्टा॥८५॥ श्रोत्रको श्रोत्र जो है त्वक को त्वक चक्षुको चक्षु घ्रानको जु घ्राना॥रसना

॥१६७॥

रसना जु वाक्यको वाक्य पादको जु पाद है पांनको पांना ॥ पायूको पायू उपस्थ उपस्थ जो है मन-
को मन प्रानको प्राना॥ जो बुद्धिको बुध है चिद परमेश्वर सोतो तुही तुझते नहीं आना॥८६॥ हरदी
जरदी जरदी हरदी मृर्ची कटता रंचक नाहिंन भेदा॥नील मय नीलम ब्याप रहयों मिस्त्री मिष्टान
कहो कत छेदा॥भानुप्रकाश प्रकाश सुभानु है ब्योम ब्योम सु एक अभेदा॥ईश्वर जीव अखण्ड
स्वरूप अयमात्माब्रह्म पुकारत वेदा॥८७॥एकही बस्तुके नाम अनेक जियों पटन नग्र गंज ग्रामा
॥ माधव कृष्ण गोपाल दामोदर मुरली मनोहर औ घन छियामा ॥ दासरथी जनकाऽऽतमजा-
पति राघवनाथ भनै पुन श्रीरामा ॥ तियों ईश्वर जीव कूटस्थ ब्रह्म सु एकके ही कथै यिह ना-
मा ॥ ८८ ॥ कालत्रिते रस एकरहे जोऊ तासकों सु सत्य कहै तत्वबेता ॥ स्वकों परकों नित्य
जानत सो चिदरूप न पुन छियाम न पुन स्वेता ॥ जासमें होय अत्यन्त प्रीति सो आनन्द-

रूप कह्यो इह हेता॥ सो सत्य चित् आनन्द ब्रह्म तुहीं श्रुति जास भने कहे नित नेता॥८९॥ नहिं जिनमें कछु सूक्ष्म थूल पुन त्रिकाल अभाव पईए जिनमें तम ॥ मन सहितहै बानी अ-भाव जहां बुद्धि चिताऽहंकारको नहिं जिनमें गम ॥ भेदसों रहित अभेद निरंतर ब्योम जियों ब्यापक ब्रह्म सदा सम॥ जब क्रिपा कटाक्ष गुरु देव करी तब सोई स्वरूप लखयो अपनो ह-म ॥ ९० ॥ सूखमते अति सूखमहौं पुन महितसों महित दूरसों दूरा ॥ समीपसें हौं अत्यन्त समीप पुन रूडसों रूडहौं गूडसों गूडा ॥ कोमलसें अति कोमलहौं पुन कठनसें कठन् नूरसों नूरा ॥ बाणी विषय कर नाहिं सके हम सर्व अतीत सर्बमें भर भूरा ॥९१॥ जोचिद देव शरीरमें ब्यापक सो चिद भूत पिशाचके मांही ॥ जो चिद गो खुरके मध्य स्थित सो चिद कूंजरमें द्रसांही ॥ जो चिद भूधरके मध पूरन सो चिद पंखीअनमें वरताही ॥ जो चिद ईश्वरआप

तेग तुफंग छुरी बिछूया बरछी बुगदा जम दाड कूदाला ॥ लोसटसें कछु भिन्न नहीं सूई सूया खुरपा परसा पुन फाला ॥ फेन तरंग तुसार सभी जल तियों पंच भूत है एक गोपाला ॥ यिह ज्ञान भयों जब तब द्वैत कहां गुरु खोल द्यो भ्रमको ताला ॥ ९६ ॥ त तज्ञ कहै कछु नाहिं बिडपन अज्ञ कहै सु हमरी नहीं हानी ॥ अज्ञ रु तज्ञ मुमुक्षुताजो मन बुद्धिके धर्म कहै मुनी ज्ञानी ॥ जो बुद्धिको अधिष्ठान निरंत्र ज्ञाता असंग परे प्राण मन बानी ॥ ऐसो स्वरूप अलोकक जोई सोई हौं निश्चय यिह वेद बखानी ॥ ९७ ॥ कर्म कलाप न जाप कियो हितु न आशन सिथत उपासन कीनो ॥ सांग न योग कला हरि सेवन बैठ निरन्तर कियो मन लीनो ॥ साधन चार न चार अचार बिचार नहीं जु स्वतो भ्रम छीनो ॥ है जु कछु मम आह सु संगति संतन पादक मों मन मीनो ॥ ९८ ॥ मंगल रूप अकृतम देव दया निधि दीन दुखारन नाथा ॥

॥१६९॥

भयो सोईहौं चिद ब्यापक दूर सु नाहीं ॥९२॥ जो हौं चिदरूप अखंड परानंद स्थित रूप न आवत जाही ॥ सूखम थूल जितीक दृश्य भासत है हौं सभको प्रकाशक आही ॥ जियों जलमें रविको प्रति बिंब तिवें सब है सु हमरी प्रछाही ॥ घट मट पुन कुड कसुलमें ब्योम जि- यों ब्यायक हौं सर्ब माही ॥ ९३ ॥ जाते यिह सर्ब है जाकर सर्ब है जा विषे सर्ब है जो है सर्वांगा ॥ जाते यिह सर्ब न जाकर सर्ब न जाविषे सर्ब न जो निह संगा ॥ निंर्गुण सगुग आप जोई सोई हौंही ब्रह्म असंगसों संगा ॥ सून असून सत्य असत्य चिद जड दुःखाऽनंद सभ मम अंगा ॥ ९४ ॥ न कोऊ ऊच हैं न कोउ नीच है न कोउ मूरख न कोउ सियाना ॥ न कछु व- रण न अश्रम है नहीं धर्म अचार न कर्म बिधाना ॥ न कछु थावर न कछु जंगम न पंच भूत न कार्य पुन नाना ॥ है प्रमेश्वर एक निरन्तर नाहिंन जिनमें वृति ज्ञान अज्ञाना ॥९५॥

शुद्धिपत्र.

पत्र.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
३	१८	पञ्ज ॥	पञ्च ॥
२६	१७	वर्तंतो हुये ॥	वर्ततेहुये ॥
३२	१४	द्रव्यका परिण मिरूप ॥	द्रव्यकापरिणामरूप ॥
३६	११	षोडशोध्यायके ॥	षोडशोऽध्यायके ॥
४०	१७	नही करनाहै ॥	नहीं करनाहै ॥
४०	१८	लोलुत्व ॥	लोलुप्त्व ॥
४२	१	अलोलुत्व ॥	अलोलुप्त्व ॥
४२	१४	दोषकों ॥	दोषोंको ॥
४२	१७	अलोलुत्व ॥	अलोलुप्त्व ॥
४९	७	भासताह ॥	भासताहै ॥
५२	८	कतृत्व ॥	कर्तृत्व ॥

पत्र.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
५२	१३	ताचतन्यरूप ॥	ताचैतन्यरूप ॥
५६	१३	अनात्य ॥	अनात्म ॥
६०	१८	१उंसता ॥	१उंसत्य ॥
६१	९	परस्वगत ॥	परमात्मामेंस्वगत ॥
६२	१	होवहै ॥	होवेहै ॥
६२	१८	पृथत्क्वेपि ॥	पृथक्त्वेपि ॥
६३	१६	परिणामि ॥	परिणाम ॥
६५	२	इश्वर ॥	ईश्वर ॥
६८	३	होहै ॥	होवेहै ॥
७०	८	मनसासः ॥	मनसासह ॥
७२	२	श्रुति ॥	श्रुत ॥

भयो सोईहौं चिद ब्यापक दूर सु नाहीं ॥९२॥ जो हौं चिदरूप अखंड परानंद स्थित रूप न आवत जाही ॥ सूखम थूल जितीक दृश्य भासत है हौं सभको प्रकाशक आही ॥ जियों जलमें रविको प्रति बिंब तिवें सब है सु हमरी प्रछाही ॥ घट मट पुन कुड कसुलमें ब्योम जियों ब्यायक हौं सर्ब माही ॥ ९३ ॥ जाते यिह सर्ब है जाकर सर्ब है जा विषे सर्ब है जो है सर्वांगा ॥ जाते यिह सर्ब न जाकर सर्ब न जाबिषे सर्ब न जो निह संगा ॥ निर्गुण सगुग आप जोई सोई हौंही ब्रह्म असंगसों संगा ॥ सून असून सत्य असत्य चिद जड दुःखाऽनंद सभ मम अंगा ॥ ९४ ॥ न कोऊ ऊच है न कोउ नीच है न कोउ मूरख न कोउ सियाना ॥ न कछु वरण न अश्रम है नहीं धर्म अचार न कर्म बिधाना ॥ न कछु थावर न कछु जंगम न पंच भूत न कार्य पुन नाना ॥ है प्रमेश्वर एक निरन्तर नाहिंन जिनमें वृति ज्ञान अज्ञाना ॥९५॥

ज्ञान भयो तिसको जिसको बहु कोटन तारतहै निज साथा। ॥ जीवन मोक्ष चरे भव भीतर भीत रहे न सुने किस गाथा॥ जीव सभी पुन आन सुराऽसुर दीन सकीट निबाबत माथा॥ ॥ ९९ ॥ आनन्द रूप अक्रिय देव अपरोख सुते सिद्ध नित्त प्रापत ॥ ताकों ज्ञान भयो जिन-को सोई पूरन कांम पुमान है आपत ॥ जीवन मुक्त हुया विचरे संसारके तापसो नाहिंन तापत ॥ ब्रह्मजोई ब्रह्मबेतासोई यिह प्रत्यक अनुभव समापत ॥१००॥ गीयाछन्द ॥ यिह ग्रन्थ विविध विचार सार अमोल रत्निनसों भरा॥ संसार सागर पेख घोरं जीव हित नौका करा॥श्रीयुत कृपालु ब्रह्म कृष्णवरं पदाब्ज हुं के दासनें॥ बहु शोध मुद्रापित कियो यिह सन्त कुशलदासने ॥१०१॥

शुद्धिपत्र.

पत्र.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
३	१८	पञ्च ॥	पञ्च ॥
२६	१७	वर्तती हुये ॥	वर्ततेहुये ॥
३२	१४	द्रव्यका परिण मिरूप ॥	द्रव्यकापरिणामरूप ॥
३६	११	षोडशोध्यायके ॥	षोडशोऽध्यायके ॥
४०	१७	नही करनाहै ॥	नहीं करनाहै ॥
४०	१८	लोलुत्व ॥	लोलुप्त्व ॥
४२	१	अलोलुत्व ॥	अलोलुप्त्व ॥
४२	१४	दोषकों ॥	दोषोंको ॥
४२	१७	अलोलुत्व ॥	अलोलुप्त्व ॥
४९	७	भासताह ॥	भासताहै ॥
५२	८	कतृत्व ॥	कर्तृत्व ॥

पत्र.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
५२	१३	ताचतन्यरूप ॥	ताचैतन्यरूप ॥
५६	१३	अनात्य ॥	अनात्म ॥
६०	१८	१उंासता ॥	१उंासत्य ॥
६१	९	परस्वगत ॥	परमात्मामेंस्वगत ॥
६२	१	होत्रहै ॥	होवेहै ॥
६२	१८	पृथत्क्वेपि ॥	पृथक्त्वेपि ॥
६३	१६	परिणामि ॥	परिणाम ॥
६५	२	इश्वर ॥	ईश्वर ॥
६८	३	हो है ॥	होवेहै ॥
७०	८	मनसासः ॥	मनसासह ॥
७२	२	श्रुति ॥	श्रुत ॥

पत्र.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
७३	१८	पदक ॥	पदका ॥
७४	१०	मातङ्गतजो ॥	मातङ्गीतेजो ॥
७४	१८	यिद्द ॥	यिह ॥
७५	९	भृमिमें ॥	भूमिमें ॥
७२	१५	पीडा ॥	पीडां ॥
७६	६	पयंत ॥	पर्यंत ॥
७६	१०	करताहुअ ॥	करता हुया ॥
७७	१२	सोरठा॥संतन संग निवास आनंद प्राप्तहोतहै॥दुःखका बहुभंडार बिनसंतनसं-सारजो ॥	दोहा ॥ आनंद प्राप्त होत है, संतन संग आधार ॥ बिनसंतन संसार जो, दुः-खका बहुआगार ॥
८१	१५	कोशभ ॥	कोशभी ॥

पत्र.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
८४	१६	सतरावी ॥	सतारवी ॥
९७	१०	कर्ताकां ॥	कर्ताकों ॥
१०१	१	याः ॥	यः ॥
१०२	१	नतारगः ॥	नतारंगः ॥
१०६	३	तदापि ॥	तद्यपि ॥
१०७	४	३ ॥	२ ॥
१०७	१२	स्वाऽश्रय ॥	स्वाऽऽश्रय ॥
११०	१४	सम्बन्धो * ॥	सम्बन्धो ॥
१११	३	तीरपेंहै ॥	तीरमेंहै ॥
११३	१६	त्वंपदका ॥	त्वपदका ॥
११४	१८	दुसरका ॥	दूसरका ॥
११५	३	उपाधिका ॥	उपाधियोंका ॥

पत्र.	पंक्ति	अशुद्ध.	शुद्ध.
११६	१०	ब्रह्मसही ॥	ब्रह्मसैंही ॥
१२३	१४	मंसर्गोवा ॥	संसर्गोवा ॥
१२६	१४	बुद्धि ॥	निश्चयाकारबुद्धि ॥
		* त्रैपादका* अर्थस्पष्ट ॥	*त्रैपादका अर्थस्पष्ट ॥
१२८	४	चतुर्थपादका*अर्थयिह ॥	*चतुर्थपादकाअर्थयिह ॥
१२८	१५	प्रतिपादप ॥	प्रतिपादक ॥
१२९	१४	जीवांरूप ॥	जीवोंरूप ॥
१३१	१२	यःसर्वज्ञाः ॥	यःसर्वज्ञः ॥
१३१	१३	सदृशहै ॥	सादृशहै ॥
१३७	११	तात्पय ॥	तात्पर्य ॥
१३८	१३	असत्त्वाऽऽभानाऽपादक ॥	असत्त्वाऽभानाऽऽपादक॥
१४१	१०	नासि ॥	नास्ति ॥
१४१	१८	ताधर्मसहित ॥	ताधर्मानवच्छिन्न ॥
१४२	३	तारूपत्व धर्मसाहित प्रतियो-गिताहै ॥	तारूपत्वधर्माऽनवच्छिन्न प्रतियोगिताहै ॥
१४२	७	धर्मावच्छिन्न ॥	धर्माऽवच्छिन्न प्रतियोगि-ताक ॥

इदं पुस्तकं कुशलदासेन मोहमय्यां जगदीश्वराख्य
मुद्रणालये मुद्रापितं संवत् १९५०.

॥ इति श्रीविचाररत्नावलिः ॥

विचार रत्नावली.